मोक्षमार्ग प्रकाशक प्रवचन

भाग – २

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा रचित
मोक्षमार्ग प्रकाशक पर

अध्यात्मयुगप्रवर्तक
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
द्वारा हुए विभिन्न प्रवचन

प्रकाशक : श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़, सौराष्ट्र
सह–प्रकाशक : श्री कुंदकुंद–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ले, मुंबई

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन

(भाग--२)

(आचार्यकल्प श्री टोडरमल्लजी द्वारा रचित
मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
द्वारा हुए विभिन्न प्रवचन)

प्रकाशक

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़-३६४२५० (सौराष्ट्र)

सह-प्रकाशक

श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
मुंबई

विक्रम संवत
२०७६

वीर संवत
२५४६

सन्
२०२०

प्रकाशन
दि. ३-९-२०२०, भादो कृष्ण-१
उत्तम क्षमावणी पर्व

प्राप्ति स्थान
१. श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)-३६४२५०. फोन-०२८४६-२४४३३४
२. श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
३०२, कृष्ण कुंज, प्लोट नं. ३०, वी.एल. महेता मार्ग,
विले पार्ला (वेस्ट), मुंबई-४०००५६
फोन-(०२२) २६१३०८२०, २६१०४९१२, ६२३६९०४६
www.vitragvani.com, email-info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग
पूजा इम्प्रेशन्स
भावनगर
मो. ९७२५२५११३१

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं।

महावीर भगवान, गौतम गणधर तत्पश्चात् जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेह में जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करके भरत में आये हुए, श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं, यह जगत विदित है। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों का आधार देते हैं। इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं। ऐसे श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के भरतक्षेत्र पर महान उपकार हैं। उन्हीं आचार्यदेव की परम्परा में हुए आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी द्वारा रचित ग्रन्थ मोक्षमार्गप्रकाशक पर हुए पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल प्रवचन 'मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन', भाग-२ पाठकवर्ग के हस्तकमल में प्रदान करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

वर्तमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि में जो कहा जा रहा है, उसे प्रत्यक्ष झेलनेवाले भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव और उनके अनन्य भक्त, कि जिनकी विद्यमानता श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के विदेहगमन के समय साक्षात् थी, ऐसे प्रियवर पूज्य कहान गुरुदेवश्री के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का क्या कहना! जो विषय वचनगोचर नहीं, विकल्पगोचर नहीं, उसे कथंचित् वक्तव्य करना वह कहान गुरुदेवश्री की समर्थ प्रचण्ड शक्ति के दर्शन कराते हैं, और भावि में ॐकार ध्वनि खिरने की सूचक है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रस्तुत प्रवचन अध्यात्म के अनेकविध रहस्यों को व्यक्त कर रहे हैं। आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी के हृदय में प्रवेश कर उनके भावों को स्पष्ट करने का सामर्थ्य प्रस्तुत प्रवचनों में व्यक्त होता है।

पण्डितप्रवर टोडरमल हिन्दी जैन जगत के एक अद्वितीय विद्वान हैं। हिन्दी जैन जगत में

उनकी समता का दूसरा विद्वान नहीं हुआ। उनके पूर्व एवं पश्चात् हिन्दी-जैन-जगत में अनेक गद्य-पद्यमय मौलिक रचनाओं की सृष्टि हुई है किन्तु वे सब मिलकर भी पण्डित टोडरमल के असाधारण महत्व को प्रभावित नहीं कर सकीं। अपने समय के विद्वद्वर्ग में पण्डित टोडरमल सर्वोच्च एवं बेजोड़ हैं। उनकी प्रसिद्ध मौलिक रचना श्री मोक्षमार्गप्रकाशक में उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा की अजस्त्रधारा प्रवाहित हुई है। मोक्षमार्ग के गूढ़ एवं शुष्क विषय को इतनी सुन्दरता से उठाया है कि हृदय उसमें डूबता ही चलता है। कहीं भी अस्वाभाविकता से हृदय ऊबता नहीं है। सम्पूर्ण ही मोक्षमार्गप्रकाशक में एक ऐसा औपन्यासिक प्रभाव है कि आरम्भ करने के उपरान्त छोड़ने को जी नहीं चाहता। दर्शन, साहित्य, तर्क, न्याय, व्याकरण, काव्य, छन्द, अलंकार, संस्कृत, गणित तथा धर्म सम्बन्धी उनका ज्ञान असामान्य था। मोक्षमार्गप्रकाशक यद्यपि मुक्ति-मार्ग का प्रतिपादक एक धर्म ग्रन्थ है किन्तु उसमें भाव एवं भाषा का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। ढुंढारी जैसी साधारण भाषा में विषय की गहनता तथा भावों के भार को ऐसी कुशलता से सम्भाला गया है कि आश्चर्य उत्पन्न होता है। भाव एवं भाषा इस तरह सटकर चले हैं कि उनका वियोग कहीं देखने को नहीं मिलता। दोनों में कहीं शैथिल्य भी नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक की एक सबसे बड़ी विशेषता उसकी सुघड़ी एवं सुव्यवस्थित शैली ही है। ऐसी रचना शैली हिन्दी जैन जगत में अन्यत्र अनुपलब्ध है। इस शैली के कारण पण्डित टोडरमल का व्यक्तित्व हिन्दी जैन जगत के शत-शत विद्वानों से भी ऊँचा हो गया है। उनकी प्रतिभा के असंख्य चमत्कार उनकी शैली में ही साकार हुए हैं। साधारण से साधारण बात की सिद्धि के लिए उन्होंने हृदयग्राही तर्क एवं उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। पद-पद पर मस्तिष्क उनकी बुद्धि की पैनाई तथा अनुभूति की गहराई का लोहा मानता है।*

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी का मोक्षमार्गप्रकाशक हिन्दी जैन-गद्य-साहित्याकाश का दैदीप्यमानचन्द्र है। भाव, भाषा और शैली की अपनी निराली विशेषताओं से समन्वित यह ग्रन्थ वास्तव में हिन्दी साहित्य की एक अनुपम निधि है। मोक्षमार्ग के प्रकाशन जैसे जगत के सबसे भारी उत्तरादायित्व को लेकर इसका प्रणयन हुआ और इस उद्देश्य का इसमें जो सर्वांग निर्वाह हुआ है, वह वास्तव में स्तुत्य है। अनवधि अज्ञान-तमावृत्त अन्त:चक्षुओं के घन-आवरण को ध्वस्त कर ध्रुव ज्ञानालोक का अनायास उद्‌घाटन कर देनेवाला मोक्षमार्गप्रकाशक निश्चय ही सत्-साहित्य का शृंगार है जो विश्व के एक सर्व महान् प्रयोजन और जगत की एक कठिनतम समस्या का सरलतम समाधान प्रस्तुत करता है। जागतिक दु:ख और उनके कारणों की बुद्धिगम्य सम्यक्‌विवेचना देकर शाश्वत् सुख का मार्ग खोल देनेवाली यह अमर साहित्यिक कृति सभी दृष्टि से अतोल और अमोल

*** साभार प्राप्त : मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन भाग=४**

है। मोक्षमार्गप्रकाशक का प्रणेता नि:सन्देह लोक-मांगल्य का पवित्र अधिष्ठाता है जो अज्ञान का रूप धरकर सम्पूर्ण विश्व में छाये हुए अमंगल का विघटन कर लोक में निराकुल शान्ति की पुनीत प्रतिष्ठा चाहता है और लोक में इससे महान् किसी इतर कार्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस अर्थ में पण्डित टोडरमल एक महान लोकदृष्टा और एक महान् लोक-सृष्टा भी है। भ्रान्त लोक जीवन को शाश्वत् सत्य की पुनीत दिशा देने का गुरुतर भार अपने शीश पर लेकर मोक्षमार्गप्रकाशक जैसी लघुसी कृति के माध्यम से इसे जिस कौशल से निभाया गया है, वह आश्चर्योत्पादक है।*

यही कारण है कि जब संवत् 1982 में आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी को यह ग्रन्थ प्राप्त हुआ तो उन्होंने कुशल जौहरी की भाँति इस ग्रन्थ की महानता को परख लिया। इस ग्रन्थ के सातवें अधिकार पर तो वे ऐसे रीझे कि पूरे अधिकार को लिखवाकर अपने साथ रख लिया।*

तत्पश्चात् उन्होंने इस ग्रन्थ पर कई बार प्रवचन किये एवं अपने अन्य प्रवचनों में भी अपनी बात को पुष्ट करने के लिये इस ग्रन्थ एवं पण्डित टोडरमलजी का वे अत्यन्त आदर के साथ स्मरण करते रहे।*

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक प्रवचनों में भावभासनपूर्वक की समझ को अधिक महत्ता दी है। ऐसी शैली भी व्यक्त हो रही है। प्रत्येक प्रवचन भेदज्ञानपूर्ण है। पूज्य गुरुदेवश्री की सातिशय ज्ञाताधारा के दर्शन भी प्रत्येक प्रवचनों में हो रहे हैं। अखण्ड एकरूप स्वरूपाश्रित परिणतिपूर्वक समझाने का सामर्थ्य प्रवचनों में उभरकर बाहर आ रहा है। जिनके एक प्रवचन श्रवणमात्र से जिनके भव का अन्त आया, ऐसे पूज्य निहालचन्द्रजी सोगानी का उल्लेख अनेक प्रवचनों में आता है। यहाँ इस बात का उल्लेख इसलिए किया गया है कि पूज्य गुरुदेवश्री की सातिशय देशना का सामर्थ्य तो महापवित्र है ही, परन्तु प्रवचन सम्बन्धित विकल्प के निमित्त से मुमुक्षु जीव के भव का अन्त आ सकता है वह इस बात का प्रमाण है। जिनके विभाव अंश में इतना सामर्थ्य है तो उनकी पवित्र ज्ञानदशा के दर्शन से मुमुक्षुजीव का आत्मकल्याण न हो, यह बात अस्थानीय है। ऐसे सबके प्रिय पूज्य गुरुदेवश्री का जितना गुण संकीर्तन किया जाये, उतना कम ही है, इसलिए इस प्रसंग पर उनके चरणों में भक्तिभावपूर्वक शत-शत वन्दन हो, वन्दन हो!

पूज्य गुरुदेवश्री के आन्तरिक जीवन और भावितीर्थाधिनाथपने की प्रसिद्धि करनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री की अनन्य भक्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री को भी इस ग्रन्थ प्रकाशन के अवसर पर भाववन्दन करते हैं।

*** साभार प्राप्त : मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन भाग-४**

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग में आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस महान कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सुरक्षित रखा, तदर्थ उसके भी आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की जा रहा है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का विशेष लाभ जनसामान्य ले कि जिससे यह वाणी शाश्वत् सुरक्षित बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर उपलब्ध प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री तथा प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किये गये है। यह प्रवचन सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन द्वारा किया गया है। जिसे जाँचने का कार्य श्रीमती नम्रताबेन मोदी, सोनगढ़ और श्री प्रमेशभाई जैन, भोपाल द्वारा किया गया है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर और जवाबदारी पूर्ण होने से जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है तथापि प्रकाशन कार्य में भूलवश कोई गलती रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से निवेदन करता है प्रस्तुत प्रकाशन में यदि कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत कराने का कष्ट करें, जिससे आगामी आवृत्ति में उसे सुधार किया जा सके।

यह प्रवचन ग्रन्थ (www.vitragvani.com) तथा वीतराग-वाणी ऐप पर उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी स प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौ य ग भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अ यास में प्राय: प्रथम न बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी स प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के

धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेता बर स प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अ यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। स प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिग बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, स यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिग बर शास्त्रों के अ यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिग बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् स प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे स प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिग बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिग बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मु य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष

उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिस बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के स पादकत्व में प्रार भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सित बर माह से नव बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेता बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिग बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिग बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिग बर जैन बने।

श्री दिग बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिग बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिग बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य स पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रार भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिग बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रार भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिग बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिग बर मन्दिर थे और दिग बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर

निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रार भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिग बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मु बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री स मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नव बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम स मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से

अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, स यग्दर्शन, और उसका विषय, स यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा स यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से स यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवल बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवल बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्त भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

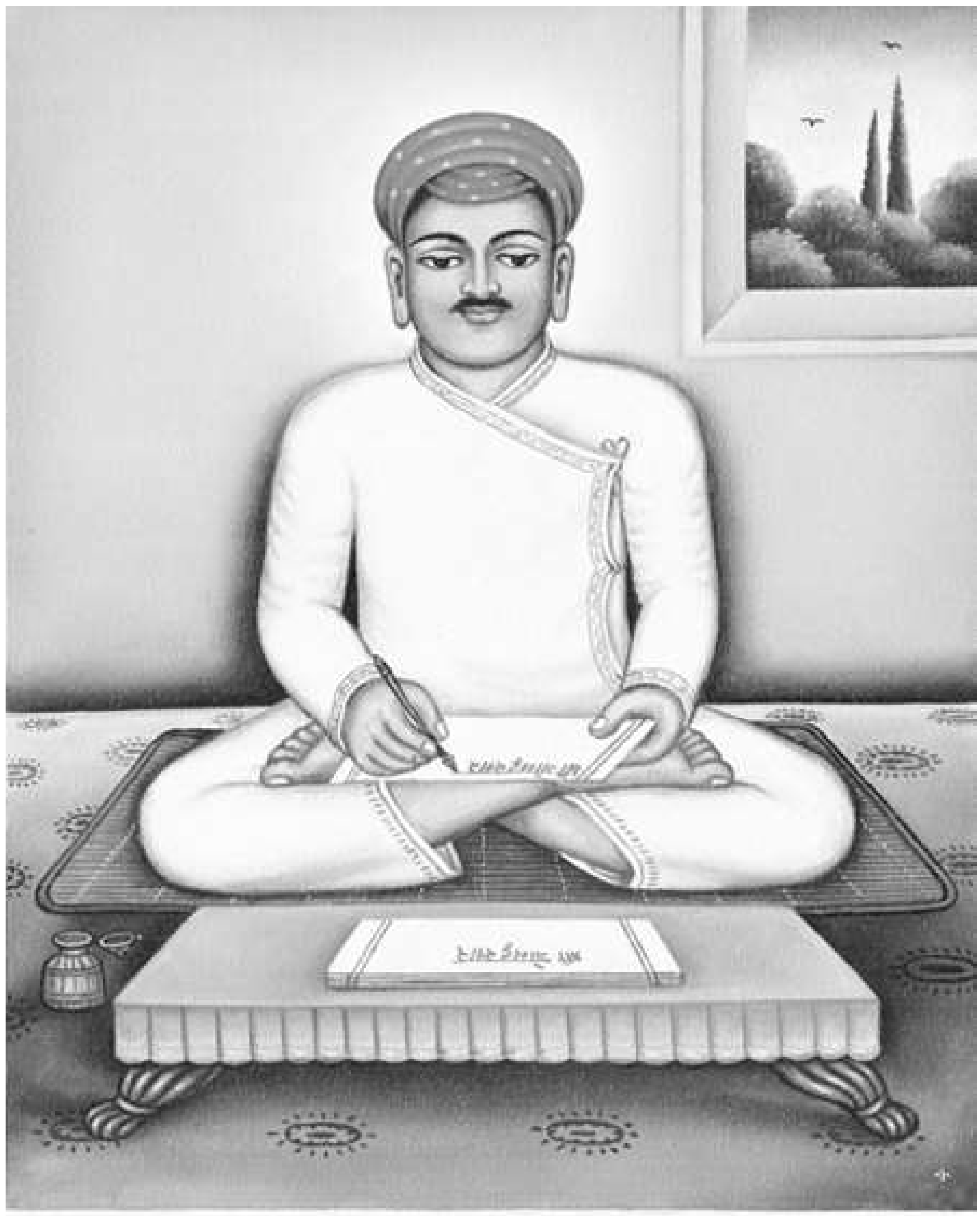

आचार्यकल्प पंडित श्री टोडरमल्लजी

प्रवचन अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	अधिकार संख्या	पृष्ट संख्या
१९.	अधिकार-७	००१
२०.	अधिकार-७	०२०
२१.	अधिकार-७	०३८
२२.	अधिकार-७	०५६
२३.	अधिकार-७	०७४
२४.	अधिकार-७	०९३
२५.	अधिकार-९	११०
२६.	अधिकार-९	१२८
२७.	अधिकार-९	१४५
२८.	अधिकार-९	१४५
२९.	अधिकार-९	१८०
३०.	अधिकार-९	१९६
३१.	अधिकार-९	२१३
८०४.	अधिकार-७	२३१
८०५.	अधिकार-७	२४३
८०६.	अधिकार-७	२५५
८०७.	अधिकार-७	२७१

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

ॐ

परमात्मने नमः

मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन

(भाग–२)

(आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल द्वारा रचित श्री मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के उपलब्ध प्रवचन)

वीर सं.–२४८८, चैत्र सुद १३, मंगलवार, दि.१७–४–१९६२
अधिकार – ७, प्रवचन नं.–१९

मोक्षमार्ग प्रकाशक, सातवाँ अध्याय है। अन्य, जैन सर्वज्ञ के पंथ के सिवा दूसरे कुल में जन्मे हैं उनको तो दृष्टि में कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा होती है। इसलिये उनको तो यहाँ अन्य मत में गिनने में आये हैं। जैन संप्रदाय के नाम पर भी जो कोई संप्रदाय वर्तते हैं, उनको भी सनातन दिगंबर निर्ग्रंथ मार्ग के सिवा अन्य सब को अन्यमत में गिनने में आये हैं।

अब, यहाँ दिगम्बर सनातन जैन सर्वज्ञ द्वारा कहा हुआ मार्ग, उसमें जिसका जन्म हुआ है, गर्भ दिगम्बर है, गर्भ दिगम्बर कहते हैं न नवनीतभाई? जैसे गर्भ श्रीमंत। वे लोग भी निश्चय और व्यवहार कि सन्धि को समझते नहीं और मिथ्यात्वभाव रहता है, उसका कथन इसमें करने में आया है। समझे शांतिभाई! उसमें जन्म लिया इसलिये दिगम्बर हो गये ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। हम दिगम्बर है, बहुत समय से मंडली है, हम भजनमंडली करते हैं। कहाँ गये हमारे मूलचंदजी? समझे?

निश्चयनय क्या है और व्यवहार क्या है उसकी संधि समझे बिना दो नय का कथन शास्त्र में चलता है। एक निश्चय का अर्थात् सच्चा और एक व्यवहार का अर्थात् आरोपित उपचारित, साथ में निमित्त कौन है उसका ज्ञान करने को उपचार के कथन हजारों, लाखों शास्त्र में चलते हैं। लेकिन उस उपचार के कथन भी सच्चे और निश्चय के कथन भी सच्चे ऐसा मानकर भ्रम में पड़े हैं उसको मिथ्यादृष्टि कहते हैं। समझ

में आया?

निश्चय से भगवान आत्मा परद्रव्य से बिलकुल भिन्न ऐसा आत्मतत्त्व उसको पर निमित्त की अपेक्षा से समझाने में आया हो कि यह शरीर वह आत्मा, नारकी वह आत्मा, मनुष्य वह आत्मा, ऐसे सब कथन उपचार के आरोप के हैं। समझाने का हेतु यह है कि जीव वह नरदेह से जुदा है, नारकी से जुदा है ऐसा समझाने के लिये निमित्त की अपेक्षा से कथन चले हैं। उसको ऐसा मान ले कि यह भी कथन सच्चे हैं तो वह दृष्टि में बड़ी भ्रमणा सेवता है।

अब, यहाँ अपने मोक्षमार्ग का अधिकार आता है। देखो। दूसरा, बीचमें से थोड़ा चला है, देखो पृष्ठ–२५७। '**परद्रव्य का निमित्त मिटानेकी अपेक्षा से...**' शास्त्र में '**व्रत–शील–संयमादिक को मोक्षमार्ग कहा,...**' क्या कहा? शास्त्र में परद्रव्य का निमित्त मिटनेकी अपेक्षा से (अर्थात्) यह संयोग स्त्री, कुटुम्ब, परिवार उस पर जो लक्ष्य जाता है पाप का, उसमें से हटकर व्रत के परिणाम होते हैं। तो परद्रव्य के निमित्तों का आलम्बन भाव छूटने के लिये ऐसे व्रत, तप, शील के भाव को मोक्षमार्ग शास्त्र में कहा है। '**सो इन्हींको मोक्षमार्ग नहीं मान लेना;...**' लिखा है ऐसा नहीं मानना। आहाहा..! समझ में आया?

भगवान आत्मा पर निमित्त के संग में है। शरीर या स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, राज–पाट हरित आदि खाना इत्यादि, उस ओर का––निमित्त की ओर का झुकाव मिटने के लिये और अन्दर में राग की मन्दता व्रतादि में हो उसको व्यवहार से, उपचार से कथन से उसको मोक्षमार्ग कहने में आया है।

श्रोता :– समझाने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री :– समझाने के लिये। वह मोक्षमार्ग नहीं है। ऐसे तो शेठ समझते हैं थोड़ा। लेकिन अभी भी अन्दर में वहाँ दुकान का और संघ का अग्रेसरपना है वह छूटता नहीं है। कहो, समझ में आया? दशरथभाई! कहाँ गये बहन? हमने यह कहा शेठ को देखो, ठीक! कहो, इसमें क्या कहते हैं?

यह आत्मा, भगवान आत्मा को परद्रव्य का संग है न! स्त्री–कुटुम्ब–परिवार – राजपाट आदि या एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय की हिंसा के परिणाम के समय उसका संग है, उसके निमित्त को मिटाने के लिये, निमित्त से हटने के लिये, उस निमित्त का अवलम्बन है, उससे हटने के लिये। निमित्त से अर्थात् कोई परवस्तु को छोड़नी, रखनी वह आत्मा के अधिकार में नहीं है। परवस्तु को छोड़ुँ,

स्त्री को छोडुं, राज को छोडुं, राज्य को छोडुं, हरितकाय खाना छोडुं, पंचेन्द्रिय की हिंसा को मैं छोडुं, यह आत्मा का अधिकार नहीं है। वह तो उसके कारण होता है। लेकिन उस निमित्त तरफ का लक्ष्य छूटने से राग की मन्दता होती है। ऐसे व्रत, नियम और निमित्त से हटता है उस अपेक्षा से उसको मोक्षमार्ग व्यवहार से शास्त्र में वर्णन करने में आया है।

'**सो इन्हीं को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना;...**' देखो यह बड़ी तकरार। उसको मोक्षमार्ग नहीं मानना। वह मोक्षमार्ग नहीं है। '**क्योंकि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग...**' देखो! यह मुद्दे की बात (आयी). स्त्री, परिवार, कुटुम्ब, हरितकाय का त्याग करुं, हरितकाय का त्याग करुं, रात को आहार का त्याग करुं, चोविहार करना अर्थात् आहार छोडुँ यह सब कथन निमित्त के हैं। उपवास करुं तो आहार छोडुं, आंबेल करुं तो वह छोडुं, यह सब परद्रव्य निमित्त का अवलंबन छुड़ाने के लिये बात करते हैं। लेकिन परद्रव्य को छोड़ना और ग्रहण करना आत्मा के अधिकार में तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

चोविहार करना अर्थात् रात को आहार नहीं करने से राग की मंदता करे तो उसने आहार छोड़ा ऐसा कहने में आता है। और आहार नहीं छोड़ा था तब राग का आहार ग्रहण करता था, खाने का राग था इसलिये आहार ग्रहण किया ऐसा निमित्त से कथन करने में आया है। लेकिन वास्तव में आहार को छोड़ सके या आहार ले सके, हरितकाय खा सके, हरितकाय छोड़ सके, उपवास में पच्चीस निवाले खाना और सात निवाले नहीं खाना ऐसा कर सके वह आत्मा का अधिकार नहीं है। समझ में आया?

परद्रव्य का त्याग... देखो महा सिद्धान्त है। '**परद्रव्यका ग्रहण-त्याग...**' एक रजकण को छोडुं और रखूँ ऐसी बात शास्त्र में राग कम होने से, मंद होने से उसके निमित्तों को इसे ग्रहण करुं, छोडुं ऐसा कथन आये, लेकिन वह ग्रहण और त्याग आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा..! मैंने चोविहार किया, मैंने पानी का त्याग किया, मैंने लड्डु छोडे, मैंने आज उपवास किया अर्थात् पेट को खाली रखा और आहार छोड़ा- दोनों ग्रहण-त्याग आत्मा में नहीं है। समझ में आया? बहुत मुद्दे की बात आई है।

आज वीर भगवान का जन्मकल्याणक दिन है। लो यह याद आ गया इसमें। समझ में आया? वीर भगवान की जन्मजयंती नहीं लेकिन जन्मकल्याणक दिन है। जन्म जयंती तो साधारण प्राणी के लिये भी कहने में आता है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा जिस

भव में होनेवाले हैं, उस भव में वीर भगवान जब जन्मे, इन्द्रोंने आकर महोत्सव किया। ऐसे वीर उनकी वाणी में वीरता आयी है। वीरता अर्थात् वीर-विशेषरूप से, र-प्रेरती इती वीर। आत्मा के स्वभाव की ओर वीर्य को विशेषरूप से प्रेरित करे ऐसी वाणी को और ऐसे भाव को वीर कहने में आता है। ऐसी वाणी का कथन भगवान वीर परमात्माने कहा है।

हे आत्मा! '**दूरणुं चरौ मगौ वीराणां अनियत गाणीणं...**' अहो! वीरों का मार्ग सम्यग्दृष्टि और धर्मात्मा का मार्ग '**दुरणुं चरौ**'--बड़े अपूर्व पुरुषार्थ से मार्ग चलता है। महा अनन्त प्रयत्न से चलता है। '**दुरणुं चरौ मगौ वीराणं**' वीरों का मार्ग महा पुरुषार्थ से चलनेवाला है। '**अनियत गामीणं**' वीर मार्ग में चले वह अफरगामी है। अफरगामी है (अर्थात्) उस मार्ग पर चल दिये सो चल दिये, वह केवलज्ञान लेकर ही रहता हैं। समझ में आया? ऐसा जो वीर परमात्मा ने अप्रतिहत, अफर, अनियतगामी--पीछे न हटे ऐसा मार्ग जो कहा, वह वीरती इति।

भगवान चैतन्यस्वभाव पूर्णानन्द की मूर्ति प्रभु, उसको परद्रव्य का ग्रहण-त्याग तो नहीं है, लेकिन परद्रव्य को छोडुं, रखुँ ऐसा विकल्प, वह भी धर्म नहीं है, वह भी पुण्यबन्ध का कारण है, ऐसा वीर भगवान फरमाते हैं। समझ में आया? ये तो, मैंने यह छोडा, मैं पाँच (आहार) लेता नहीं, दूध-शक्कर के सिवा, यह नहीं लेता। लेकिन पर वस्तु कब लेना, नहीं लेना आत्मा में आ गयी है? समझ में आया? आज मुझे पाँच हरितकाय नहीं खानी है, मुझे आहार नहीं खाना है, मुझे उपवास करना है, मुझे इतनी चीज़ नहीं खानी है--यह सब परद्रव्य के निमित्त, यहाँ ग्रहण-त्याग के समय जो पाप का राग था, उसमें से पुण्य का राग हुआ तब मैंने यह त्याग किया है, ऐसे निमित्त के कथन को लेकर वह बात करने में आयी है। लेकिन उस निमित्त को ग्रहण करुं और त्याग करुं ऐसा जो माने, वह मिथ्यादृष्टि जीव अज्ञानी है। आहाहा..! समझ में आया?

कहते हैं कि जो '**परद्रव्य के ग्रहण-त्याग...**' यह बात है अंदर। यह मैने छोड़ा, यह मैंने ग्रहण किया, मैंने अव्रत छोड़ा अर्थात् बाह्य चीज जो उसके निमित्त की थी वह छोड़ी, मैंने शुभ व्रत ग्रहण किया है इसलिये मैं इतना ग्रहण नहीं करुँगा। यह सब परद्रव्य के ग्रहण-त्याग के कथन हैं। आत्मा परद्रव्य का ग्रहण-त्याग कर सकता नहीं। ओहोहो..! समझ में आया? यदि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा को हो, वह रोटी छोड़कर उपवास करे और पेट खाली रहे तो उसने पेट खाली किया ऐसा माने

तो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ताहर्ता होता है और परद्रव्य में घूस जाये। चैतन्य स्वयं भिन्न रहता नहीं। समझ में आया?

'**आत्मा परद्रव्य का कर्ता–हर्ता हो जाय।**' लो यहाँ तो जगह–जगह शास्त्र में यह बात आये कि धर्मात्मा संत ने वस्त्र का त्याग किया। लो! नग्न होने के काल में वस्त्र उतारे, नग्नपना अंगीकार किया। कहते हैं, ऐसा होता नहीं। उस समय राग की मन्दता, पंच महाव्रत लेने के समय आयी, उस समय वस्त्र उतर गये, नग्नदशा हो गयी, विकल्प था उसमें ग्रहण–त्याग सहज उसके कारण से हो गया, उसने यह छोड़ा, नग्नपना ग्रहण किया, वस्त्र का त्याग किया ऐसा कहने में आता है। लेकिन ऐसा माने कि नग्नपना मैंने ग्रहण किया और मैंने वस्त्र का त्याग किया, (तो वह) मूढ मिथ्यादृष्टि परद्रव्य का ग्रहण–त्याग करनेवाला होता है। आहाहा..! शेठिया! समझ में आयाय़

मैंने यह छोड़ा.. मैंने यह छोड़ा.. मैंने यह छोड़ा अर्थात् मैं उतना ग्रहण कर सकता था। पहले मैं आहार ले सकता था, पानी पी सकता था, फलानी वस्तु खा सकता था, मैंने बादाम छोड़ी, मैंने रस छोड़ा, मैंने दूध छोड़ा, मैंने आम छोड़ा, तुने कब ग्रहण किया था तो छोड़ा? समझ में आया? मात्र उसके निमित्त के सम्बन्ध में तुझे पाप राग होता था, वह पाप राग छूटकर पुण्य राग हुआ उसमें वह ग्रहण–त्याग हुआ, उसको शास्त्र में ऐसा कहने में आया कि ग्रहण–त्याग करता है। उसको हम धर्म, मोक्षमार्ग कहते हैं। लेकिन यह मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आता है? सोभागचंदभाई! बहोत सूक्ष्म बातें हैं। ओहोहो..! दिगम्बर में जन्मे उनको भी सुनना दुर्लभ हो गया है। जन्मे हैं उसको यहाँ कहते हैं। उनके लिये तो बात है। दिगम्बर में जन्मे, सनातन जैनतत्त्व सर्वज्ञने कहा हुआ त्रिलोकनाथ परमात्मा का, सनातन दिगम्बर पंथ अनादि वीतराग मार्ग है। उसमें जन्मे और ऐसी भूल रहे उसको यहाँ मिथ्यादृष्टि कहते हैं। सोभागचंदभाई! आप सब लोग पहले से दिगम्बर में जन्मे है न? गर्भश्रीमंत थे, गर्भ श्रीमंत क्या, गर्भदिगम्बर।

कहते हैं, अहो..! मुझे मौन रहना है। उसका अर्थ कि मैं पहले बोलता था। उसको मौन रहने का अल्प शुभ भाव आया, उस वक्त वाणी सहज मौन हो गयी। और बोलने का विकल्प था तब वाणी सहज नीकली। लेकिन उसको यह कहने में आता है कि यह वाणी उसने करी, वह असत्य बोला, वह असत्य बोला वह छोड़कर सत्य बोलता है, यह सब कथन राग की मन्दता होने से सत्य बोलने में आता है और तीव्र हो तब असत्य बोलने में जाता था, उसके कथन में अब मुझे असत्य

नहीं बोलना है और मुझे सत्य बोलना है। ऐसे ग्रहण-त्याग के कथन आये लेकिन आत्मा सत्य बोल नहीं सकता और आत्मा असत्य को छोड़ सकता नहीं। वाणी को छोड़ सकता नहीं कि अब बोलना बन्द कर दुँ। कौन करे? शांतिभाई! बहुत कठिन जगत को। वाणी जड़ की अवस्था होती है। मौन रहता है तब उसको वाणी नहीं होनेवाली थी इसलिये नहीं हुई। ऐसा मान ले कि मैंने वाणी बोली और मैं मौन रहा, अब मुझे नहीं बोलना नहीं है, हम नहीं बोलेंगे। हमारे तरफ से तुमको लाभ नहीं होगा तो हम नहीं बोलेंगे। क्या है? बोलते थे तुम पहले? शेठिया! कहो, समझ में आया? ऐसा नहीं है। आत्मा बोल सकता है ऐसा भी नहीं है और आत्मा मौन रह सकता है ऐसा भी नहीं है। मैं बोलुँ और मैं मौन रहुँ, यह मान्यता परद्रव्य के ग्रहण-त्याग की है। उसको भगवान मिथ्यादृष्टि कहते हैं। कहो, समझ में आया? है ताराचंदजी? उसमें है? कहाँ है? देखो!

'**परद्रवव्य का निमित्त मिटानेकी अपेक्षा से...**' निमित्त मिटना। यहाँ वज़न है। '**निमित्त मिटानेकी अपेक्षा से...**' अब निमित्त मिटे या नहीं मिटे वह तो उसके कारण है। '**व्रत-शील-संयमादिक को मोक्षमार्ग कहा,...**' कषाय की मन्दता के परिणाम होने से उसको बाह्य निमित्त का ग्रहण कम हो गया और ज्यादा ग्रहण था लक्ष्य में वह कम हुआ, इस अपेक्षा से वहाँ उसको ही मोक्षमार्ग कहा, परन्तु '**इन्ही को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना;...**' व्रत के और त्याग के जो परिणाम और बाह्य का ग्रहण-त्याग सब परद्रव्य के आधीन है।

'**परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाये।**' देखो! एक रजकण भी मैं छोडुं, आज मुझे दूध नहीं पीना है। तो क्या है? दूध को तु पहले ले सकता था कि दूध को तु छोड़ सकता है? तुझे भ्रमणा हुई है, मूढ! समझ में आया? परद्रव्य को ग्रहण-त्याग करने का अधिकार आत्मा का नहीं है। लेकिन फिर भी मान ले कि मैंने इतने द्रव्य छोड़े, इतना मैंने छोड़ा, दुकान-धंधा बन्द किया, राज-पाट छोड़ा, रानियाँ छोड़ी, एक एक द्रव्य रोज कम करते जाते हैं। पच्चीस द्रव्य छूटेंगे उसमें एक-एक द्रव्य कम करते जाते हैं, मृत्यु के समय एक भी द्रव्य नहीं रहेगा। मूढ है? किस द्रव्य को कम करना है और किस द्रव्य को तुझे छोड़ना है? आहाहा..! समझ में आया? यह मिथ्यादृष्टिपना परद्रव्य को ग्रहण करुं और त्याग करुँ यह मान्यता ही मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया?

'**परन्तु...**' अब सिद्धान्त कहते हैं, '**कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है**

नहीं;...' आत्मा ने राग मन्द किया इसलिये आहार चोविहार करने में आहार पेट में नहीं आया ऐसा है ही नहीं। आत्मा ने राग की मन्दता से उपवास किया इसिलये दाल-चावल थाली में थे, आजे मुझे आहार लेने का पच्चखाण है इसलिये नहीं आये और यह अटक गये, ऐसा है ही नहीं। यह रजकण वहाँ नहीं आनेवाले थे, उसके कारण वहाँ अटके थे उसको, यह राग की मन्दता का भाव देखकर, मैंने आहार छोड़ा, वह परद्रव्य का कर्ता माननेवाला मूढ मिथ्यादृष्टि है। साधु नाम धारण करता हो, श्रावक नाम धारण करता हो, फिर भी उसको जैनधर्म की कुछ खबर नहीं है।

'**कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं;...**' राग मन्द किया इसलिये आहार अटक गया? राग मन्द किया इसलिये हरितकाय खाना अटक गया? राग तीव्र किया इसलिये हरितकाय खाने की इच्छा हुई? कहीं भी नहीं हो रहा है, मुफ्त में मान बैठता है। उसके कारण अटकता है और उसके कारण से होता है। परद्रव्य के एक भी रजकण को ग्रहण-त्याग करुं, मैंने त्याग किया और मैंने ग्रहण किया, यह मान्यता वीतराग मार्गकी आज्ञा से बिलकुल विरुद्ध है। वह जैनदर्शन को समझता नहीं है। यह बात समझने जैसी है। देखो! यह वीर (जन्मकल्याणक) के दिन यह बात आयी है। समझ में आया?

अभी तो बरतन बनाने है, उसको फोड़ने हैं, एक आदमी कहता था। देखो! भगवान ने यह कहा है शास्त्र में कि गौशाल आया और वह था न सकदाल, वह बरतन बने, वह बरतन बने वह पुरुषार्थ से बने हैं। समझे न? वह कहता है कि अपनेआप बन गये। भगवान कहते हैं कि पुरुषार्थ से बने हैं। शास्त्र के पढ़नेवाले उसमें से यह निकालते हैं। ऐसी बात कहाँ थी? बरतन तो बरतन के कारण से बने, वहाँ वीर्य का निमित्त था, उसे वह मानता नहीं था, उसको कहा कि नहीं, इस वीर्य का वहाँ निमित्त है। बरतन बरतन के कारण से बनते हैं, आत्मा उसे बना सकता नहीं। समझ में आया?

एक इच्छा हुई। जैसे यह आया न, नेमिनाथ भगवान में? ऐय..! मूलचन्दजी! क्या आया? 'तोड्या छे कांकण...' क्या आया तुम्हारे? रस्सी, ऐसा आया न कुछ? 'तोड्या छे नवसर हार'। हार ऐसे नीचे उतारा। इसने तोड़ा और छोड़ा, वह सब परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा में तीन काल में नहीं है। सोभागचन्दभाई! यह सब आप को सीखना पड़ेगा, आप मंडली के अधिपति हो इसलिये। ऐसे सब अच्छे भजन बनाने होंगे। 'तोड्या छे कंकरा...' बोलने में ऐसा आये, बोलने में भाषा आये कि तोडे कंकण। अब मैं

आहार त्याग करता हूँ। मैं मुनिपना अंगीकार करता हूँ, भाषा ऐसी आये। लेकिन अभिप्राय में ऐसा माने कि मैंने हार पहना था उसको उतार कर यहाँ रखा, मूढ है? क्या तेरे हाथ की क्रिया से वह उतरता है? और हाथ की क्रिया तेरे से होती है और नीचे उतरा और छोड़े? आत्मा परद्रव्य का कर्ता है, इस तरह माननेवाला मूढ और मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? रतनलालजी! कहाँ गये? नहीं आये? वहाँ क्यों बैठे हो? रुपचन्दजी! मंडली के साथ आये हो, शाम को चले जाओगे। क्या कहा समझ में आया? आहाहा..!

'**कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं;...**' आहा..! महासिद्धान्त, व्रत, नियम में निमित्तपने से होता है उस बात का खुलासा कर दिया है। आहाहा..! व्रत परिणाम के काल में, कोई नियम के अभिग्रह के काल में एक अभिग्रह लिया है कि मुझे ऐसा लड्डु ऐसा हो और ऐसी स्त्री तो मैं लूँगा। समझ में आया? मोतीचुर का लड्डु, मोती नाम की बाई, मोती का... क्या कहते हैं? साड़ी। ऐसा आता है न? कुछ नाम आता है। मोतीचोक की साड़ी। मोतीचोक का आता होगा, कुछ कहते हैं। और मोती का ... फूट गया हो और उस स्त्री की साडी के पल्लु से बाँधा हो, वह मोतीचुर के लड्डु दे तो मुझे लेना है, अन्यथा नहीं, ऐसा मुनि अभिग्रह रखते हैं। समझ में आया? लेकिन उस अभिग्रह में विकल्प राग की मन्दता की वहाँ बात थी और सहनशीलता ज्ञाता–दृष्टापने कितना रह सकता हूँ, उसकी एक अजमाईश थी। लेकिन परद्रव्य को ग्रहण–त्याग करता हूँ और ऐसा हो तो लूँ, ऐसा होगा तो नहीं लूँगा, यह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आहाहा..!

श्रोता :– सीधी तरह नहीं लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :– यह सीधी तरह ही लिखा है। '**व्यवहारो अभूयत्थो**' ऐसा बनाया है, एक श्लोक बनाया। क्या? चार पैसे शेर तो एक मण का ढाई। एक चाबी बताई। फिर साढे सैंतीस क्यों नहीं लिखा? उसमें आ गया। चार पैसे शेर तो एक मण का ढाई। साढे सैंतीस शेर का साढे सैंतीस आना। वह नया नहीं लिखना पड़ता। समज में आया? शास्त्र में लिखा है कि कोई मनुष्य मरकर पृथ्वीकाय में जन्मता है। पृथ्वीकाय होता है न? मनुष्य मरकर पृथ्वीकाय जीव (होता है)। यह सचेत नमक, सचेत पत्थर है न? यह सब निकलते है खानमें से मकान करते हैं, वह एकेन्द्रिय जीव है। शास्त्र में एक भी दृष्टान्त नहीं है कि यह जीव मरकर पृथ्वी में गया। दृष्टान्त कितने दे? ...सब दृष्टान्त। समझ में आया? एक सिद्धान्त---

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।११।।

'**भूदत्थमस्सिदो खलु चरित्तं भवदि जीवो**', '**भूदत्थमस्सिदो खलु शुक्लध्यान हवदि जीवो**', '**भूदत्थमस्सिदो खलु केवलज्ञान हवदि जीवो**'। एक सिद्धान्त शास्त्र ११वीं गाथा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की, यह सब उसके विवेचन का स्पष्टीकरण है। सब व्यवहार अभूतार्थ अर्थात् असत्य अर्थ को कहनेवाला है, ऐसा उन्होंने स्वयं पहले से कहा है। वह कहा है उसके कथन में इस तरह आप को समजना, ऐसा विचार वहाँ से उसे ले लेना चाहिये। प्रेमचन्दजी! वह तो बराबर है। क्या है सामने? आचार्य ने ऐसा क्यों लिखा? लेकिन दूसरा उपाय (नहीं है)। दूसरे को ऐसा कहे, भाई! आप आते रहो, सुनो। ऐसा कहे कि नहीं? आते रहो तो शरीर का आना-जाना वह आत्मा के अधिकार की बात है? समझ में आया? आप आओ, सुनो, बैठो, बापू! दो-पाँच दिन परिचय करो। भाषा क्या बोले? लेकिन उसका आना-जाना आत्मा के आधीन है ऐसा वह कहना चाहता है ऐसा अर्थ नहीं है। समझ में आया? ओहोहो..! और आप सुनोगे तो धीरे-धीरे समझ में आयेगा। ऐसा कहने में आये। क्या कहेंगे? आप सुनेंगे, पाँच-पन्द्रह दिन सुनोगे तो आप को समझ में आयेगा। सुनने से समझ में आयेगा? यह तो व्यवहार का कथन हुआ। समझ में आया? उसकी समजनेकी लायकात से समझेगा तब सुनने से समझ में आया ऐसा कहने में आता है। कथन ही कुछ इस प्रकार के हैं।

कहा था न, एक दिन परसों कहा था न? धर्मदास क्षुल्लक कहते हैं कि आचार्यों के कथन, हाथी के बाहर के दाँत दूसरे और चबाने के दूसरे। इस प्रकार व्यवहार के कथन का पार नहीं। हाथी के बाहर के दाँत पर सोने की ढाल चढाने बराबर। चबाने के अलग हैं अन्दर निश्चय अभिप्राय के। उसको न समझे और व्यवहार के कथन सब आये तो कहे, देखो भाई! राणी की प्रभावना नहीं हुई तब तक रथ नहीं चला था। जहाँ भाव आया और मदद की कोई राजा ने या किसी पुत्र ने, फलाना ने, रथ चला। भाव यहाँ आया और रथ उसके कारण चलता होगा? परद्रव्य इसको लेकर चलता होगा? उसको प्रभावना का भाव आया इसलिये वह रथ चलता होगा? अरे..! सुन न। रथ तो उसके कारण चलता है। सोभागचन्दजी! बड़ी बात भाई यहाँ।

उसको ऐसा मान ले कि यह प्रभावना का भाव रानी को आया इसलिये प्रभावना हुई, वरना अटक गई थी। अटक गई थी यह बात जूठी है और हुई वह बात भी जूठी है। आहाहा..! समझ में आया? पोपटलालभाई! बहुत अलग बात है यह तो।

समझ में आये ऐसी है। नहीं समझ में आये ऐसी नहीं है। समझ में आये ऐसी है तब तो बात कही जाती है न? न समझ में आये तो क्या लकड़ी को कही जाती है क्या? आत्मा को कहते हैं कि समझ! परद्रव्य के ग्रहण-त्याग के कथन शास्त्र में आता है और उस ही प्रकार ग्रहण त्याग यदि आत्मा में उस ही प्रकार से हो तो '**आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाये।**' तो आत्मा परद्रव्य कर्ता-हर्ता तीन काल और तीन लोकमें नहीं है। समझ में आया?

'**कोई द्रव्य...**' इच्छा हुई कि धीरे बोलना, इच्छा हुई कि जोर से बोलना। कल कोई बोलता था। जोर से बोलो, धीरे बोलो ऐसा कोई बोलता था। में यहाँ सुनता था। उसका अर्थ कि ऐसी इच्छा होती है, लेकिन इच्छा हुई इसलिये जोर से बोला जाय और इच्छा हुई इसलिये धीरे-धीरे बोला जाय, ऐसे कथन शास्त्र में आये, उसको ऐसा मान ले कि मेरी इच्छा हुई इसलिये धीरे-धीरे बोलुँ, जोर से बोलुं। भाई! हमें समझ में आये ऐसे तो बोलो। तब वह जोर से बोलता है। तो इच्छा को लेकर जोर से बोला होगा? तीन काल तीन लोक में ऐसा बनता नहीं। बहुत फेर भाई इसमें।

ऐसे थप्पड मारते हैं तो कैसी मारते हैं, देखो न। शरीर पतला हो लेकिन धमाल करे। ... है कि नहींय़ ताराचन्दजी! शरीर तो पतला है लेकिन धमाल करते हैं। वह तो उसके कारण से है। इच्छा हो, वृत्ति हो लेकिन वृत्ति हुई इसलिये वहाँ ऐसे चलता है, उस परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा में हो तो आत्मा अपना स्वरुप छोड़कर पर में प्रविष्ट हो जाये और पर का होने से वह स्वयं रहे नहीं। अतः पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है नहीं। ऐसे तो सुबह से लेकर रात तक कितने दृष्टान्त हैं। इतना खाया, इतना पीया, यह रखा, वह रखा, आज मेरा चोविहार सहित उपवास करना है, मुझे पानी की छूट रखकर करना है, ढीकना करना है, आज मुझे दो ही निवाला खाना है, फलाना करना है, लेकिन खाये कौन और रखे कौन? राग की मन्दता की क्रियाकाल में ऐसा बन जाता है इसलिये शास्त्र में ऐसा निमित्त का कथन आये, वह सब अभूतार्थनय के कथन हैं, वह सत्य दृष्टि के कथन नहीं है। संक्षिप्त में समझने के लिये ऐसे कथन आये बिना रहते नहीं। तो कहे क्यों? किसने कहे हैं? किसने कहे हैं? उस समय वाणी का ऐसा ही योग था उस अनुसार आ जाती है। आहाहा..! समझ में आया?

व्यवहारनय असत् अर्थ को कहता है। नय का ज्ञान उस असत्य अर्थ को कहता

होगा? भाषा करता होगा? नय का यहाँ ज्ञान हुआ वह, असत्य अर्थ--भाषा निकलती होगी? नेमिचन्दजी! वीर वीर परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनको सर्वज्ञपद हुआ, देखा कि कोई परमाणु का किसी के हाथ का अधिकार नहीं है। अनन्त द्रव्य अपने अस्तित्व में रहकर अपना पर्यायरुपी कार्य कर रहे हैं। उस पर्याय के जाने-आने के कार्य में दूसरे कोई द्रव्य का अधिकार, स्वामीपना हो तो वह चीज जड़ की स्व हो जाये, आत्मा उसका स्वामी हो जाये। उसका स्वामी आत्मा हो तो वह जड़ हो जाये। समझ में आया?

'**आत्मा कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं;...**' देखो! कोई में तो सब ले लिये हाँ। एक परमाणु दूसरे परमाणु के आधीन नहीं है। आहाहा..! एक विचार आया था यह नीम का पेड देखकर। नीम के टोच का एक रजकण नीचे के परमाणु के आधार से नहीं रहा है, वह रजकण अपने कारण से ऐसे-ऐसे फिरता है। हवा आयी इसलिये फिरा अथवा नीचे पत्ता है इसलिये आखरी रजकण भी उस पत्ते का उसके आधार से नहीं रहा है। निरालंबी तत्त्व कोई द्रव्य किसी के आधार से नहीं है। समझ में आया? उसमें क्षण-क्षण में धर्मी नाम धरावे और मैंने इसका त्याग किया, इसको छोड़ा (ऐसा माने)। शास्त्र में ऐसा आता है, एक कहता था कि भगवानने वस्त्र उतारे। कथानुयोग में आता है। किसने ना कहा? ग्रहण किये, छोड़े, पहने और छोड़े, दोनों आत्मा के अधिकारकी बात नहीं है। क्या आत्मा कपड़े पहन सकता है? आत्मा पहन सके तो उतार सके। तीन काल में पहन सकता नहीं, उतार सकता नहीं। समझ में आया? लेकिन जहाँ पहनने का विकल्प था और छोड़ने का विकल्प था उसमें ग्रहण-त्याग हुआ उसको छोड़ा, पहना ऐसा व्यवहार के कथन में सदुउपचार से कथन आया है। उसको ऐसा मान ले कि नक्की उसने ग्रहण-त्याग किया है, तो जैनकी आज्ञा के बाहार वीतराग का बैरी खड़ा हुआ है। आहाहा..! समझ में आया?

'**आत्मा अपने भाव रागादिक है उन्हें छोडकर वीतरागी होता है;...**' देखो! क्या कहते हैं? अव्रत का तीव्र राग हो, वह छूटे और व्रत का मन्द राग होता है। मन्द राग होने से इसमें राग की स्थिरता, शुद्धता होती है। वह रागादिभाव, द्वेषादिभाव है उसको छोड़कर। यहाँ समझाना है इसलिये। वास्तव में तो उसको छोड़कर भी नहीं है। वह तो स्वरूप में चिदानन्द प्रकाश की मूर्ति का भान हुआ कि यह आत्मा रजकण का कर्ता-हर्ता, ग्रहण-त्याग नहीं है और उसमें राग दया, दान, भक्ति का, श्रद्धा का, व्यवहार का आये वह भी उसकी चीज़ लाभदायक नहीं है और उसकी चीज़ में वह

नहीं है। ऐसा भान हुआ बाद में उसमें स्थिर होने-से राग छूट जाता है, स्थिर होने से राग छूट जाता है। उसको छोड़कर, ऐसे व्यवहार के कथन आये हैं।

लेकिन यहाँ कहना है कि उस परद्रव्य से हटाना है उस अपेक्षा से कहा। परद्रव्य का ग्रहण-त्याग नहीं है, लेकिन तीव्र राग घटाकर मंद राग हुआ, मन्द राग घटाकर वीतरागता हुई वह उसके अधिकार की बात है। लेकिन मन्द राग, तीव्र राग था इसलिये खानेकी क्रिया, हिंसा की, व्यापार की, धंधे की, हरिकाय तोड़ने की, स्त्री के भोग की थी, इसलिये वह अशुभराग कम करे तो वह क्रिया कम हो जाय, ऐसा जो कथन आये वह व्यवहार का कथन है। वह अशुभराग था इसलिये ऐसी क्रिया होती थी और अशुभराग कम हो गया इसलिये ब्रह्मचर्य की क्रिया देह में होने लगी ऐसा नहीं है। समझ में आया? ब्रह्मचर्य का शुभभाव हुआ इसलिये स्त्री का संग छूट गया, ऐसा सब कहने में आये वह सब व्यवहार के कथन हैं। ऐसा है नहीं। परद्रव्य का ग्रहण-त्याग उस तरह आत्मा के अधिकार में तीन काल में ज्ञानी और अज्ञानी को नहीं है। करे क्या?

भगवान आत्मा अपने राग, द्वेष, विषयवासना को छोड़कर वीतराग हो, स्वभाव की दृष्टि करके स्थिरता हो, '**इसलिये निश्चय से वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है।**' वास्तव में तो परवस्तु का ग्रहण-त्याग नहीं और ग्रहण-त्याग के समय वह राग तीव्र था अव्रत का छूटकर मन्द हुआ वह भी नहीं। आहाहा..! अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का विकल्प वह मोक्षमार्ग नहीं, धर्ममार्ग नहीं, धर्म का कारण नहीं। ओहोहो..! अभी तो जगत में इतना फेरफार (हो गया है)। लेकिन अब दिशाफेर हुआ है एक पंडित कहता था। अब धीरे-धीरे लोग विचार में आते जाते हैं, झुकते जाते हैं कि बात तो सच्ची लगती है, अन्यथा तो गप चला है अभी तक।

निश्चय से '**वीतरागभाव ही...**' देखो! भाव ही। ऐसा नहीं कि वीतरागभाव वह मोक्षमार्ग और व्यवहार रागभाव भी मोक्षमार्ग (ऐसा माने) तो अनेकान्त हो ऐसा नहीं है। तकरार करते हैं न। अनेकान्त मार्ग है, अनेकान्त मार्ग है। अनेकान्त का अर्थ क्या? यह वीतरागभाव सो मोक्षमार्ग है और वह व्रत का रागभाव आया, अशुभराग छूटा और रागभाव आया, वह भी मोक्षमार्ग है नहीं। उसको अनेकान्त कहने में आता है। व्यवहार का.. कहाँ गये बाबुभाई? गये? गये, ठीक। बाबुभाई, फत्तेहपुरवाले गये होंगे। कहो, समझ में आया कुछ? वह तो गुजरात में उसका प्रचार ज्यादा है न। शांत व्यक्ति है। उसको व्यवहार-निश्चय की शैली में यह क्या था उसको (समझना

था)। एक ओर व्रतादि के परिणामकी बात करते हैं और एक ओर परद्रव्य के ग्रहण-त्याग की बात करते हैं। लेकिन परद्रव्य के ग्रहण-त्याग के समय जो शुभ-अशुभ के परिणाम वर्तते थे वह भी बन्धमार्ग है और पर का ग्रहण-त्याग तो आत्मा में है नहीं।

बाद में लेंगे कि व्रतादि परिणति वह कोई मोक्षमार्ग नहीं है। आगे लेंगे। बात के पन्ने में लेंगे। समझ में आये कुछ? व्रतादि परिणति मति केवल वीतराग हो तब होती है। वह आगे लेंगे। बाद के पन्ने पर है भाई! २५८ देखो। ५८ में है। वह कहता है कि हम व्रतादि छोड देंगे। तब कहते हैं कि '**व्रतादिकरूप परिणति को मिटाकर केवल वीतराग उदासीनभावरूप होना बने तो अच्छा ही है,...**' तीसरा पैराग्राफ अथवा ऊपर से दूसरे पैरेग्राफ की तीसरी पंक्ति नीचे। देखो! '**व्रतादिकरूप परिणति को मिटाकर...**' नीचे के पेरेग्राफकी चौथी पंक्ति। '**व्रतादिकरूप परिणति को मिटाकर केवल वीतराग उदासीनभावरुप होना बने तो अच्छी ही है; वह नीचली दशा में हो नहीं सकता;...**' समझ में आया?

व्रत, अव्रत के परिणाम के काल में, परपदार्थ के संयोग-वियोग का काल बना, उसको लेकर उसका मालिक बन जाय कि मैने इतने संयोग का सेवन किया और इतने संयोग का वियोग किया। उस बात में कुछ माल नहीं है। मिथ्यात्व की बड़ी भ्रमणा है। दिगम्बर में जन्मा हो फिर भी ऐसी श्रद्धा रखे तो वह मिथ्यादृष्टि और मूढ है। उसके व्रत, तप, त्याग सब बिना एक अंक के शून्य हैं, गोल, गोल है। समझ में आया?

'**निश्चय से वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है।**' अब थोड़ी बात करते हैं। '**वीतरागभावोंके...**' वीतरागभाव अर्थात्? आत्मा अखण्ड शुद्ध चैतन्य पुण्य-पाप के रागरहित, व्रत और अव्रत के रागरहित। व्रत का भाव शुभ है और अव्रत का भाव अशुभ है। दोनों समय के संयोग-वियोग का लक्ष्य छोड़कर जो व्रत-अव्रत के परिणाम हुए वह भी मोक्षमार्ग नहीं है। व्रत के परिणाम भी। ओहोहो..! यहाँ तो साधारण व्रत अभी बिना मतलब के ले, वहाँ तो हज़ारों रूपये खर्च किये, पाँच-पचास हज़ार खर्च क्ये। धूल है, सब पाप है। समझ में आया? दुर्गादासजी! ऐसी बात है। एकदम साधु हो जाना है। लो, साधु हो जाओ। वस्त्र बदले। वस्त्र तो चारण भी बदलकर आता है।

श्रोता :- वस्त्र बदलने का भगवान ने कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वस्त्र बदलने को भगवान ने कहा ही नहीं है। वह बात तो

चली। वस्त्र बदलने की बात वीतराग ने कही नहीं है। मात्र अशुभराग फिरने से शुभराग आये तब वस्त्र बदल जाते हैं, उसको बदलता है ऐसा कहने में आता है। आहाहा..! क्या करे? समझ में आया?

ऐसा कहने में आये कि भगवान की भक्ति करते समय अशातना नहीं करना। कोई नाकमें से मैल नहीं निकालना, यह नहीं करना, ऐसा ही आये न व्यवहार के कथन में? अशातना नहीं करना, ऐसा नहीं करना। तो कौन मैल निकाल सकता है? कौन मैल छोड़ सकता है? अरे..! आहाहा..! लेकिन जब भगवान का बहुमान वर्तता है उस भाव के समय ऐसी क्रिया नहीं होती तो इसने नहीं की ऐसा कहने में आता है। लेकिन उसने नहीं की ऐसा मान ले कि मैं मैल साफ करके गया, मैंने मैल साफ किया, तो मूढ है। गज़ब बातें हैं यह तो। समझ में आया?

चप्पल निकालकर अन्दर जाना। पैर धोकर जाना। ऐसा कथन आये, लो। चप्पल आत्मा निकाल सकता होगा? और आत्मा पग धो सकता होगा पानी डालकर? वह तो जड़ की पर की क्रिया है, होनेवाली होती है वह होती है। लेकिन भगवान के बहुमान के कथन में जब ऐसा आये कि भगवान के पास जाने में धर्मी को ऐसा हो सकता नहीं। चप्पल नहीं, अधिकरण नहीं, शस्त्र हाथ में तलवार आदि लेकर भगवान के पास दर्शन करने को नहीं जा सकते। तब तलवार लेकर नहीं जा सकते तो तलवार छोड़कर जाने का अधिकार होगा? समझ में आया? उसका अर्थ यह है कि भगवान की भक्ति के काल में उसके शुभभाव ऐसे होते हैं कि ऐसी चीज पर लक्ष्य नहीं होता। ऐसे जुता, चमड़ा आदि का लक्ष्य छुड़ाने के लिये ऐसे कथन किये। लेकिन उसने--आत्माने ग्रहण-त्याग किया है, हथियार पकड़ा और हथियार को छोड़ा, वह आत्मा में मिथ्यादृष्टिपना माने वह माने। समझ में आया? बात में बहुत फ़र्क़ हो गया।

ये लिखा शास्त्र में। भाई! लिखा है लेकिन किस नय का कथन है? शास्त्र में एक-एक गाथा के पाँच अर्थ होते हैं, ऐसा कहते हैं। कोई भी वाक्य हो उसका शब्दार्थ होता है, उसका नयार्थ होता है, किस नय का वाक्य है ऐसा आचार्य ने कहा है, वह देखना चाहिये। और वह आगमार्थ में क्या लागू होता है यह देखना चाहिये, अन्य मतार्थ में क्या लागू होता है यह देखना चाहिये और तात्पर्य उसका क्या है यह (देखना) चाहिये। एक-एक श्लोक के पाँच प्रकार से अर्थ होना चाहिये। ऐसे ही पढते जाये और यह लिखा है, वह लिखा है। सब लिखा है, सुन न। समझ में आया?

एक दृष्टान्त देते हैं न? शंकर का एक मन्दिर था, शंकर का मन्दिर था। शंकर के मन्दिर में बड़ा अण्डा था। उसके साथ उसके पिता और पुत्र वहाँ रहते थे। पच्चीस लाख, पचास लाख के मालिक। पुत्र बहुत साधारण था। पचास लाख बरामदे में गाड दये। लिखा कि, शंकर के मन्दिर के अण्डे के नीचे मैंने पचास लाख गाड़े हैं, लड़का बडा हो जाये तब यहाँ से निकालना। समझ में आया कि नहीं? और चैत्र सुद ८ को सूर्य जहाँ आये वहाँ मैंने गाड़े हैं। पिता मर गया, पैसे न मिले। उसका बरामदा खोदने लगे।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- लेकिन वह अण्डा-अण्डा। शंकर का मन्दिर ले लिया, शंकर का पूरा मन्दिर ले लिया। चलो न, लाख में मिलता है, पचास लाख निकलेंगे। नीचे पुरा खोद डाला, कुछ नहीं मिला। अण्डा के नीचे खोदा, कुछ नहीं मिला। यह क्या? उसके मित्र के पास गया कि बापू! आप मेरे पिता के मित्र हो। उसने ऐसा लिखा है। भाई! तु समझा नहीं। उस अण्डे की छाया चैत्र शुक्ल अष्टमी को तेरे बरामदे में जहाँ गिरे वहाँ नीचे गाड़े हैं ऐसा लिखा है। नरभेरामभाई! तुम्हारे पिता इतने पागल नहीं थे कि किसी और के घर में गाड़ने जाये। शंकर के मन्दिर में गाड़ने जाये वहाँ उसके अण्डे के नीचे। लेकिन इसमें लिखा है न? लिखने का यह आशय है कि यह शंकर का मन्दिर है उस ओर, तेरा घर यह है। आठ बजे सूर्य आये, बरमादे में जितने में धूप पड़े उसके नीचे गाड़े हैं। खोदा तो पचास लाख निकले। लिखने का आशय समझे बिना अपनी रीति से अर्थ करे। सोभागचन्दभाई! उसको ऐसा होता है। पचास हजार और लाख का वह लिया, सब गया। किसी का शंकर का मन्दिर को खोदने लगा।

यहाँ कहते हैं कि वास्तव में वीतराग के चारों अनुयोग--शास्त्र में, पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ भाव रहित आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता ऐसा वीतरागभाव वह एक ही धर्म का मार्ग, मोक्ष का मार्ग, एक ही संसार को तोड़ने का उपाय है। लेकिन '**वीतरागभावोंके और व्रतादिकके कदाचित् कार्य-कारणपना है,...**' क्या कहते हैं यह? आत्मा में रागरहित श्रद्धा, ज्ञान और रमणता होती है तब तो अभी अधूरा वीतराग भाव होता है, तब उसको व्रतादि का परिणाम निमित्तरूप, कारणरूप होते हैं। और पूर्ण वीतराग हो जाये तब होते नहीं। इसलिये कहा कि '**वीतरागभावों के और व्रतादिकके कदाचित्...**' कदाचित् अर्थात्? जब तक आत्मा की वीतरागी श्रद्धा,

ज्ञान, रमणता कम हो, तब व्रतादि के निमित्त के परिणाम हो उसको व्यवहार से कारण कहकर कथन करने में आता है। लेकिन जब वीतरागता पूर्ण हुई तब तो राग की मन्दता हो सकती नहीं। इसलिये वीतरागभाव की पर्याय को आत्मा के स्वभाव की शुद्धता की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता को और नीचे की दशा में कदाचित् व्रतादिक के परिणाम, रागकी मन्दता के परिणाम को, वीतराग कार्य है और व्रतादि के परिणाम कारण निमित्तरूप है। व्यवहार कारणरूप है ऐसा कहने में आया है।

कदाचित् समझते हो? वीतराग पूर्ण। वीतरागभाव को और उसको निमित्त हो तो केवली को भी व्रत के परिणाम होने चाहिये। लेकिन नीचे की दशा में जहाँ अभी वीतरागभाव पूर्ण नहीं हुआ है उस वक्त, श्रद्धा, ज्ञान और रमणता भी शुद्ध है और व्रत के, दया के, दान के थोड़े शुभभाव हैं। उसको निमित्त देखकर कारण और कार्य गिनकर कथन किया है। निश्चय से वह कारण नहीं है। वह तो पहले आ गया है। अन्य कारण से दूसरे का कार्य हो वह व्यवहारनय का कथन है, ऐसा ही मान ले तो मिथ्यात्व लगता है। कहो, समझ में आया इसमें?

इसलिये व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहा। वह निमित्त देखकर वीतराग श्रद्धा, ज्ञान, रमणता.. वीतराग नाम अकषाय, आत्मा का अकषाय स्वभाव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और एकता हुई, पूर्ण एक्ता नहीं है वहाँ व्रतादिक के परिणाम पंच महाव्रत के मुनि को, संत आदि को होते हैं अथवा बारह व्रतादि के परिणाम श्रावक को होते हैं, इसलिये उसको निमित्त से, व्यवहार से व्रतादिक को मोक्ष का मार्ग कहा। लेकिन वह कहनेमात्र ही है, लेकिन वह कथनमात्र है। वह मोक्षमार्ग है नहीं। भाई! कह दिया कि वह कारण-कार्य गिनकर कहा, लेकिन वह कहनेमात्र है, कारण भी कहनेमात्र है। गंभीर संधि करी है। कहनेमात्र है, वस्तु की अपेक्षा नहीं। आहाहा..!

परद्रव्य का ग्रहण-त्याग तो नहीं है, लेकिन व्रत के परिणाम जो सम्यग्दृष्टि को वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में साथ में हो, उसको व्यवहार से कारण कहा वह भी कहने मात्र है। निश्चय से तो वह कारण है नहीं। वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र का कारण कारणपरमात्मा स्वयं है। सूक्ष्म बात। श्रद्धाकी खबर नहीं, सत्य परमेश्वर कहाँ पड़ा है किस प्रकार, पता नहीं, और यूँ ही चलते जाये, जैनधर्म है, जैनधर्म है ऐसा माने। समझ में आया?

‘**व्रतादिकको मोक्षमार्ग कहा सो कथनमात्र ही है;...**’ निश्चय से व्रतादि कारण नहीं है। उसको कारण कहना वह अभूतार्थ व्यवहारनय के कथन हैं। आहा..! कितना

स्पष्ट है नवनीतभाई! आहाहा..! बहुत स्पष्ट। अधिकार भी बराबर आज जयंति का- भगवान के जन्म कल्याणक का दिन है। देखो आया है, लो। '**परमार्थसे बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है...**' बाह्य क्रिया वह राग व्रत के परिणाम भी मोक्षमार्ग नहीं है। वह तो राग है, विकल्प है। अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य को पालना ऐसी शुभ वृत्ति उठती है, वह तो राग उठता है। समझ में आया? कठिन लगे, नये लोगों को तो सुनना भी कठिन पड़ जाये। सत्य वीतराग मार्ग चलता नहीं और यह बात आये तो उसको ऐसा लगे कि अरर..! यह तो सब... क्यों मालचन्दजी! वह भी उसमें ही थे न पहले तो?

'**बाह्यक्रिया मोक्षमार्ग नहीं है...**' दो बात कही। एक तो अशुभभाव के काल में हिंसादि की क्रिया जड़ में होती है वह भी आत्मा की नहीं है, आत्मा करता नहीं और दया के परिणाम के समय सामने जीव बच गया और नहीं मरा, वह आत्मा ने किया नहीं, और दया का जो भाव आया वह भी धर्म का कारण नहीं है। आहाहा..! वह तो आस्रवतत्त्व है। दयाभाव सो आस्रवतत्त्व है। वह यदि धर्म तत्त्व हो तो सिद्ध में भी होना चाहिये। सिद्ध में है नहीं। वह तो परमात्मा हो गये। वह तो राग था। राग का अभाव करके स्वरूप में वीतराग विज्ञानघन होकर सिद्ध हुए।

'**व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहा सो कथनमात्र ही है; परमार्थ से...**' देखो! वह व्यवहार कथनमात्र हुआ। '**परमार्थ से बाह्यक्रिया मोक्षमार्ग नहीं है-ऐसा ही श्रद्धान करना।**' ऐसी श्रद्धा उसको पक्की करनी। इससे विरुद्ध कोई कहता हो, कहलवाता हो, मानता हो, सब की श्रद्धा छोड़ देनी। ओहोहो..! समझ में आया? वीर का मार्ग विरल प्राप्त कर सके। वीर का मार्ग तो कायरों को कंपित कर दे ऐसा है। कलेजा काँप उठे। आहाहा..?

हीजड़ा लड़ाई में नहीं जा सकते। हीजड़ा समझते हो? नपुंसक, नपुंसक। हीजड़ा कहते हैं? नपुंसक--पावैया। शरीर बहुत कम होता है। एक युवान लड़का यदि मिले और चिल्लाये तो भागने लगे। हीजड़े वहाँ लड़ाई में खड़े रह सकते हैं, हीजड़ा? ऐसे जिसका वीर्य उल्टा है, बाह्य पर पदार्थ को ग्रहण-त्याग कर सकता हूँ और राग की क्रिया कुछ मन्द हो तो धर्म हो, ऐसा माननेवाले को हीजड़ा--नपुंसक शास्त्रकार ने कहा है। समझ में आया? समयसार में आया है, समयसार में आया है। क्लीब-क्लीब पाठ है संस्कृत में। क्लीब है। शास्त्र में यह एक-एक बोल है। कोई घर की बात नहीं है। शास्त्र में कहा है कि क्लीब, वीर्य तेरा नपुंसक है। तु पुण्य, दया, दान

के परिणाम को धर्म मानता है, तो हीजड़ा है, नपुंसक है धर्म के लिये। तुझे पुत्र प्रसवने का तुझे भान नहीं है। चैतन्य की प्रजा, ज्ञाता–दृष्टा स्वभाव उसकी पर्याय कैसे प्रगट हो उसका तेरे पास वीर्य नहीं है। तेरा वीर्य उल्टा है। समझ में आया?

कहते हैं कि परमार्थ से व्रत और अव्रत दोनों परिणाम बन्ध का कारण हैं। अव्रत के परिणाम पाप है और व्रत के परिणाम पुण्य है। दोनों धर्म नहीं है। और उसको धर्म कहते हैं, कहलाते हैं, कहनेवाले को मदद करे वह सब, डाकु को रोटी खिलाने जैसा है। बहावटिया समझते है? डाकु। बहारवटिया नही कहते तुम्हारे में? डाकु का आप के वहाँ बहुत जोर है न। हम देवगढ़ गये थे तब ३३ पुलीस साथ में आयी थी। देवगढ़ गये थे न? देवगढ में? यह थे न हमारे सेठ। नेमिचन्दभाई। ३३ पुलीस। क्योंकि संघ बड़ा था। और बड़े डाकु, बहोत डाकु थे। समझे न? लेकिन यहाँ तो कोई नहीं, कोई नहीं।

श्रोता :- ... लूटते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, वह तो ऐसा ही होता है, वह तो लूट ले डाकु। यहाँ तो कोई नहीं है। एक डाकु की बात करते थे कोई। कहाँ? द्रोणगीरी। यहाँ का एक डाकु निकला है। महाराज आप का नाम सुनकर वेश पलटकर दर्शन करने आयेगा। आप के संघ का नाम नहीं लेगा। आप का नाम इतना प्रसिद्ध हो गया है कि वेश पलटकर दर्शन कर लेगा। लेकिन किसी को लूटेगा नहीं। द्रोणगीरी था न? द्रोणगीरी गये थे। समझ में आया? कहते हैं कि जैनशासन के डाकु राग की क्रिया और बाह्य क्रिया में धर्म मनानेवाले जैनशासन के लूटेरे हैं। समझ में आया? यह ऐसा कहा देखो न। '**ऐसा ही श्रद्धान करना।**' देखो! लिखा है? टोडरमल तो पुकार करके डंके की चोट पर लिखकर गये हैं जगत समक्ष।

'**इसीप्रकार अन्यत्र भी...**' देखो, अब आया। '**इसीप्रकार अन्यत्र भी व्यवहारनयका अंगीकार नहीं करना...**' अन्यत्र जहाँ–जहाँ व्यवहार के कथन आये हो वहाँ भी व्यवहारनय का अंगीकार नहीं करना। ऐसा स्थापित किया है न भाई? करना समझ लेना। आ गया। व्यवहारननय को अंगीकार करना अर्थात् व्यवहारनय का कथन किया हो वहाँ उसको जानना कि यह कथन इस तरह चलते हैं, लेकिन उसका आदर करना नहीं। कहो, समझ में आया? वह तो उसमें आ गया। '**अन्यत्र भी व्यवहारनयका अंगीकार नहीं करना ऐसा जान लेना।**' उसका अर्थ हो गया न? समझ लेना कि व्यवहारनय अंगीकार करनेलायक नहीं है। समझ में आया?

यह तो जिसको... बापू! आत्मा का खेल खेलना हो और संसार के जन्म-मरण की जाल टालनी हो, उसके लिये यह बात है। बाकी सब मौज करे, सब एक-दूसरे को मख्खन लगाये कि, ओहोहो..! आपने बहुत धर्म किया, वह कहे, आपने बहुत अच्छा धर्म बताया। परस्पर एक-दूसरे को मख्खन लगाये। माखण समझते हो न? मख्खन माने क्या? मसका-मसका। यहाँ तो कहते हैं कि नहीं। भगवान के पास इन्द्र आकर भक्ति करे तो इन्द्र आकर करते हैं ऐसा जो कहा है, वह असत्य बात है। शरीर की क्रिया आत्मा कर सकता ही नहीं। उस वक्त भक्ति का राग था न? राग था। लेकिन राग था इसलिये क्रिया हुई है ऐसा कहा हो तो वह बात सत्य नहीं है। और राग था तो हमारे जन्म-मरण का अन्त होगा। हे नाथ! आप की भक्ति से मुक्ति होगी, ऐसा लिखा हो तो समझना कि ऐसा है नहीं। वह राग तो पुण्यबन्ध का कारण है। जैसे व्रत का परिणाम पुण्यबन्ध का कारण है, ऐसे भक्ति के परिणाम भी पुण्यबन्ध का ही कारण है। इसीप्रकार अन्यत्र भी व्यवहारनय को समझना। लो!

अब दूसरा प्रश्न उठेगा कि यह बात तो ठीक, लेकिन अपने को क्या? पर को उपदेश करने में अपना कोई प्रयोजन है व्यवहार में? उपदेश के लिये आप की व्याख्या हुई। अब अपने लिये व्यवहारनय अंगीकार करना कुछ लाभदायक है कि नहीं? उसका स्पष्टीकरण करेंगे। (श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.-२४८८, चैत्र सुद १४, बुधवार, दि.१८-४-१९६२
अधिकार - ७, प्रवचन नं.-२०

यह सातवाँ अधिकार है। जैन में जन्म होने के बावजूद, निश्चय अर्थात् सत्य का क्या स्वरूप और व्यवहार अर्थात् आरोपित कथन और आरोपित भाव क्या है, इसकी जानकारी बिना, एकान्त से अपने मत को मानता है, वह जैन में रहनेवाला साधु हो, गृहस्थ हो फिर भी वह सब मिथ्यादृष्टि है। मिथ्या अर्थात् पापदृष्टि है। उसको धर्मदृष्टि की खबर नहीं है। वह बात चलती है। तीन बात आ गयी।

निश्चय है वह आत्मा के मूल स्वरूप को बताता है अथवा निश्चय है वह वीतरागभाव को मोक्षमार्ग का स्वरूप कहकर बताता है। व्यवहार है वह जीव को नारकी जीव, मनुष्य जीव आदि से, निमित्त से उसकी पहचान कराता है। और व्यवहार, निश्चय मोक्षमार्ग जो आत्मा का वीतरागी अंतर ज्ञाता-दृष्टा की दृष्टि, उसका ज्ञान और रमणता,

उसके साथ व्रत, नियम और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का राग, उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं, लेकिन निश्चय से वह मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो अन्तर स्वभाव में निर्विकल्प अनाकुलता की प्रतीत, ज्ञान और रमणता ऐसी अन्तरदृष्टि अनुभवसहित स्थिरता, उसको ही भगवान एक सच्चा मोक्षमार्ग कहते हैं। ऐसी बात का वर्णन किया।

तब शिष्य का प्रश्न है '**कि व्यवहारनय परको उपदेश में ही कार्यकारी है या अपना भी प्रयोजन साधता है?**' वह तो आपने उपदेश की व्याख्या कही। नारकीजीव, मनुष्यजीव, व्रत, नियम के भेद, यह हो वहाँ वीतरागभाव अन्दर होता है, ऐसा समझाने की व्याख्या आपने तो उपदेश की करी। लेकिन आत्मा को खुद को कुछ व्यवहारमें से प्रयोजन सिद्ध हो ऐसा कुछ है? समझ में आया? व्यवहारनय अर्थात् जो निमित्त से समझाये, भेद से जीव को समझाये वह बात आत्मा को अपने लिये कुछ व्यवहारनय प्रयोजनवान, योजनीय, कुछ कार्यगत हो ऐसा कुछ है?

'**समाधान :- आप भी जब तक निश्चय से प्ररूपित वस्तु को न पहिचाने...**' ऐसी बात है। निश्चय से कहा हुआ आत्मा का स्वभाव पर से बिलकुल भिन्न है, अपनी जाति त्रिकाल शुद्ध और आनन्द है, ऐसी निश्चयस्वरूप कही हुई बात जब तक बराबर न पहिचाने, तब तक व्यवहारमार्ग द्वारा वस्तु का निश्चय करे। व्यवहारमार्ग द्वारा वस्तु का निश्चय करे ऐसा है। व्यवहारमार्ग द्वारा निश्चय की प्राप्ति होती है ऐसा नहीं है।

जब तक स्वयं निश्चयनय से आत्मा की अन्तर रुचि और दृष्टि की परिपूर्णता, शुद्धता निश्चय की प्राप्त न करे, तब तक वस्तु को पहिचानने के लिये '**व्यवहार मार्गसे...**' विकल्प द्वारा विचार करे, राग द्वारा विचार करे। लेकिन विचार किसका करे? कि निश्चय अभेद हूँ उसका। आहाहा..! समझ में आया? निमित्त द्वारा निश्चय करे, लेकिन निमित्त में जो सुना वह निश्चय किसका? कि ज्ञानमूर्ति शुद्ध चैतन्य अभेद आनन्द है, उसका व्यवहारमार्ग द्वारा निश्चय करे तब तो वह बात नीचे की दशा के लिए कार्यकारी है। नीचे की दशा में भी व्यवहारनय स्वयं को कार्यकारी है इसलिये, इस कारण से।

व्यवहार द्वारा, विकल्प द्वारा, निमित्त द्वारा, भेद द्वारा अखण्ड ज्ञानमूर्ति शुद्ध अकेला शुद्ध चैतन्य पिण्ड है, ऐसा निर्णय व्यवहारमार्ग द्वारा, द्वारा करे निश्चय उसका। इसलिये नीचे की दशा में व्यवहारनय स्वयं को भी इस तरह व्यवहार द्वारा, राग द्वारा, विकल्प द्वारा, भेद द्वारा निश्चय ज्ञायकमूर्ति आनन्दकन्द परमात्मा स्वयं है, उसका अनुभव जब तक नहीं होता, वह अनुभव और निश्चय करने के लिये विकल्प द्वारा उस मार्ग को ग्रहण करे।

'**परन्तु व्यवहार को उपचारमात्र जानकर उसके द्वारा वस्तु को ठीक प्रकार समझे तब तो कार्यकारी हो;...**' वह विकल्प आये कि मैं ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ, परमानन्द हूँ, पूर्ण हूँ, शुद्ध हूँ, आनन्द की नित्यानंद मूर्ति हूँ, ऐसे विकल्प द्वारा, राग द्वारा निर्णय करे तब तो ठीक है। लेकिन व्यवहार को उपचारमात्र माने, राग को तो उपचार आरोपित मात्र माने। उससे निर्णय होता है, अनुभव होता है ऐसा नहीं है। समझ में आया? कषाय की मन्दता, लोभ मन्द, मान मन्द आदि राग की मन्दता द्वारा अन्तर्मुख में वस्तु मात्र ज्ञान चैतन्य एक अभेद पदार्थ है, उसका निर्णय करने के लिये हो, तब तो उस अपेक्षा से व्यवहारनय प्रयोजनवान अर्थात् कार्यगत है। लेकिन उसको उपचार माने। ऐसा नहीं कि राग से और भेद से भी वह एक वस्तु है। राग से भी निर्णय किया तो वह राग भी आत्मा के स्वभाव एक चीज है। भेद करके विचार करे कि मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, आनन्द हूँ, ऐसा भेद करके निर्णय करे, लेकिन भेद को पूरी चीज मान ले, समझ में आया? उसको ही जीव, निमित्त साधन है, उसको ही सत्य मान ले, उपचार न मानकर, आरोप न मानकर, वह सत्य है ऐसा माने तो '**व्यवहार को उपचारमात्र मानकर उसके द्वारा वस्तु को ठीक प्रकार समझे...**' बराबर निर्णय हाँ! जैसी वस्तु चीज है सिद्ध समान, ऐसा निर्णय करे तो कार्यकारी हो।

'**परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानकर...**' वस्तु तो सत्य त्रिकाल आनन्दकन्द सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु आत्मा है वह सत् है। और उसको निर्णय करने का विकल्प उठता है वह उपचार है, वास्तविक वस्तु नहीं है। लेकिन उसको ही सत्यभूत माने कि राग आता है न? आता है न? होता है न? उसके बिना होता है? ऐसा मानकर राग के भाग पर बहुत जोर दे, वही सत्य है और उससे ही आत्मा का अनुभव हो सकता है, ऐसा यदि माने तो उलटा अकार्यकारी होता है। बहुत सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

'**परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहारको भी...**' निश्चय सत्य त्रिकाल अभेद वस्तु वह सत्य है। उसका आश्रय कराने को भेद के कथन द्वारा उसको समझाया जाता है और स्वयं भी भेद द्वारा समझने का प्रयत्न करे। लेकिन भेद को, ज्ञान और दर्शन और आनन्द हूँ ऐसे भेदविकल्प आये वह भी कुछ सत्य है, सत्य पाने के लिये, वह भी एक सत्य साधन है, वह भी एक सत्य कारण है, सत्य भाव है ऐसा माने तो उसको व्यवहारनय अकार्यगत होता है। निश्चय का लाभ होता नहीं और पुण्यबन्ध में अटक

कर चार गति में भटकता है। ओहो..! यह बात तो अभी कहाँ है? यहाँ तो अभी कोई ठिकाना नहीं ऐसे बाह्य नियम और व्रत, अहिंसा, सत्य, दत्त का भी ठिकाना न हो, उसको मान बैठे कि हम साधन करते हैं और उससे हम निश्चय को प्राप्त करेंगे, हम धर्म को प्राप्त करेंगे। ऐसा है नहीं। समझ में आया? समझ में आता है कि नही इसमें? रमणीकभाई! इसमें समझ में आता है कि पैसे में...?

श्रोता :- उसमें तो समझ सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- समझ में आता है कि नहीं, पैसा अच्छा है, ऐसी ममता का। समझ में आया इसमें? नेमिचन्दभाई!

भगवान आत्मा एक सेकन्ड के असंख्य भाग में सिद्ध समान पूर्ण शुद्ध चैतन्यदल है। देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान। देह भिन्न केवल चैतन्यमात्र गोला भिन्न पड़ जाये, उसका भान होने हेतु, पहले विकल्प और भेद द्वारा विचार होते हैं। समझ में आया? लेकिन उस भेद को, विकल्प को भी सत्य मानकर वहाँ अटके तो उसको व्यवहारनय मात्र बन्ध का कारण होकर परिभ्रमण कराता है। उसमें कोई आत्मा का लाभ होता नहीं। कहो, नेमिचन्दभाई!

'**परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहारको भी सत्यभूत मानकर वस्तु इसप्रकार ही है...**' व्यवहार से भी अन्दर प्राप्त कर सकते हैं, व्यवहार भी सच्चा है, भेद भी सच्चा है, राग आता है विकल्प, दया, दान का राग अथवा विचार का यहाँ तो, वह व्यवहार भी सच्चा है, ऐसा मानने से मूढता बढ़ती जाये। समझ में आता है? दुर्गादासजी! देखो यह धर्म। व्रत, नियम तो कहाँ थे? अभी तो दर्शन की खबर नहीं, सम्यग्दर्शन किसको कहे। ये तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, जाओ सम्यग्दृष्टि है। ये सभी सेठ लोगों को भान नहीं, सुननेवाले को। जय नारायण। नरभेरामभाई!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- खर्चा तो होता है वह होता है, क्या कौन कर सकता है? सेठ के पास खर्च करवाना है उसको। कौन करता है खर्चा-बर्चा? वह तो होता है वह होता है। अन्दर राग की मन्दतावाला जीव हो तो ऐसा परिणाम उसको आता है। बाहर की प्रभावना में वह निमित्त है। वह भी वस्तु नहीं है। आहाहा..! समझ में आया?

अरे..! जिसको जन्म-मरण का अन्त लाना है, जिसको भगवान आत्मा के अनुभव के पाताल में जाकर उसकी प्राप्ति करनी है, समझ में आया? जिसको ज्ञान अनुभूति

चैतन्य आत्मा पूर्णानन्द जिसके भान में परमेश्वररूप आ जाय, ऐसा जिसको आत्मा का साक्षात्कार सम्यग्दर्शन से करना है उसको, पहले ऐसे व्यवहारविकल्प आते तो हैं, लेकिन उसको ही सत्य मान ले और उससे प्राप्त होगा, तो वहीं अटककर अनन्त काल से चार गति में भटक रहा है, (ऐसे ही भटकता रहेगा)। समझ में आता है? जामनगर। समझ में आया?

यह वस्तु है, परमाणु के एक-एक रजकण से पार अस्ति तत्त्व है चैतन्य और इस तत्त्व में अनन्त-अनन्त बेहद आनंद, ज्ञान, शुद्धता, स्थिरता अर्थात् चारित्र, ऐसी शक्तियाँ अनन्त हैं। उसका एकरूप सामान्य पूर्ण है, उसके अनुभव के लिये, निश्चय की प्राप्ति के लिये बीच में अपने कार्य के लिये ऐसे विकल्प आते हैं। भेद का विचार भी आये कि यह वस्तु ज्ञान है, दर्शन है, आनन्द है। लेकिन उसके द्वारा उसको छोड़कर अंतर अनुभव का निर्णय करे तो वह व्यवहार कार्यगत व्यवहार से है ऐसा कहने में आये। व्यवहार से कार्यगत व्यवहार से है ऐसा कहने में आता है। आहाहा..! समझ में आया?

लेकिन वह सब कषाय की मन्दता की क्रिया, विकल्प और भेद वह भी एक चीज है, वह भी एक चीज है, आरोपित और उपचारित भी एक चीज है ऐसा मानकर बारदान को चावल मान ले, चार मण और अढाई शेर बारदान के साथ वजन किया जाता है। चार मण चावल और अढाई शेर बारदान साथ में वज़न करने में आता है। वह बारदान कहीं खान के काम नहीं आता। समझ में आया? बारदान द्वारा इतने चावल है ऐसा निर्णय कर ले तब तो ठीक, लेकिन बारदान ही चावल है... ऐसे भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, उसके पूर्णानन्द के अनुभव के लिये, उसके साक्षात्कार के लिए देह और राग से भिन्न होने में ऐसे भेद के विकल्प द्वारा छूटकर निश्चय करे तब तो उस व्यवहार को, व्यवहार से प्रयोजनवान है ऐसा कहने में आता है।

'**परन्तु यदि निश्चयवत्...**' यह सच्चा है न? व्यवहार सच्चा है न? नहीं है? नहीं है? है, किसने ना कहा? लेकिन है वह आत्मा के अनुभव के लिये सच्चा नहीं है, कहो। समझ में आया? भगवान ज्ञान की मूर्ति अकेला चैतन्य केवलज्ञान का पिण्ड आत्मा है। ऐसे केवलज्ञान में उससे विरुद्ध जो विकल्प है उसके द्वारा निर्णय करने जाता है। लेकिन उसके द्वारा कब कहा जाये? कि उसको छोड़कर अनुभव करे तो। लेकिन उसको ही सच्चा मान ले, यह करो, यह करो, करते करते होगा, यह रागकी मन्दता, क्रिया, भेद उसका विचार, भेद करते-करते अभेद में जाना होगा। इस

प्रकार भेद को भी सच्चा मान ले, सत्य मान ले, परमार्थ मान ले, ऐसी श्रद्धा करे तो तो ऊलटा अकार्यकारी हो जाये। देखो! उसमें कार्यकारी लिखा था। व्यवहार और भेद को। और इसमें उसको सत्य माने, यह भी सत्य है, यह भी सत्य है न। भेद, कषाय की मन्दता, विकल्प इत्यादि सत्य है न? स्वरुप नहीं है? सुनन अब। भेद-भेद वस्तु में है ही नहीं, राग-बाग वस्तु में है नहीं। वह तो निराली वीतरागी विज्ञानघन चिदानन्द आनन्दकन्द है।

उसमें विकल्प को, शुभराग को, पुण्यभाव को साधन मान ले कि वह भी सच्चा साधन है, सच्चा मार्ग है, ऐसा माने तो ऊलटा अकार्यकारी होता है। मार्ग में अन्दर जाना था वह पड़ा रहे और वहीं का वहीं फँसकर बहिर्मुख दृष्टि पक्की दृष्टि हो जाये। उसका भटकना मिटे नहीं। पोपटभाई! भाई! बात तो ऐसी है। सेठ के पास पैसे-बैसे निकलवाये और उससे धर्म होता है, धूल में भी नहीं है ऐसा कहते हैं। लाख मन्दिर करो तुम्हारे, मन्दिर तो मन्दिर के कारण होता है। और मन्दिर के भाव में जिसको राग की मन्दता सहज प्रभावना के लिये आई हो, सहज शुभभाव है। समझ में आया? लेकिन उसके द्वारा आत्मा में बहुमान आये कि, ओहो..! यह सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण हैं, ऐसा ही मैं सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण हूँ, ऐसा विकल्प द्वारा बहुमहात्म्य आकर यह वस्तु ही कोई चमत्कारी वस्तु है, जो चमत्कार मुझे केवलज्ञानकी पर्याय में लगता है अथवा सर्वज्ञ के अनन्त आनन्द में लगता है, वही चमत्कारी वस्तु मैं हूँ। वस्तु ही मैं चमत्कारी हूँ। मेरा चैतन्यचमत्कार भगवान भरा हुआ है। विकल्प द्वारा यहाँ निश्चय करने जाये तब तो व्यवहार से कार्यगत कहें। व्यवहार से कार्यगत है न? समझ में आया? परन्तु यदि उस विकल्प को ही सत्य मान ले कि वह भी है न... वह भी है न... वह भी है न। परन्तु है तो क्या हुआ? वह साधन है, कारण है। ऐसा वहाँ कहा था न? कार्य-कारण कहा था न? कदाचित् कार्य-कारण भी है। फिर भी वह कथन मात्र है। व्यवहार से निश्चय होता है वह व्यवहारमात्र कथन है। आहाहा..!

व्यवहार अर्थात् व्रत पाले, उपवास करे उस व्यवहार की यहाँ बात नहीं है, वह तो लिया मिथ्यादृष्टि को। उसको तो व्रत भी कैसा और दूसरा भी क्या? उसकी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो भगवान अखण्ड अभेद चैतन्यप्रभु, जिसमें अनन्त-अनन्त आनन्द के कोले पके ऐसी बेल है। अनन्त-अनन्त केवलज्ञान के कोले, सक्करकोला पके ऐसी बेल भगवान आत्मा है। ऐसे चैतन्य को ग्रहण करने विकल्प द्वारा यदि अन्दर जाये तब तो उसको व्यवहार से कार्यगत कहने में आये। लेकिन उस राग को और भेद

को सर्वस्व मानकर, सत्य मानकर अटक जाये, तो ऊलटा कार्य करना रह जाता है और गलत रास्ते पर चढ़ जाता है। समझ में आया? यह बात समझने की है, बाकी दूसरी तो ठीक जानने की बात है। यह प्रयोजनभूत बात है। आहाहा..!

देखो! यह वस्तु ऐसे ही है। व्यवहार से ही समझ में आती है। व्यवहार से बैठती है इसलिये व्यवहार का जोर दे। दो जोर, राग की मन्दता का विकल्प और शुभभाव (पर)। अटककर मर जायेगा, हाथ आयेगा नहीं। वह सीढ़ी छोड़कर अन्दर जाने के लिये बीच में यह एक बात आती है। लेकिन आये उसको ही तु सत्य मान ले, तो ऊलटी बाह्य बहिर्मुख दृष्टि की पुष्टि होने से अन्तर्मुख दृष्टि होगी नहीं।

'**यही पुरुषार्थसिद्धियुपायमें कहा है :-**' पुरुषार्थसिद्धियुपाय, अमृतचंद्राचार्य महाराज, जो समयसार के कर्ता कुन्दकुन्दाचार्यदेव नग्न दिगम्बर सन्त भावलिंगी। उनके बाद एक हज़ार साल बाद हुए अमृन्तचन्द्रचार्य मुनि सन्त भावलिंगी परमेश्वर। परमेष्ठी आचार्य परमेश्वर। वे वन में कलश लिखते हैं, उसमें एक पुरुषार्थसिद्धियुपाय ग्रन्थ बनाया स्वयं ने। उसके ६-७ श्लोक में स्वयं अमृतचन्द्राचार्य व्यवहार और निश्चय का थोड़ा न्याय समझाते हैं।

अबुधस्य बोधनार्थं मुनिश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति।।६।।
माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीत सिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयस्य।।७।।

श्लोक बहुत ऊँचा है देखो! मुनिराज धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि अनुभवी चारित्रवंत निर्ग्रंथ मुनि, अंतरमें से राग की गाँठ गल गई है और बाहर में भी जिनको बिलकुल नग्न निर्ग्रंथदशा वर्तती है, ऐसे सन्त '**मुनिराज, अज्ञानीको समझाने के लिये...**' यहाँ भाई यह बात है अभी। वह व्यवहारनय अलग, यह श्रद्धा की अपेक्षा से बात है अभी। धर्मी की भूमिका का बारहवीं गाथा का है। यहाँ तो मात्र समझाना है सामने। आँठवी गाथा में जो अनार्य लिया था, वह शैली यहाँ ली है। इस बात को वर्तमान में १२वीं गाथा में डाल देते हैं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि बारहवीं गाथा में जो (कहा कि)...

सुद्धो सुद्धादेशो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववरादेसिदा पुण जे दु अपरमें ट्ठिया भावे।।१२।।

जब तक मिथ्यादृष्टि है, तब तक व्यवहार का उपदेश उसको कार्यकारी है, ऐसा

कुछ लोग अर्थ करते हैं। ऐसा नहीं है वहाँ। धर्म '**भूदत्थमस्सिदो खलु,...**' भगवान पूर्णानन्द सत् सत् का सत्त्व पूर्ण, आनन्द का सत्त्व पूरा चिह्न है। समझ में आता है? ऐसा देह, वाणी विकल्प से (भिन्न) भान होकर बाद में उसकी दशा में पूर्णता है या कुछ कमी है? वह बताने के लिये बारहवीं गाथा में व्यवहारनय का उपदेश समझाया है। कितने ही लोग उसका ऊल्टा अर्थ करते हैं।

दृष्टि होने के बाद भी उसको शुद्धता के अंश बढ़ते हैं, अशुद्धता के कम हो रहे हैं, अशुद्धता के वर्तते हैं, उसको जानने के लिए कहते हैं कि देखो यह है उसको बराबर जानना। व्यवहारनय का विषय वहाँ चोथे, पाँचवे, छठवें में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, शुद्धता का अंश बढ़े उसको, बहुत अंश को लक्ष्य में लेना वह व्यवहार, अशुद्धता घटे उसको जानना और अशुद्धता दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग वर्तता है उसको जाना हुआ प्रयोजनवान है ऐसा वहाँ कहने में आया है।

यहाँ तो अभी प्रथम समझाना है, अज्ञानी को समझानेकी बात है। वहाँ बारहवी गाथा अज्ञानी को समझाने के लिये ली है ऐसा लिखा है, एक नग्न द्रव्यलिंगी भी नहीं है उसने ऐसा अर्थ किया है। समझ में आया? अरे..! चैतन्य की बात कहाँ गयी? और क्या हुआ? त्यागी होकर सूखकर मर गये। नग्न होकर मर जाये, सूख जाये फिर भी वहाँ कहाँ धर्म था उसमें? अट्ठाईस मूलगुण पालता हो नग्न होकर फिर भी वह धर्म नहीं है। एक बार खड़े-खड़े आहार ले वह भी धर्म नहीं है। वह तो राग की क्रिया, पुण्य की क्रिया है। समझ में आया? उससे रहित दृष्टि का अनुभव हुआ, अनन्त काल में नहीं हुई थी ऐसी अपूर्व आत्मा की प्राप्ति की उपलब्धि हुई, बाद में उसको राग की मन्दता आये बिना रहती नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, प्रभावना, पूजा, दया, दान, ऐसे भाव आते हैं, उसे ज्ञानी, स्वयं का ज्ञान करते हुए, वह है ऐसा जानना चाहिये। जानना चाहिये वह प्रयोजनवान है। आदरना चाहिये वह प्रयोजनवान है ऐसा नहीं हैं।

यहाँ दूसरी बात है। यहाँ तो कहते है कि '**मुनिराज अज्ञानीको समझाने के लिये असत्यार्थ जो व्यवहारनय उसका उपदेश देते है।**' व्यवहार से उसको उपदेश देते हैं। हे आत्मा! तुम एकरूप हो, लेकिन ये देख तेरी पुंजी। बड़े गृहस्थ हो तो उसको होता है न कि क्रोड़ रूपये के हीरे हैं, पचास लाख का सोना है। पचास लाख की चाँदी है, दो क्रोड़ का माणेक है, ऐसा सब एकट्ठा करके समझाते हैं कि नहीं? ऐसा कहकर तुम एक अरबपति हो। नरभेरामभाई! बड़ा गृहस्थ हो उसके वहाँ कितना पड़ा हो,

अरबपति को कहाँ... पाँच-पाँच क्रोड़े के कितने हीरा, माणेक और कितने ही ढेर पड़े हो वहाँ। जैसे यह धूल है, वैसे वह भी धूल पड़ी हो वहाँ। फिर भी उसको समझाते हैं कि देखो! इन सब का तू एक मालिक है।

ऐसे भगवान आत्मा को, एकरूप वस्तु है उसको अज्ञानी समझते नहीं, उसको समझाने के लिये कहते हैं कि देखो, यह जानता है वह आत्मा, यह जानता है वह आत्मा। विश्वास किसके अधिकार में है? विश्वास भले ही जूठा हो। विश्वास करता तो है न? पाँच हज़ार का माल लेने जाये, गहना लेने जाये। गहना क्या ऐसे ही लेते होंगे? गहना यहाँ रखो और पाँच हजार यहाँ रखो, ऐसा करते होंगे? वहाँ पहले गहना देते हैं, अथवा वह रूपया पहले देता है। नहीं, ऐसा रखो बराबर। ऐसा नहीं यहाँ गहना रखो और यहाँ पैसे लो, ऐसा होता होगा? इतना तो अज्ञानी को भी पर में विश्वास का भाग वर्तता है। समझ में आया? क्या होगा मलूकचन्दभाई! ये नरभेरामभाई को मालूम नहीं होगा, गाड़ी बेचते होंगे पच्चीस-पच्चीस हज़ार की। लो यह गाड़ी आप को देता हूँ, लाओ पच्चीस हज़ार मेरे हाथ में। ऐसा होता होगा? या तो पहले वह पच्चीस हज़ार पहले दे अथवा तो पहले उसको गाड़ी दे। दोनोंमें से एक को इतना तो विश्वास है कि नही? वह विश्वास नामका उसमें गुण है तो वर्तमान में ऊल्टे में वर्त रहा है। समझ में आया?

विश्वास तो है। कहा था न एक बार? एक व्यक्ति था उसने कहा, प्रश्न करो महाराज को, प्रश्न करो। दूसरा व्यक्ति थोड़ा अभिमानी था। क्या आप हमको शंकाशील समझते हो? और आप निःसन्देह हो? ऐसा कहा। सत्ताप्रिय मनुष्य। इसलिये (कहने लगा), आप निःशंक हो? निःशंक कभी हो नहीं सकते। निःशंक कभी नहीं हो सकते। ठीक। एकदूसरे में परस्पर बात चलती थी।

मैंने कहा, मेरी एक बात सुनो। आप निःशंक हो उसकी एक बात मैं करुं। नई शादी हुई। किसी ओर की बेटी थी, कभी मिले भी नहीं थे। पहली रात में शंका हुई थी कि यह मुझे मार डालेगी? अनजान स्त्री, किसीके घर पर जन्मी, कहाँ आयी? पहले ते ऐसा था। ये तो अभी सब होता है। एकदूसरे साथ में घूमने जाये, फलाना हो, ढिकना हो। पहले तो कहाँ कुछ था, उसके माता-पिता देख ले, बाकी सब कुछ मान्य था। चहेरा भी नहीं देखा हो कि कौन है। समझ में आया? यह (संवत) १९८७ की बात है, ८७ की। क्या आप को शंका हुई थी? वह १६ साल की और आप २० साल के। दोनों अनजाने। शंका हुई थी कि यह मुझे मार डालेगी? कितने ही

राजा की रानियाँ तो राजा को मार डालती थी, ज़हर देती है। ऐसी शंका हुई थी आप को? क्यों नहीं हुई? आप को भरोसा था कि यह स्त्री मेरी खास है और मेरे विषय का खिलोना है, मुझे मारेगी नहीं। ऐसी निःशंकता तुम को ज़हर में वर्तती है और आत्मा के भान में निःशंकता न वर्ते यह बात कहाँ से लाये? समझ में आया? बाहर में ऐसी निःशंकता। जिसके सामने कभी देखा नहीं था, कुछ मालूम नहीं है, क्या पता ज़हर दे देगी, क्या करेगी, फलाना करेगी। यह कैसी होगी? फलानी होगी? ऐसा हुआ था? आप को जिसमें राग है उसमें आप का विश्वास उठ नहीं गया था, विश्वास था। बराबर है कि नहीं?

ऐसे भगवान आत्मा, जिस तरह वस्तु की प्रीति और रुचि है ऐसा भान हो, उसको शंका रहे कि कैसी होगी? क्या होगा? अरे..! चल... चल..। ऊलटे भाव में भी जगत जहाँ निःशंक वर्तता है, वह सूलटे भाव में तो सुल्टा वीर्य अनन्तगुना पड़ा है। उसमें तो ऊल्टा पड़ा हुआ (वीर्य) ऐसी निःशंकता में वेदता है। समझ में आया? ऊलटे वीर्य में तो वीर्य घट जाता है, फिर भी निःशंक होकर वर्तता है।

भगवान चैतन्यस्वरूप जहाँ राग और पुण्य बिना की चीज़, निःशंक तो उसका मूल स्वरूप है। कहा नहीं? दोपहर में क्या चलता है? निःशंक तो उसका चिह्न और गुण है, लक्षण है, उसका आचार है। आनन्द और शुद्ध मैं हूँ। ज्ञानमूर्ति मैं हूँ। बाकी तीन काल तीन लोक में मेरी कोई चीज़ नहीं है। लाख प्रवृत्ति में खड़ा हो या क्रोड़ प्रवृत्ति में दिखता हो, फिर भी उसको अन्दर से स्वभाव की निःशंकता हटती नहीं। समझ में आया? बाद में वह हँसने लगा। वकील था। वकील हँसने लगा। आप ऐसे? भाईआ हम वकील नहीं है, लेकिन हम न्याय से तो आप को कुछ कह सकते हैं कि नहीं? महाराज भी वकील के जैसे कायदे निकालते हैं। हम जैसों की बोलती बन्द कर देते हैं। आप लाओ, ना कहो। आप का जगत का अनुभव है कि नहीं? बात तो सच्ची है, निःशंकता है कि नहीं यह भी सोचा किसने है? उस वक्त शंका थी या निःशंक थे, यह भी किसने सोचा था। आप बात करते हो तब ख्याल में आता है। बात तो सच है कि हमें ऐसी शंका होती नहीं। ऐसे धर्मात्मा और धर्म के जिज्ञासु भी जिस बात में निःशंक हुए हों, उसमें उसको शंका पड़े ऐसी तीन कालमें होती नहीं। समझ में आया?

यहाँ आचार्य कहते हैं कि अरे..! मुनिराज धर्मात्मा संत निर्ग्रंथ मुनि से बात चलती है न? उपदेशक का पद तो मूल में केवली का है और उसके बाद तो उपदेशक

का मूल पद तो निर्ग्रंथ वीतरागी संतो का है। समझ में आया? उसके बाद गौण पद चौथे और पाँचवे गुणस्थान के लिये है। यह तो निर्ग्रंथ मुनि.. आहाहा..! वीतरागता में तरबतर, वीतरागभाव में तरबतर वीतराग के अमृत के स्वाद लेने में क्षण में विकल्प, क्षण में आनन्द, क्षण में विकल्प और क्षण में मात्र आनन्द, ऐसी दशा में मुनिराज जगत के अज्ञानी प्राणी को सीधा समझने आया उसको बिचारे को आत्मा क्या? कुछ समझता नहीं, उसको समझाने कि लिये (कहते हैं)।

'**असत्यार्थ जो व्यवहारनय...**' देखो! वहाँ भी असत्यार्थ कहा है। '**व्यवहारोऽभूदत्थो**' ११ वीं गाथा में। यहाँ भी अभूतार्थ कहा है। वहाँ अभूतार्थ आश्रय लेने के लिये नहीं है इसलिये कहा है। यहाँ व्यवहार अभूतार्थ समझाने को कहा है। समझ में आया? ग्यारहवीं में कहा कि व्यवहार अभूतार्थ है। भगवान द्रव्यस्वभाव त्रिकाल सो भूत नाम सत्य नाम सत्य परमेश्वर, सत्य परमेश्वर स्वयं है। उसका आश्रय कर तो धर्म हो, सम्यग्दर्शन हो, अनुभव हो, चारित्र हो। '**व्यवहारोऽभूदत्थो**' एक समयकी पर्याय राग, निमित्त सब असत्य है। असत्य अर्थात् अविद्यामान है। अविद्यमान अर्थात् है नहीं। किसमें? इसमें नहीं है। उसमें भले हो लेकिन इसमें नहीं और अभेद में भेद दिखते नहीं, इसलिये उसको असत्यार्थ कहकर निषेध कराया है। आश्रय करनेलायक नहीं है।

यहाँ तो भगवान आत्मा जिस स्वरूप है उसे उस तरह समझता नहीं, उसे समझाते हैं कि देख भाई! यह मनुष्य वह जीव है, हाँ! यह विचार कौन करता है? विश्वास किसको आता है? तुझे विश्वास कोई चीज़ में है? हाँ, मेरे पुत्र पर बहुत विश्वास है, मेरी पत्नी पर बहुत विश्वास है। वह विश्वास किसकी पर्याय है? क्या है वह? यह विश्वास जड़ में होता है? जड़ को होता है? जड़ का विश्वास हो सकता है कि यह जड़ है ऐसा विश्वास होता है आत्मा को। लेकिन जड़ में विश्वास नहीं होता। विश्वास की शक्ति और विश्वास का कार्य जड़ में हो सकता नहीं। उसको विश्वास है, ओहो..! जगत के पदार्थ यह पत्नी है, पुत्र है, बहुत अच्छे हैं, मेरे पुत्र इतने अच्छे, पत्नी अच्छी। सब के घर है लेकिन मेरा घर कोई दूसरी तरह का है। ऐसा विश्वास है कि नहीं तुझे? हाँ। यह विश्वास बाहर का है, वह विश्वास कहाँ रहता है? अन्दर में। उस विश्वास को धरनेवाला आत्मा है। उस विश्वास को धरनेवाला वह आत्मा है। ऐसा उसको समझाने के लिये अज्ञानी को निश्चय समझाने को यह व्यवहार भेद करके समझाता है। नेमिचन्दभाई!

'**मुनिराज अज्ञानी को समझाने के लिये असत्यार्थ जो व्यवहारनय उसका उपदेश देते हैं।**'

यह असत्यार्थ है हाँ! मनुष्य आदि के तीन बोल कहे न? मनुष्य जीव, नारकी जीव निश्चय से तो असत्यार्थ है। ऐसे राग, व्रत के नियम का भेद करके मोक्षमार्ग समझाया वह भी निश्चय से असत्यार्थ है। समझ में आया? वह सत्य वस्तु नहीं है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुण, पर्याय भेद से समझाया। वहाँ भेद नहीं है। वह तो एकरूप वस्तु, पूरी इँट है। चैतन्य इँट है एकरूप। लेकिन इँट को कैसे बतानी? देखो! ऐसी पीली है वह, ऐसे आकारवाली वह, गोल आकारवाली वह, अलग छापवाली वह है। कोई छाप भी होगी कि नहीं इँट में? छाप होती है अन्दर। एक रुपये की इँट आती है, एक रुपये की आती है, पाँच रुपये की आती है, दस रुपये की आती है। आती है कि नहीं? यहाँ एक-एक रुपये की इँट आती है न, पैर में रखते हैं तब देखते हैं कि यह इँट लगती है। कहो, समझ में आया? इँट की पहचान करानी हो तो फलाने की छाप है, ऐसी पीली है, ऐसी है ऐसा कहकर पहिचान कराते हैं। वहाँ तो है सो है। एकसाथ है। ऐसे भगवान चैतन्य-इँट को समझाने के लिये ज्ञानियों ने भेद कर के उसको समझाया, मुनिराजने।

परन्तु '**जो केवल व्यवहार को ही जानता है,...**' देखो अब। जो केवल व्यवहार को जाने। लेकिन उसको समझाने के लिये कहा। वहाँ से हटाकर परमार्थ समझाने के लिये था। उसके बदले केवल व्यवहार को जाने। बस! मनुष्य वह जीव, नारकी जीव, ज्ञान एक गुणरूप पूरा जीव, ऐसे भेद को ही पूरा स्वरूप मान लिया। व्यवहार को जाने अथवा राग-विकल्प आये, देखो! बराबर देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची भक्ति आये पहली। उसके बिना आत्मा का भान होता नहीं। इसलिये विश्वास करो। सच्चे देव-गुरु को पहिचान। तो वह मान ले कि वही कोई सत्य वस्तु लगती है। यही सत्य वस्तु है। लेकिन वह तो मान्यता का राग पहले आता है, उसको ही तु मान ले, अज्ञानी व्यवहार को ही मान बैठे हैं। '**केवल व्यवहारही को जानता है,...**' देखो! ऐसी गाथा कैसी टोडरमलने ढूँढकर रखी है। वह बात नहीं रखी। '**व्यवहारोऽभूदत्थो**' रखी। भाई! लेकिन बारहवीं नहीं रखी। उसको यहाँ व्यवहार सिर्फ समझाने के लिये है, इतना ही उसको कहना है।

'**केवल व्यवहारही को जानता है,..**' केवल निमित्त को ही पहिचानता है, केवल दया, दान के राग को पहिचानता है, गुणी वस्तु अभेद है उसके केवल गुणभेद को जानकर बैठ गया है, '**उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' आहाहा..! उसको तो उपदेश ही देना योग्य नहीं है। लायक नहीं है। हम व्यवहार से समझाना चाहते

हैं, उसकी जगह तुम व्यवहार को ही सत्य स्वरूप मान बैठा है। तेरे में समझने की लायकात ही नहीं है। सुनने की लायकात नहीं है ऐसा कहते है। आहाहा..! श्रोता कैसे होते हैं यह बताते है। सेठ!

अरे..! भगवान! परमेश्वरपद तेरा, यह तुझे समझ में नहीं आया हो, इसलिये भेद करके समझाते हैं। विकल्प आये, आये बिना रहता नहीं। आवश्यक है, आवश्यक है कि नहीं? उस पर जोर देता है। यहाँ तो अनेक अनुभव हुए हैं न, अनेक लोग अनेक प्रकार की बातें हुई है। एक कहता था, विकल्प आवश्यक है कि नहीं? विकल्प आवश्यक है। बापु! आता है भाई! क्या तुझे जोर देना है? कितना देना है? वह आता है वह अन्दर समझने के लिये, जाने के लिये फिसलने का कदम है। समझ में आया? वहाँ से हटकर यहाँ आये तो। वरना यहाँ से हटकर, वहीं के वहीं पड़ा रहे तो चौरासी के अवतार में जाता है। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! सत्य है? देखो! **'जो केवल व्यवहार को जानता है...'**

श्रोता :- उसमें तो ऐसी बात लिखते हैं कि दृढ़ होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं, नहीं। केवल व्यवहार को जानता है कि वह समझाने की बात से मुझे विकल्प आया, यह समझाते हैं इसलिये समझ जाऊँगा। कहो, समझ में आया? वस्तु तो ऐसी निरालम्ब चीज है। आता है कि नहीं अपने? समवसरण में नहीं आता है? लिखा है न पंडितजीने। 'जेवुं निरालंब आत्मद्रव्य, एवो निरालंब जिनदेह' भगवान समवसरण में निरालम्ब शरीरसहित निरालम्ब (विराजते हैं), हाँ। निरालंबन सब परमाणु और सब आत्माएँ। किसी को किसी का आधार नहीं है। लेकिन वह समीपता दूर हो गयी, सिंहासन से समीपता ऐसे दूर हो गयी, निरालंब भगवान समवसरण में विराजते हैं। निराधार, हाँ! सिहांसन को उनका शरीर स्पर्शता नहीं है। गंधकूटी से निरालंब ऊपर शरीर होता है। देह होने पर निराधार। 'जेवुं निरालंबी आत्मद्रव्य, तेवो निरालंबी जिनदेह' समवसरण की स्तुति में आता है। ऐसे निरालम्बी सब द्रव्य। लेकिन यह तो प्रगट हुई दशा को वर्णन करने में ऐसा कहा।

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा को विकल्प का आलम्बन समजाने के लिये आता है। समझ में आया? भगवान बिराजते हों मूर्ति। देखो भाई! ध्यान कर, तु लक्ष्य कर। केवलज्ञान की मूर्ति ऐसे थँभ गयी है, ऐसे यह भगवान हैं। हिलते नहीं, चलते नहीं। जैसे ज्ञाता-दृष्टा लोकालोक को जानने की पर्याय में घूँटता रहता है, परिणमन कर रहे हैं, ऐसे देख, ऐसे तु देख। वहीं बैठा रहे कि इससे प्राप्त होगा, इससे प्राप्त

होगा। समझ में आया? तब मात्र व्यवहार को समझनेवाले '**केवल व्यवहारको ही जानता है, उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' ओहोहो..! आचार्य इतने निष्ठुर! कोई ऐसा कहता है। ये सब प्रश्न उठे हैं। जगत के लिये आचार्य इतने बेदरकार! जगत के जीव की कुछ करुणा नहीं? व्यवहार को माननेवाला उपदेश के लायक नहीं है। उस व्यवहार को छुड़ाकर, व्यवहार द्वारा निश्चय समझाना चाहते हैं, वहाँ तु व्यवहार को पकडकर बैठ गया कि, ए.. व्यवहार, व्यवहार बीच में आता है कि नहीं? कहते है कि नहीं? तु समझने के लायक ही नहीं है। निश्चय वस्तु क्या है, परमार्थ से भगवान का सत्य मार्ग क्या है वह समझने के लायक नहीं है। व्यवहार के उपदेश के लायक नहीं है। यहाँ तो ना कही है। '**उपदेश देना योग्य नहीं है।**' लो। '**उपदेश देना योग्य नहीं...**' आहाहा..!

जिस बात हटने के लिये है उस पर जोर देनेवाले, मात्र व्यवहार को ही माननेवाले, वस्तु पूर्ण अखण्ड प्रभु चैतन्य भिन्न निर्विकल्प आनन्दकन्द है, उसमें जाने के लिये विकल्प आये, आये बिना रहे नहीं, उसके द्वारा जा, समझ ऐसा कहने में आता है। स्वयं को भी उसके द्वारा प्रयोजन में आये बिना रहता नहीं। लेकिन उसको ही मान ले कि देखो! आया की नहीं? आया की नहीं? उसके बिना चले? उसके बिना चले? विकल्प बिना होता नहीं और विकल्प से होता नहीं। ऐसा कहकर उस पर ज़ोर दे। विकल्प बिना होता नहीं। सुन न! वह तो विकल्प वहाँ होता अवश्य है, लेकिन उसके बिना होता नही उसका अर्थ उसको छोड़कर वहाँ जा, इसलिये कहा कि वह आता है और उसके द्वारा होता है। बाकी तो होता है तो उसके बिना ही। मालचन्दजी! विकल्प द्वारा नहीं। आहाहा..! यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, ब्रह्मचर्य पाला उससे धर्म हो गया, उससे धीरे-धीरे होगा। धूल में भी नहीं होगा। समझ में आया? मूसन के अन्दर मस्तक कूट जायेगा।

भगवान चैतन्य का तत्त्व जो अखण्ड है, उसको समझाने के लिए संतोने अज्ञानी को भेद कर के समझाया। उसकी जगह भेद को ही पूरी वस्तु मान ले, राग को ही पूरी चीज मान ले, निमित्त से ही होता है ऐसे पूरा सर्वस्व आरोपित में अनारोप मान ले, उसको तो उपदेश देना ही योग्य नहीं है। आहाहा..! अर्थात्? वह नहीं समझेगा।

कहा था न एक एक बार? मुनियों उपदेश देते हैं कि '**वचनगुप्ति एणंभत्तं जीवे किं जणी**' वचन को गुप्त रखने से क्या लाभ? कि एक तो बाहर से विकल्प हट जाते हैं, अन्तर में ध्यान करने तरफ उसका झुकाव ज्यादा हो, जहाँ ऐसा उपदेश चलता

हो, वहाँ वह कहे कि महाराज! आप वचनगुप्ति का लाभ बताते हो और आप तो बोलते हैं। यह तो पोथी में रखे हुए बैगन लगते हैं। पोथी के समझते हो कि सेठ? ब्राह्मण की बात नहीं आती? ब्राह्मण है, एक ब्राह्मण था। वह कहता था, बैगन नहीं खाना चाहिये। समझे न? बैगन से ऐसा होता है। कथा में बात आयी थी। बैगन नहीं खाना चाहिये। बैगन का टोपा होता है न? उसमें जंतु बहुत होते हैं। टोपा होता है न सफेद, काला उपर? समझ में आया? बैगन होते हैं न बैगन? बैगन। उसमें टोपा होता है। विचार में अटका था उसमें कोई दूसरा कारण था। समझ में आया? बैगन सम्बन्धी कारण था। उसमें जो टोपा है, उसमें जन्तु होते हैं। इसलिये वह कहे, नहीं खाने चाहिये। बैगन नहीं खाने चाहिये ऐसा कहते थे वह। सुबह जब उसकी स्त्री आयी गोराणी। शेर, सवा शेर बैगन लेकर आना। पन्डितजी कल ना कहते थे न? वह पोथीवाले बैगन। पोथी में लिखे हुए बैगन नहीं खाने चाहिये, यह बैगन खा सकते हैं। समझ में आया? कहो, समझ में आया?

'**केवल व्यवहारही को जानता है,...**' समझ में आया? '**उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' आप कहते थे न? व्यवहार की आप ना नहीं कहते थे? वचनगुप्ति का कहा था। लेकिन सुन न बापू! यह पोथीवाले बैगन नहीं है। वह समझाने वक्त उसके स्वरूप के ऐसे समझाते हैं और ऐसा विकल्प आये। परन्तु अभिप्राय में ऐसा है कि वाणी भी बन्द हो जाये। अर्थात् वाणी बन्द नहीं करनी है। लेकिन उस तरफ का विकल्प घटकर स्वरूप में स्थिर हो जाये, उसको अन्तर ध्यान होने का साधन बने इसलिये वचनगुप्ति का यह फल, उसका स्वरूप समझाने के लिये कहा है। तब वह गले पड़े। ऐसे व्यवहार समझाने में आये तो वह गले पड़ता है कि देखो! व्यवहार आया कि नहीं? आया कि नहीं? दीपचन्दजी! समझ में आता है? व्यवहार आया की नहीं? भाई! आया। कितना ज़ोर तुझे देना है? समझ में आया?

'**केवल व्यवहारीको जानता है, उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' कितनी अच्छी बात रखी है देखो! अमृतचन्द्रचार्य मुनि जंगल में बसते थे। आनन्दकन्द में चारित्र में झुलते। शान्ति के रस में स्वाद लेते थे। गन्ने को चुसने से जैसे रस आता है न? ऐसे भगवान आत्मा को एकाग्रता द्वारा चुसते हैं। आनन्द के स्वाद में लिखा, अरे..! जीवो! व्यवहार से हम आप को समझाते हैं और यदि आप व्यवहार को ग्रहण करोगे और व्यवहार केवल आप को सर्वस्व हो जायेगा तो हमारे उपदेश में जो वस्तु कहनी है वह छूट जायेगी। हमें, व्यवहार को व्यवहार की तरह नहीं समझाना

है, व्यवहार द्वारा निश्चय को समझाना है। उसकी जगह आप व्यवहार को समझकर बैठ जाओगे तो सम्यग्दर्शन नहीं होगा--धर्म नहीं होगा। और व्रत, तप तो तीन काल में सम्यग्दर्शन के बिना हो सकते नहीं। समझ में आया?

'**तथा जैसे कोई...**' दृष्टान्त देते हैं देखो आचार्य। '**जैसे कोई सच्चे सिंहको न जाने...**' सच्चा सिंह होता है न सिंह? उसको न जाने। '**उसे बिलाव ही सिंह है;...**' कोई पहिचान करवाता है न? उसकी माँ पहचान कराती हो। बिल्ली नीकली, बिंदी-बिंदी होती है न? रंगबिरंगी धारियाँ। देखो! अरे.. पुत्र! देख, ऐसा सिंह होता है। देखो यह सिंह है। ऐसा सिंह है ऐसा कहती है। ऐसी दो बड़े रोंटे मुंछ के होते हैं, उसके जैसा सिंह होता है। रंगबिरंगी धारियाँ। बड़ा जंगली बिलाव हो। देख, यह सिंह जैसा है, सिंह जैसा है। वह बिलाव को सिंह मान लेता है। लडके ने देखा न हो।

एक बार कहा था न? कुवाडिया में कुवाडिया। कुवाडवा है न? कुवाडवा। वहाँ स्कुल में ठहरे थे। एक मगरमच्छ.. मगरमच्छ क्या मच्छर। बच्चों को समझाने के लिये मास्तरजी ने मच्छर का चित्र बनाया था। हमने वहाँ देखा था, मच्छर मच्छर इतना बड़ा बनाया था। मच्छर के पैर, चहेरा। वह बच्चे को समझाते थे कि देखो! मच्छर ऐसा होता है। ऐसे में गाँव में एक हाथी आया। मास्तरजी! आपने उस दिन समझाया था न? ये रहा मच्छर। पैर लम्बे, ऐसा चहेरा। अरे...! बापु! तुझे तो मच्छर का छोटा स्वरूप समझ में नहीं आये, इसलिये लम्बे पैर बताकर, चहेरा चौड़ा बताकर उसके रोंटे छोटे छोटे होते हैं उसको बडा करके उसका रूप बताने को तुझे कहा था। समझ में आया? उसको तुने पकड़ लिया। हाथी के चार पैर, सूंढ, पूंछ ऐसी। आहाहा..! अरे..! बच्चे! वह मच्छर नहीं है। तब क्या है? यह तो हाथी है। तब मास्तरजी! आपने इतने बड़े पैर बनाये थे। वह तो तुझे छोटे का बडा रूप बनाकर उसके अवयव का ख्याल करने के लिये समझाया था। लेकिन तुमने पकड़ लिया कि उसके अवयव ऐसे हाथी के जैसे होंगे। नेमचन्दभाई!

ऐसे सिंह को जो जानता नहीं, उसको तो बिलाव। बिलाव समझते हो न? बिल्ली। बिल्ली इतनी होती है। '**बिलाव ही सिंह है;...**' बिल्ली को समझाने गये। ऐसे अज्ञानी को समझाने गये कि, देखो, राग की मन्दता ज्ञान, दर्शन, चारित्र ऐसे भेद करके आप को समझाते हैं कि यह आत्मा। वहाँ जैसे बिल्ली सिंह हो गयी, ऐसे अज्ञानी को व्यवहार ही सच्चा हो गया। वह व्यवहार में अटक गया और परमार्थ में गया नहीं।

समझ में आया?

कहाँ कौन ऐसी झंझट करे? अपने तो करने लगो मुट्ठी बाँधकर। हो गया धर्म। परन्तु धर्म कहाँ करें? किस चीज में करना? वह चीज कहाँ है? कैसी है? और किस तरह समझ में आये उसकी खबर बिना कहाँ स्थिर होगा और कहाँ प्रवेश करेगा? समझ में आया? कहाँ गुम होगा? गुम होने की चीज अन्दर दूसरी है। उसकी खबर नहीं और मात्र व्यवहार विकल्प को बाहर ढूँढता रहे, वहाँ कुछ हाथ नहीं लगेगा।

'जैसे कोई सच्चे सिंह को न जाने उसे बिलाव ही सिंह है; उसी प्रकार जो निश्चयको नहीं जाने...' ज्ञानानन्द मूर्ति अभेद अखण्डानन्द स्वरूप है उसको तो जानता नहीं। **'उसके व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है।'** व्यवहार से होगा.. व्यवहार से होगा... व्यवहार कारण है, निश्चय कार्य है। ऐसा कहकर सच्चा कारण मानकर व्यवहार भी एक सच्चा कारण है। जैसे निश्चय सच्चा कारण है, वैसे व्यवहार भी सच्चा कारण है ऐसा मान बैठे तो वह निर्विचारी पुरुष है। उसको धर्म का भान नहीं है। **'व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है।'** समझ में आया?

अबकी बार महोत्सव में यह अधिकार आया। व्यवहार-निश्चय का अधिकार बहुत अच्छा था। समझ में आया? वस्तुस्थिति सर्वज्ञ प्रभु जैन परमेश्वर परम ईश्वरता जिसको पूर्ण प्रगट हुई ऐसे जैन परमेश्वर, वाणी में व्यवहार द्वारा निश्चय को समझाये ऐसा उनकी दिव्यध्वनि में भी आये। समझ में आया? आता है एक साथ, परन्तु समझनेवाले की योग्यता के अनुसार समझ में आये ऐसा उसमें सब आता है, चारों अनुयोग आते हैं उसमें। उसमें समझनेवाले को ऐसा हो जाय कि देखो! भगवान कहते हैं कि दिव्यध्वनि से धर्म समझ में आता है। देशनालब्धि प्राप्त करे उसको समझ में आये। वह समझे। देशना सच्चे ज्ञानी के पास से मिलनी चाहिये। वह मिले तो उसको आत्मा का ज्ञान होता है। वहाँ समझ ले कि देशना मिली इसलिये ज्ञान हुआ। समझ में आया? ऐसा मान बैठे तो उसको व्यवहार ही निश्चय हो गया। बिलाव ही सिंह हो गया। सच्चा सिंह तो एक ओर रह गया। इस प्रकार व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त हुआ। समझ में आया इसमें कुछ? अभी तो इसकी बड़ी गड़बड़ी चली है। शास्त्र के नाम पर, व्रत, क्रिया के नाम पर ऐसे ऊलटे अर्थ और ऊलटी कथनपद्धति चली है कि सत्य तो एक ओर रह गया।

यहाँ आचार्य कहते हैं... देखोआ यह बात ९०० वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य महाराज पुरुषार्थसिद्धियुपाय (में कहते हैं)। अर्थात् पुरुष ऐसा आत्मा, उसकी सिद्धि का उपाय।

उसको बताने के लिये यह लिया कि व्यवहार से अन्दर जाये तो, उस व्यवहार भेद से समझाया इसलिये समझा ऐसा कहने में आता है। यह पुरुषार्थसिद्धि अर्थात् आत्मा की सिद्धि का उपाय है। परन्तु व्यवहार को ही सच्चा मान ले तो पुरुषार्थसिद्धि उपाय उसको हाथ नहीं आता। समझ में आया?

एक ओर ऐसी बात आये कि आत्मा धर्म समझे, सम्यक् को प्राप्त करे तब वहाँ दर्शनमोह का उदय स्वयमेव मिटता है, स्वयमेव मिटता है। स्वयमेव मिटे तो यहाँ ज्ञान कर्म होता है। वह वज़न क्या देता है? वहाँ कर्म स्वयमेव मिटे तब यहाँ ज्ञान होता है। परन्तु यहाँ कहते है कि यहाँ होता है तो वहाँ स्वयमेव मिट ही जाता है। ऐसे समझाना चाहते हैं तो वह यहाँ से लेकर बैठ जाता है। बड़े वांचनकार हों! सैंकडो साल से। सेंकडो अर्थात् बहुत साल से। समझ में आया? पढ़-पढ़कर निकाले कि देखो, इसमें कहा है। कर्म उपशम हो तो धर्म प्राप्त करे। कर्म में कुछ उघाड़ हो है तो ज्ञान का उघाड़ होता है। अरे..! ऐसा ऊलटा रहने दे। वह तो निमित्त से समझाया था। वहाँ ऐसे ले कि उसमें कुछ होता है तो मुझ में हो। परन्तु तुझ में उघाड हो तो वहाँ वह हुए बिना रहता नहीं। आहाहा..!

उसकी प्रभुता सम्यग्दर्शन में किस तरह है, उसको समझाने के लिये भेद कर के कथन किये हैं। यहाँ तो यह कहा। व्रत, नियम, दया और दान को व्यवहार से समझ में आयेगा, उससे समझाया है ऐसा भी यहाँ नहीं है। वह तो है भी नहीं कि नहीं, तेरे दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हुए, इसलिये धीरे-धीरे उसके द्वारा समकित होगा। ऐसा तो है ही नहीं। यह तो अन्दर वस्तु की समझन की एकता होने पूर्व, समझने की एकता होने पूर्व, समझने के भेद के विकल्पो द्वारा उसको समझाते हैं। बहुत गहरी बातें। धीरुभाई!

एक बार सत्य क्या है उसके लक्ष्य में, निर्णय में, वीर्य में, श्रद्धाशक्ति में, ज्ञानशक्ति में, वीर्यशक्ति में यथार्थता न आये तो यथार्थ वस्तु की प्राप्ति तरफ जायेगा कैसे? समझ में आया? अभी यथार्थ शक्ति क्या है उसका कार्य कितना है, श्रद्धा का, ज्ञान का, वीर्य का, कुछ मालूम नहीं और हम समकिती है और ये व्रत, तप किये, वह तो समकित हो तो ही व्रत, तप होते हैं न? मालचन्दजी! व्रत, तप किसको होते हैं? समकित के बाद। हमें व्रत और तप तो है, इसलिये समकित तो आ गया, नीचे ही होता है। नीचे होता है अर्थात् नहीं होता। तुझे भान कब था? सम्यक् हुआ माने उसका भान हो गया, परमेश्वर होने की तैयारी हो गयी। परमेश्वर की भनक लगी,

भव की भनक गयी। समझ में आया? ऐसे तत्त्व के भान के लिए व्यवहार समझाने के लिये आता है। उसको ऐसा कहे, बापु! समझो, थोडा परिचय करो।

श्रीमद् एकबार बैठे थे। शरीर बराबर ठीक नहीं था। बैदने कहा था कि दूसरे के साथ बहुत बोलना नहीं। अकेले बैठे थे, उसमें एक आदमी आकर बैठा। आप व्यवहार का उथापते हो? सीधा प्रश्न किया आकर। महावीर ने कहे हुए व्यवहार को आप उथापते हो? भाई! महावीर ने कहे हुए व्यवहार को हम उथापते नहीं। थोड़ा परिचय करो तो समझ में आयेगा। इतना बोले। लालचंदभाई! आप व्यवहार का उथापन करते हो? वह शायद यही थे, बारोट आते हैं, बारोट मर गये न वहाँ? भगवानभाई बात करते थे, वडवा में वृद्ध थे न? गीरधर। बहुभाग वही थे, बहुभाग वही थे। वहाँ गये थे। वह कठोर–कठोर क्या? उस गाँव में गये थे। वहाँ गये थे।

इसलिये उन्होने पूछा। वह तो चल बसे न? चल बसे। पहले तो भडककर गये थे न? ये तो व्यवहार उथापते हैं, व्यवहार उथापते हैं, व्यवहार उथापते हैं। आप व्यवहार को उथापते हो? कहा कि भाई! भगवान महावीर द्वारा कहे हुए व्यवहार को हम उथापते नहीं है। जैसा है वैसा हम कहते हैं। लेकिन आप थोड़ा परिचय करो तो समझ में आये। लो, दूसरा क्या कहे उसको? वह सब व्यवहार–वाक्य हुए। परिचय करो तो समझ में आये। लेकिन ऐसा कथन आये बिना रहे नहीं। लेकिन उसको ही मान ले कि देखो! निश्चित ही हमें उनके परिचय से प्राप्त होगा ऐसा वह कहना चाहते हैं और अन्य के परिचय से प्राप्त नहीं होगा ऐसा कहना चाहते हैं। भाई! व्यवहार के कथन की पद्धति तो ऐसी ही आये, लेकिन उसको ही निश्चय माने तो व्यवहार ही, बिलाव जैसे सिंह हो गया, ऐसे उसको व्यवहार निश्चयपने को प्राप्त होगा।

'**यहाँ कोई निर्विचारी पुरुष ऐसा कहे कि...**' निर्विचार मनुष्य समझे बिना इस तत्त्व की बात को पकड़े बिना एकदम (कहे कि), आप व्रत, तप, नियम को आप व्यवहार कहते हैं इसलिये हम छोड देंगे। उसको तो आप हेय कहते हो। समझ में आया? उसको हम छोड देंगे। आप तो उसमें कुछ लाभ कहते नहीं। अरे..! सुन न, उसमें लाभ कौन कहता है? परन्तु हम किस अपेक्षा से कहते हैं उसको तुम समझते नहीं। उसका अब प्रश्न करेंगे और उत्तर देंगे। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :– प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.–२४८८, चैत्र वद १, शुक्रवार, दि.२०–४–१९६२
अधिकार – ७, प्रवचन नं.–२१

२५८ पन्ना। निश्चय और व्यवहार की बात चलती है। व्यवहार है वह असत्यार्थ है, हेय है ऐसा कहा। ऊपर कहा न? तब शिष्य को प्रश्न हुआ। उस प्रश्न से चलेगा। '**तुम व्यवहार को असत्यार्थ–हेय कहते हो;...**' व्यवहार अर्थात्? वह ऐसा मानता है कि व्रत के परिणाम, संयम के, इन्द्रियदमन के, शील के जो शुभभाव होते हैं उसको आप असत्यार्थ कहते हो, हेय कहते हो, '**तो हम व्रत, शील, संयमादि व्यवहारकार्य किसलिये करें?**' शिष्य का प्रश्न है। हम तो, यह व्रत पालना, शील पालना, इन्द्रियदमन करना, संयम आदि का पालन करना, छ काय की हिंसा आदि के भाव छोड़ना और अहिंसा आदि के भाव होना, उन सब व्यवहारकार्य को तो आप जूठा कहते हो। वीतराग कहते हैं कि यह कोई मार्ग नहीं है। वह असत्यार्थ, व्यवहार असत्यार्थ है और हेय है, छोड़ने लायक है। तो हम व्यवहारकार्य किसलिये करें? सब छोड देंगे व्रत, नियम, संयम के शुभभाव को छोड़ देंगे। ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

'**उसे कहते हैं कि कुछ व्रत, शील, संयमादिकका नाम व्यवहार नहीं है;...**' व्रत का परिणाम, शील और ब्रह्मचर्य का परिणाम, इन्द्रियदमन के परिणाम, छ काय को नहीं मारने का परिणाम, वह परिणाम है, उसका नाम व्यवहार नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। वह तो एक शुभ परिणाम है। उसका नाम व्यवहार नहीं है। '**इनको मोक्षमार्ग मानना वह व्यवहार है,...**' यहाँ ऐसी बात है। समझ में आया? व्रत, शील, संयम, इन्द्रियदमन, भक्ति, पूजा, वगेरे शुभभाव वह कोई व्यवहार नहीं है। वह तो जीव की एक विकारी पर्याय है। लेकिन उसको मोक्षमार्ग मानना, वह मोक्षमार्ग नहीं है। व्रत, नियम, ब्रह्मचर्य आदि के परिणाम, छ काय की दया के भाव, पूजा, भक्ति वह तो शुभभाव है, शुभ परिणाम है, पुण्यबन्ध के भाव हैं, वह कोई मोक्षमार्ग नहीं है। उसको, मोक्षमार्ग जो नहीं है उसको मानना उसका नाम व्यवहार है। समझ में आया?

परन्तु '**इनको मोक्षमार्ग मानना...**' अर्थात् वह मोक्षमार्ग नहीं है। आत्मा के परिणाम में शुभभाव हो, वह पुण्य का भाग है, राग है, विकल्प है, उपाधि है। जैसे

पाप का भाव उपाधि और मलिन राग है, वैसे पुण्य का भाव वह शुभभाव मलिन है, उपाधि है। लेकिन उस उपाधि को मोक्षमार्ग मानना उसका नाम व्यवहार है। क्योंकि वह मोक्षमार्ग नहीं है। वह छोड़ दे, मोक्षमार्ग मानना छोड़ दे। व्रत, नियम, शील के परिणाम कहाँ-से छूटेंगे? शुद्धोपयोग हुए बिना, अंतर में गये बिना शुद्ध आत्मभान सहित हुए बिना वह परिणाम छूटेंगे नहीं। श्रद्धा छोड़ दे कि यह भाव होते हैं वह मोक्षमार्ग है, ऐसी श्रद्धा छोड़ दे।

'**और ऐसा श्रद्धान कर के...**' ऐसे श्रद्धान से अर्थात्? कि आत्मा में व्रत, शील, ब्रह्मचर्य के परिणाम, इन्द्रियदमन के परिणाम शुभभाव होते हैं। वह मोक्षमार्ग नहीं है ऐसी श्रद्धा छोड़ दे। वह मार्ग नहीं है। '**ऐसा श्रद्धान कर के इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचारसे मोक्षमार्ग कहा है,...**' उस मोक्षमार्ग की श्रद्धा को छोड़ दे और व्रत, नियम के जो भी शुभ परिणाम हो, ऐसी श्रद्धा कर कि वह मोक्षमार्ग नहीं है। '**इनको तो बाह्य सहकारी जानकर...**' पुण्य के परिणाम शुभभाव को, आत्मा अखण्ड आनन्द शुद्ध चैतन्य उसके अंतर अनुभव की दृष्टि और रमणता हो, वह सच्चा मोक्षमार्ग, वह धर्ममार्ग है। उसके साथ ऐसे व्रतादि के, नियमादि के शुभभाव होते हैं उसको '**सहकारी जानकर उपचारसे मोक्षमार्ग कहा है,...**' समझ में आता है कि नहीं? मालचन्दजी!

लोग तो कहते हैं कि व्यवहार... उसके निश्चय का ठिकाना न हो और व्यवहार व्रत और नियम यह सब मेरा मोक्षमार्ग और धर्ममार्ग है। यह जैन में रहनेवाले कि बात चलती है। जैन में जन्मे हो, फिर भी निश्चय स्वरूप क्या और व्यवहार क्या? दोनों के भान बिना के व्यवहार को ही मोक्षमार्ग मानकर उसका आदर करता है। तो कहते हैं कि वह मोक्षमार्ग नहीं है। शुभभाव व्रत, नियम, पूजा, भक्ति, दान, दया, यात्रा वह शुभभाव है, मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग नहीं है ऐसी श्रद्धा मोक्षमार्ग की छोड़ दे। और श्रद्धा छोड़ तो उसे बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहने में आये। श्रद्धा छोड़े तो। समझ में आया? लोगों को बहुत सूक्ष्म लगता है।

जैन में जन्मे, लेकिन निश्चय और व्यवहार क्या है उसकी उसको खबर नहीं। और मान बैठे कि यह व्यवहार है न? व्यवहार तो है न? व्यवहार तो है न? व्यवहार माने क्या? क्या व्यवहार है? व्यवहार मोक्षमार्ग है? व्यवहार धर्म है या व्यवहार परिणाम है? क्या है वह? समझ में आया? व्रत, शील, संयम आदि। छ काय के जीव को मारना नहीं, सत्य बोलना, चोरी नही करनी इत्यादि जो भाव, वह तो शुभराग है।

चैतन्य की एक विकारी परिणति अर्थात् अवस्था है। उसको तुम मोक्षमार्ग मानते हो कि यह मोक्षमार्ग व्यवहार से तो है न? मार्ग तो है न? मोक्षमार्ग तो है न? ऐसी श्रद्धा छोड़ दे। व्यवहार से मोक्षमार्ग कहा अर्थात् मोक्षमार्ग नहीं है। श्रद्धा छोड़ दे। समझ में आया इसमें?

'**ऐसे श्रद्धान कर के...**' वह मोक्षमार्ग नहीं है ऐसी श्रद्धा छोड़ दे और तब आत्मा में रागरहित शुद्ध चैतन्य निर्मल निर्विकल्प भगवान आत्मा, उसका विकल्प रहित, रागरहित आत्मा की श्रद्धा, आत्मा का ज्ञान, आत्मा की रमणता--चारित्र वह जितने अंश में प्रगट हुआ उतने अंश को निश्चय से मोक्षमार्ग कहने में आता है। ऐसा है। उसके साथ जो ऐसे शुभभाव व्रत, शील, संयम के हो तो उपचार से सहकारी जानकर साथ में निमित्तपने का लक्ष्य करके उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। मोक्षमार्ग है नहीं। बहुत सूक्ष्म भाई! समझ में आया? यहाँ तो अभी व्यवहार का भी ठिकाना नहीं हो और सब मान लेते हैं कि हमने धर्म किया, निश्चयमोक्षमार्ग, सच्चा मोक्षमार्ग साधते हैं।

निष्क्रिय राग रहित वस्तु, विकल्प जो व्रत, नियम, शील, पूजा, भक्ति का भाव उठे वह राग है, राग की क्रिया है अन्दर में। राग की क्रिया रहित केवल ज्ञानानंद चैतन्यस्वभाव शुद्ध पिण्ड चैतन्यमूर्ति, उसके अन्दर की शक्ति की प्रतीत, उस शक्ति का ध्येय करके ज्ञान, उस शक्ति का ध्येये करके स्थिरता होनी, वह निश्चय और सच्चा धर्म और मोक्षमार्ग है। तुम जो व्यवहार मोक्षमार्ग है, उसको मानना छोड़ दे, तो उस निश्चय के साथ में '**बाह्य सहकारी जानकर...**' बाह्य सहकारी हाँ। वह भी बाह्य सहकारी जानकर '**उपचार से मोक्षमार्ग कहा है, यह तो परद्रव्याश्रित है;...**' वह सब व्रत, शील, तप आदि तो परद्रव्य के लक्ष्य से, आश्रय से उत्पन्न हुए शुभभाव हैं। परद्रव्याश्रित भाव मोक्षमार्ग हो सकता नहीं। अहिंसा, सत्य, दत्त, पर को, इस जीव को नहीं मारना, इस भगवान की भक्ति करुं, इस भगवान का ज्ञान करुं, इस भगवान का महोत्सव करुं। समझ में आया? इस प्रकार परद्रव्य के लक्ष्य से हुए भाव वह मोक्षमार्ग हो सकता नहीं। धर्म नहीं। समझ में आया? भीखाभाई! परद्रव्य के आश्रय से धर्म--मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा कहते हैं, लो। ओहोहो..!

वीतराग कहते हैं कि तु मेरे सामने देखकर जो भाव कर, वह परद्रव्याश्रित भाव है, वह मोक्षमार्ग नहीं है। स्वद्रव्य चैतन्यमूर्ति भगवान केवल। (व्यवहार भाव) सहकारी है। परन्तु कब? जब वह निश्चय हो और इसको मोक्षमार्ग न माने, मोक्षमार्ग न माने,

धर्ममार्ग न माने तो उसको--निमित्त को सहकारी गिनकर उपचार से मोक्षमार्ग कहने में आये। इतनी शर्त से। कहो, समझ में आया? आहाहा..! ऐसी श्रद्धा हो कि यह व्यवहार है सो वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं है। यह व्यवहार है वह वास्तव में धर्ममार्ग नहीं है। धर्ममार्ग और मोक्षमार्ग तो आत्मा स्व चैतन्यमूर्ति प्रभु अखण्ड ज्ञानका कन्द है, उसमें एकाकार होकर जितनी निर्मल निर्विकारी रागरहित श्रद्धा, ज्ञान और रमणता प्रगट हुई इतना मोक्षमार्ग है। और उस व्यवहारमोक्षमार्ग की श्रद्धा छोड़ दी है इसलिये उनको बाह्य सहकारी जानकर, निश्चयमोक्षमार्ग के साथ ऐसे व्यवहारु परिणाम को देखकर उपचार आरोप से निमित्त देखकर, सहकारी देखकर, साथ में रहा हुआ देखकर बारदान को चावल कहा।

श्रोता :- बारदान बिना चावल कैसे होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री :- चावल तोले चार मण और ढाई सेर। समझ में आया? यह केसर-बेसर तौलते होंगे न? पहले पूरा डिब्बा तौलते थे। केसर का डिब्बा तौले। लेकिन केसर फूटे डिब्बे के प्रमाण में तो डिब्बा कहीं केसर के काम आये? ऐसे जितने आत्मा में अहिंसा, सत्य, दत्य, ब्रह्मचर्य या दूसरे को उपदेश देने का विकल्प, राग (उत्पन्न हो), वह सब परद्रव्याश्रित पुण्यबन्ध के कारण शुभभाव हैं। बड़ा कठिन भाई! वह तो कहे कि उपदेश देना यह धर्म है, निर्जरा है। क्यों दुर्गाप्रसागदजी! क्यों दूर बैठ गये?

श्रोता :- थोड़ा पुण्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- थोड़ा पुण्य है। हाँ, है न सेठे को। सेठ के गाँव में वह बहुत है। धर्म के साथ पुण्य होता है, पुण्य के साथ निर्जरा होती है। पुण्य के साथ निर्जरा होती है, निर्जरा के साथ पुण्य ही होता है। ऐसा बहुत (चलता है) उन लोगों में। क्यों मालचन्दजी? सब मालूम है उनका। उसके ५२ बोल है न ५२ बोल? सब देखा है बहुत साल पहले। ५२ बोल है वह हूंडी है, १०८ बोल या ऐसा कुछ है। वह पाठ में है। सब देखा है, सब पढा है उन दिनों में, बहुत साल पहले। (संवत) १९८३ की साल पहले। लीलाधरजी के पास। वह लीलाधरजी थे न तेरापंथी साधु थे, चार ठाने थे। लीलाधरजी, कस्तुरचन्दजी, लीलाधरजी समझे न? साकरचन्दजी। और एक थे। चार थे। उत्तमचन्दजी। चार ठाने। चारों मिले थे हम को। १९७५ में नागनेश में थे न? वह आये थे हमारे पास, सुनने को आये थे। बहुत प्रेम था हमारे पर। लीलाधरजी को तो बहुत प्रेम था। वह कहते थे कि ऐसा कहते हैं। उसके पास सब लिखावट

थी तेरापंथ का। सब हमने देखा है। ४० साल पहले सब देखा था।

क्या वस्तु? अभी तो बाहर की... उपदेश दूसरे को दे तो उसमें से धर्म होगा। दूसरे को बचाने का नहीं कहते, परन्तु हम उपदेश दे तो धर्म होता है। परन्तु उपदेश यह वाणी तो जड़ है। जड़ को दे कौन? बोले कौन? वाणी करे कौन? यह तो मिट्टी अजीवतत्त्व है। आहाहा..! उपदेश देने का विकल्प आये वह शुभभाव है और वह शुभभाव परद्रव्याश्रित है इसलिये पुण्यबन्ध का कारण है। उसमें निर्जरा, संवर–फंवर है नहीं। मालचन्दजी! नये लोगों को तो ऐसा लगे हाँ! क्या है यह? ऐसा कैसा मार्ग? वीतराग का मार्ग ऐसा होता है? हमने तो यह सब सुना है कि व्रत, नियम, दया, दान, पूजा, भक्ति आदि में धर्म है।

भाई! धर्म चीज़ कोई अपूर्व है, बापु! एक सेकन्ड भी अनंत काल में नवमी ग्रैवेयक गया जैन दिगम्बर साधु होकर, उसके अठ्ठाईस मूलगुण जंगलवासी, वनवासी, परन्तु चैतन्य का स्पर्श उसने किया नहीं। चैतन्य स्वयं वस्तु, वह शुभ और अशुभ रागरहित है उसका उसने स्पर्श किया नहीं। उसके स्पर्श बिना कभी धर्म होता नहीं। आहाहा..! क्या चलता है? जैन के नाम पर और उसके बहाने अभी... वह कहा न ऊपर? जैन मतानुयायी मिथ्यादृष्टि का स्वरूप। ऊपर शिर्षक वह है न?

जैन में जन्मे हो फिर भी उसको निश्चय और व्यवहार का भान नहीं है और व्यवहार के व्रत, नियम आदि को मोक्षमार्ग मानकर उससे कल्याण होगा आगे चलते चलते। कहते हैं कि तुझे व्यवहार का पता नहीं। उस व्यवहार को व्यवहार तब कहें कि भगवान आत्मा उस पुण्य–पाप के भावरहित निर्विकल्प आत्मानुभव की दृष्टि और उसमें स्वरूप की स्थिरता में आंशिक वीतरागी परिणति प्रगट हो, उसके साथ ऐसे शुभभाव होते हैं, उसको उपचार से सहकारी देखकर मोक्षमार्ग (कहने में आया है)। बारदान को चावल के साथ तौला, वैसे इसको––निमित्त को व्यवहार से तौला। लेकिन वह कुछ खाने के काम नहीं आता। बारदान खाने के काम आता है, चार मण ढाई शेर? चार मण चावल और ढाई सेर बारदान। चावल चावल में ही रहे हैं। बात ऐसी है। चावल बारदान में रहा ही नहीं। चावल का एक एक कण। अरे..! चावल के अन्दर का एक–एक परमाणु। एक–एक परमाणु में आधार नाम का उसमें एक गुण है। परमाणु में आधार नाम का अनादिअनन्त एक गुण है। आधारगुण की पर्याय से परिणमन करता हुआ अपने आधार से वहाँ रहा है। आहाहा..! यह वीतरागमार्ग।

श्रोता :– यह तो सब निश्चय की बात करी, व्यवहार?

पूज्य गुरुदेवश्री :- व्यवहार क्या? नीचे चावल हो और उसके कारण से रहा है ऐसा कथनमात्र कहना है। नीचे बारदान के कारण से चावल रहा है वह, बारदान का निमित्त देखकर उपचार से कथन करने में आया अर्थात् वह असत्यार्थ है। ऐसा है नहीं। व्यवहारकारक जितने कहने में आते हैं कि इसके कारण से यह, इसके कारण से यह, वह सब व्यवहारकारक असत्यार्थ है, जूठे हैं और निश्चय कारक ही सच्चे हैं। आहाहा..! जगत को बहुत कठिन लगे। समझ में आया इसमें?

एक-एक परमाणु--एक रजकण पोईन्ट, चावल का एक रजकण। चावल तो अनंत रजकण के अनंत स्कंध, अनंत स्कंध का एक चावल का पिण्ड, उसमें एक रजकण अपने कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकर अर्थात् आधार, अपने आधार गुणकी पर्याय से परिणमता हुआ उस क्षेत्र में, उस काल में, उस भाव में टिक रहा है। आहाहा..! जगत को वीतरागदर्शन जैन सर्वज्ञदर्शन क्या है वह सुनने मिले नहीं और अपनी कल्पना से मान बैठे। समझ में आया? बारदान के कारण चावल नहीं रहे हैं। चावल बारदान के कारण रहे हैं ऐसा कहना वह व्यवहारनय का असत्यार्थ, असद्भुतनय का कथन है।

श्रोता :- ऐसे प्रभु नहीं मिलते तो...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहो, समझ में आया? बोलने में तो ऐसा ही आये न?

परन्तु '**वह स्वद्रव्याश्रित है।**' जितना संयम का भाव, महाव्रत का भाव, अहिंसा का भाव आये वह सब विकल्प राग है, वह परलक्ष्य से उत्पन्न होता है। वह कोई आत्मा के स्वलक्ष्य से उत्पन्न हुआ भाव नहीं है। '**तथा सच्चा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है,...**' देखो आया। सच्चा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है, वह स्वद्रव्याश्रित है। स्वद्रव्य--केवल चैतन्य ज्ञायकमूर्ति प्रभु, उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो उस स्वद्रव्याश्रित को मोक्षमार्ग कहने में आता है। परद्रव्याश्रित जितना व्रत, संयम, इन्द्रियदमन, महाव्रत का परिणाम हो, वह सब बन्ध का मार्ग है। परन्तु निमित्त देखकर उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहा है, नहीं है उसको कहना उसका नाम व्यवहार। जैसा हो उसको ऐसा कहना और जानना उसका नाम निश्चय है। ओहोहो..! कहाँ दृष्टि और कहाँ (सत्य मार्ग पड़ा रहा)।

मनुष्यदेह मिला, संप्रदाय में जन्मा, जैन का सत्य तत्त्व क्या है, सुने नहीं, विचार करे नहीं। अरे..! अरे..! ऐसा (कहते हैं)। क्या इसके बिना रहा है? इसका बिना रहा है? कहा था न? आधार का दृष्टान्त अपने पहले लिया था, कैंची का। कैंची

वहाँ चढाई है न? प्रवचन मंडप में। १०० फूट और ५० फूट का होल है न? कैंची। अकेले से नहीं चढ़ती, दस लोगों से ऊपर चढे। दस लोग एकट्ठे हो तब ऊँची होती है। पाटनीजी! लेकिन दस इकट्ठे कब हुए यह तो पहले बता। ऐसा कहते हैं। एक है वही दूसरा है, वही तीसरा है, दस तो इकट्ठे हुए नहीं। तो एक से ऊँचा नहीं होता, दस लोगों से ऊँचा होता है, दसों दस अलग-अलग है। कोई दस इकट्ठे हुए?

श्रोता :- .. परंपरा...

पूज्य गुरुदेवश्री :- किसको करता है? एय..! रतिभाई! क्या तुम्हारे कागज़ में आता होगा? कागज़ में? कागज़ ऊँचा नहीं होता ऐसा कहते है यहाँ। ऐसे काटते हैं न? छुरी से। कहते हैं कि छुरी से वह कटता नहीं। अरे.. भगवान! वह तो अपनी उस पर्याय का अलग होने का परिणमन है इसलिये अलग हो होता है। छुरी से अलग हुआ वह उपचार असद्भूत व्यवहारनय का कथन है, असत्यार्थनय का कथन है।

जगत को द्रव्य, गुण और पर्याय स्वतन्त्र है, यह बात वीतराग मार्ग की जगत को मालूम नहीं है। वीतराग मार्ग के नामपर अज्ञानी का राग-द्वेष का मार्ग चलाया है। समझ में आया? सच्चा मोक्षमार्ग,... उपदेश देना या दया पालने का भाव होना वह सब आत्मा के अधिकार की बात, उसमें धर्म का अधिकार नहीं है। समझ में आया कुछ? हम उपदेश देते हैं, लाखो लोंग तीरे, समझे और उसका हमें लाभ मिले। ऐसा होगा कि नहीं? नहीं? मालचन्दजी! दूसरे लोग इतना-इतना धर्म प्राप्त करे, उसको उपदेश देने का कुछ लाभ नहीं? क्या है खीमचन्दभाई! नहीं? उसका अर्थ क्या? व्यवहार से निमित्त देखकर ऐसे कथन करने में आते हैं। लाभ-बाभ पर के कारण तीन काल में नहीं है। लाभ तो अपनी पर्याय का अपने द्रव्य के आश्रित हो वह लाभ। जितना परद्रव्याश्रित राग होता है वह भी अलाभ का, गैरलाभ का ही कारण है। लेकिन पूर्ण वीतराग न हो तब तक ऐसे शुभभाव आये बिना रहते नहीं। लेकिन उस शुभभाव को मोक्षमार्ग मानना छोड़ दे, सच्चा मानना छोड़ दे, उपचार है ऐसा कहे। ऐसा कहा न भाई? सच्चा मोक्षमार्ग है उसको छोड़ दे (अर्थात्) मानना छोड़ दे। बाद में व्यवहार है ऐसा जान। व्यवहार से उसको मोक्षमार्ग कहा है ऐसा जान।

'**तथा सच्चा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है, वह स्वद्रव्याश्रित है।**' सच्चा वीतराग आत्मा का स्वरूप, आत्मा स्वयं ही वीतरागी विज्ञानघन है। उसकी पर्याय में--अवस्था में दया, दान, पुण्य, पाप के विकल्प शुभाशुभ उठे वह तो विकार है, वह संसार है, उदयभाव है। उससे रहित केवल आत्मा वह तो वीतराग विज्ञानघन है। अकषाय

ज्ञान का पिण्ड है, अविकारी ज्ञान का पिण्ड है। अकषाय कहो, अविकारी कहो या वीतराग विज्ञानघन कहो। भाई! क्या होग यह? समझ में आया? ऐसे अविकारी विज्ञानघन चैतन्यपिण्ड की अन्तर्मुख होकर प्रतीत, ज्ञान और रमणता (हो), जिसमें शुभभाव का आश्रय और सहारा भी नहीं है, उसको तुम सच्चा मोक्षमार्ग जानो, वरना सच्चा मोक्षमार्ग हो सकता नहीं। समझ में आया?

'**इसप्रकार व्यवहार को असत्यार्थ-हेय जानना।**' देखो! क्या कहा? '**इसप्रकार व्यवहार को असत्यार्थ-हेय जानना।**' इसप्रकार अर्थात्? कि निश्चय आत्मा की श्रद्धा, व्यवहारमोक्षमार्ग व्रतादि नहीं है, मोक्षमार्ग तो आत्मा के आश्रय से शुद्ध चिदानन्द परमात्मस्वरूप अपना, उसके आश्रय से (है)। पोताना अर्थात् अपना। इतनी भाषा तो समझ में आती है न थोड़ी-थोड़ी? भाई! यहाँ तो हिन्दी थोड़ी-थोड़ी समझकर गुजराती सीखे तो समझ में आये ऐसा है। समझ में आया?

स्व चैतन्य के आश्रय से जितना मोक्षमार्ग हुआ उसमें ऐसे व्यवहार के, व्रत के, शुभ आदि के परिणाम आये, उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहा। ऐसे व्यवहार को असत्यार्थ और हेय इस प्रकार समझना। कि वह व्यवहारमोक्षमार्ग असत्यार्थ है, हेय है, वह आदरणीय नहीं है, आदरणीय निश्चमोक्षमार्ग है। समझ में आया इसमें? तकरार... तकरार... तकरार... यह कोई तकरार का विषय है? शान्त होने का विषय-मार्ग है जहाँ। विकल्प को भी छोड़कर निर्विकल्प होकर स्थिर होने का मार्ग है यह तो। यह कोई झघडे, वादविवाद, ये... ये... ये... प्रभु! यह तेरा मार्ग निराला है प्रभु! आहाहा..! समझ में आया?

कितनी उसने महेनत करी है, देखो न! गृहस्थाश्रम में रहकर टोडरमलजी ने हज़ारो शास्त्रोंमें से निचोडड की सन्धि कर के कहा। इतना आसान गुजराती, हिन्दी भी आसान ही है न? यहाँ तो उसका गुजराती हो गया। उसको पढ़ना विचार करके,... ऊलटा ऐसा कहते हैं कि आप पढ़ो, ऐसा यहाँ कहते हैं बारंबार। अरे..! भगवान! आहाहा..!

इसमें निश्चय के मार्ग को निश्चयाभासी कहा है। व्यवहार से होता है, ऐसा कहा है। ऐसा मानते हैं। अजीतकुमार है न? सिफारिश करते हैं कि मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़िये। कानजीस्वामी! आप पढ़ो। ऐसा लिखा है। उसके मन में ऐसा कि अरर...! यह तो दूसरे मार्ग पर चल पड़े हैं। दया आती है दया। यह मोक्षमार्गप्रकाशक तो पढ़ते हैं। यह क्या है? कितनी बार वाँचन हो गया और उसमें बहुत आया है। क्या कहते हैं? प्रवचन प्रसाद। आ गया है कि नहीं? प्रवचन प्रसाद में सब कुछ आ गया है। सब उतर गया है। आफ्रिका में पहुँच गया है। फूलचन्दभाई तो ऐसा ही कहते थे,

हम तो कहते हैं कि प्रवचन प्रसाद पढ़कर सब कुछ उसमें है। सब कुछ उसमें आ गया है। फूलचन्दभाई है न? आफ्रिका में मन्डल है न? यहाँ मन्डल है नाईरोबी में। फूलचन्दभाई उसके अग्रसेर है। गृहस्थ व्यक्ति है। पन्द्रह लाख रुपये दिये हैं। वहाँ के मन्डल के प्रमुख है। नाईरोबी। वह कहते थे कि हमको तो प्रवचन प्रसाद में सुब कुछ आ गया। जिसने ६३-६५ हज़ार नहीं दिये उसने, जामनगर। जामनगर के मन्दिर में भगवानजीभाईने ५०२५१ दिये और फूलचन्दजीने ६५००० दिये। गत वर्ष मन्दिर हुआ न जामनगर में। दोनों ने मिलकर एक लाख पन्द्रह हज़ार दिये थे। मन्दिर तो दो लाख का हुआ। क्या कहा? वह तो सुनते हैं। कहो, समझ में आया? ये रहा भांजा, है न देखो न, यह तुम्हारा आया है कान्तिभाई का। वह दोनों नहीं? भगवानजीभाई और वह फूलचन्दभाई। कहो, समझ में आया?

'**इसप्रकार...**' इसप्रकार अर्थात् कि स्वद्रव्य आश्रित सच्चा मोक्षमार्ग है और परद्रव्याश्रित जितने व्रत, नियम, शील के परिणाम हो, वह मोक्षमार्ग नहीं है, वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है। सहकारी देखकर व्यवहार से मोक्षमार्ग कहा है ऐसा मान। यह सच्चा मोक्षमार्ग है एसी श्रद्धा छोड़ दे। इस प्रकार व्यवहार और निश्चय को जान। तेरी दृष्टि कल्पना से मान कि व्यवहार यह और निश्चय यह, ऐसा है नहीं। ये तो लोगों को, साधु को सुनकर समझने जैसा है। नाम धराते हैं। लेकिन क्या हो? बड़ा नाम धराये उसको नीचे उतरना (कठिन पड़े)। डिग्री बड़ी प्राप्त कर ली हो, अब उसको नीचे ऊतारे। परीक्षा लेने आया हो, वह तो ठीक है, परन्तु यह चौथी कक्षा के पाठ भी आते नहीं है और सातवीं कक्षा में किसने बिठाया? तलकचन्दभाई कहते थे न? यह तकलचन्दभाई अपने लाठीवाले है न? सेठ के पुत्र, घुमे बहुत। बुद्धि साधारण। बाद में नारणसेठ जाये, उसके बाप के बाप। उसको पास करवा दे। सिफारीश करके पास कराये, चढा दे छठवीं से सातवीं कक्षा में। परीक्षा लेनेवाला आये और कहे, किसने बिठाया तुझे सातवी कक्षा में? चौथी कक्षा के पाठ के जवाब तो तुमको आता नहीं। सेठ का लड़का है। रखडु हो, खाय-पीए और मौज करे। नगरसेठ का लड़का, नारणसेठ का। समझ में आया?

ऐसे भटको, बहिरबुद्धि में धर्म मानकर भटको। उसको किसीने चढा दिया कि तुम समकिती हो और तुम साधु हो। बहिरबुद्धिकी वृत्ति सब दया, दान, व्रत आदि कदाचित् कोई शुभ परिणाम हो तो। और उस बहिरबुद्धि में चढा दिया हो कि वह तुजे धर्म है, वह तेरा साधुपना है और उसमें तेरा सम्यग्दर्शन है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानता

है न? ना, ना। सुन न।

आनन्दघनजी ने नहीं कहा?

देवगुरु धर्मनी श्रद्धा कहो केम रहे? केम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो।
शुद्ध श्रद्धान बिन सर्व क्रिया करी, छार पर लींपणुं तेह जाणो।।

आता है न? वह आनन्दघनजी में आता है। समझ में आया? 'छार पर लींपणुं।' 'देव-गुरु धर्मनी श्रद्धा कहो केम रहे? केम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो।' शुद्ध श्रद्धा बिना... देव, गुरु, शास्त्र को बताना तो वह है। उसकी तो तुझे श्रद्धा करनी आयी नही। तुझे देव-गुरु-शास्त्र की है कहाँ? और देव-गुरु-शास्त्र को आत्मा, वीतरागी भाव बताना है। राग से, निमित्त से हटाकर और स्वभाव पर आरूढ़ कराना है। वह समस्त देव-गुरु-शास्त्र का कथन है और उस शुद्ध श्रद्धा की तो तुझे खबर नहीं। तो तुझे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा नहीं है। कहाँ से तु लाया यह?

'शुद्ध श्रद्धान बिन सर्व किरिया करी...' व्रत, नियम, दमन, एक-एक महिने के उपवास, दो-दो महिने के उपवास, संथारा दो-दो महिने के करके मर जाय। 'शुद्ध श्रद्धान बिन सर्व किरिया करी छार पर लींपणुं...' वह राखोडी राख। राख कहते हैं? क्या कहते हैं तुम्हारे में? औरत लेप करती है कि नहीं? अब तो लेप कहाँ रहा? अब तो सब जगह पत्थर डालते हैं न? बंगले में पत्थर है कि नहीं? क्या है? सेठ! सेठ को लादी। लादी, लादी कहो। अब तो लादी हो गई। पहले तो स्त्रीयाँ लेप करती थी, थाप मारकर ठीक करके लेप करते थे। परन्तु नीचे राख भरी हो, उस पर लेप करने जाये तो ऊपर से पपड़ी उखड़ने लगती है। ऐसे 'छार पर लींपणुं...' सम्यक् सच्ची श्रद्धा भान बिना तेरे व्रत, नियम, तप सब राख पर लेप है।

यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार और निश्चय को हमने इस तरह कहा है और ऐसा है ऐसा तु जान। जब निश्चय स्वद्रव्याश्रित श्रद्धा, ज्ञान प्रगट हो, तब व्यवहार से परद्रव्याश्रित जो रागादि थे वह सच्चा मार्ग नहीं है। निमित्त देखकर उपचार से कहा है। ऐसा व्यवहार का स्वरूप है और यह निश्चय का स्वरूप है। समझ में आया कि नहीं? समझ में आता है कि नहीं? रतिभाई! ये कागज में समझ में आता है कि नहीं? कागज का है न? तुम्हारा किसका है? कागज का है। तालीम विभाग में। जूठे तालीम विभाग में। बहुत घर देखे हो, कितने घर, थक जाय उतने घर आते थे। एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक दिन में ३०-४०-५०, ४०-५०। उसमें सीढी तुम्हारी। ऊपर चढना और नीचे उतरना।

कहते हैं... देखो! कितनी शर्त! '**इसप्रकार...**' देखो! पूरा सिद्धांत यहाँ है। '**इसप्रकार व्यवहार को असत्यार्थ-हेय...**' इसप्रकार अर्थात् क्या कहा समझ में आया? स्वद्रव्य के आश्रय से--चैतन्य के आश्रय से सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान हुआ, आंशिक स्थिरता हुई। अब उस भूमिका में जितना व्रत, नियम, शील, ब्रह्मचर्य या दया-दान का भाव, पूजा का भाव आये ऐसे शुभभाव को व्यवहार से, उपचार से मोक्षमार्ग नहीं है परन्तु निमित्त देखकर कहा। उसको व्यवहार जान, इसप्रकार व्यवहार जान, इसप्रकार निश्चय जान। इसके अलावा अन्य कुछ भी माने उसमें तेरी श्रद्धा का ठिकाना नहीं है। समझ में आया? इसप्रकार व्यवहार को जूठा और हेय समझना। एक तो वह मोक्षमार्ग नहीं है। व्रतादि के परिणाम सब परद्रव्याश्रित विकल्प है और उसको इसप्रकार हेय समझना। क्योंकि वह बन्धमार्ग है। इसलिये वह जूठा है ऐसा मानकर उसको हेय समझना।

परन्तु '**व्रतादिक को छोडने से तो व्यवहार का हेयपना होता नहीं है।**' क्या कहते हैं देखो! तुझे शुभ भाव आये व्रत, नियम, पूजा, भक्ति आदि के, वह शुभभाव छोड़ने से कहीं हेयपना होता नहीं। छोड़ने से कहीं हेयपना होता नहीं। उसने कहा न कि, हम छोड़ देंगे, छोड़ देंगे। हम क्यों करे? हम छोड़ देंगे। उसका उत्तर है।

'**फिर हम पूछते हैं कि व्रतादिक को छोड़कर क्या करेगा?**' शुभभाव व्रत, नियम आदि को छोड़कर क्या करेगा? '**यदि हिंसादिरूप प्रवर्तेगा...**' हिंसा, जूठ, चोरी, विषयवासना (रूप प्रवर्तेगा) तो वहाँ तो मोक्षमार्ग का उपचार भी संभवित नहीं है। वहाँ तो मोक्षमार्ग का उपचार आरोप से भी संभवित नहीं है। हिंसा में तो उपचार भी नहीं है। उसमें तो निश्चय हो तो इसमें उपचार भी आये। बहुत सूक्ष्म बात इसमें। पकड़ में आये नहीं। पकड़ में आती है कि नहीं? ए.. पन्नालालजी! समझ में आता है कि नहीं? खीमचन्दभाई! कहाँ गये मगनलालजी? समझ में आता है कि नहीं? एकदम हो जाओ, मुंडन कर लो। साधु हो जाओ। आओ हमारे पास पाट पर बैठ जाओ। क्या है पाट पर? पाट पर तो कुत्ते भी बैठते हैं। नहीं बैठते हैं? खाली पाट हो तो कुत्ता आकर बैठ जाता है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- परमेश्वर कहाँ था? अभी परमेष्ठी का भान भी नहीं है कि परमेष्ठी को क्या कहना है। नये खटिये पर भी कुत्ते को बिठाते हैं, मालूम है? अब तो कहाँ रहा है शहर में, कुत्ते भी शहर में मिलते नहीं। नई खटिया बनाते हैं न खटिया? रस्सी से। तो पहले आदमी नहीं सोता। वरना अरथी जैसा हो जाये तो?

इसलिये पहले थोड़ी रोटी डाले और कुत्ता उपर चढ़कर सोये, तब उस खटिये का उपयोग हो गया ऐसा कहने में आता है। फिर दूसरे लोग सोने जाये तो कोई तकलीफ नहीं। ऐसा सब छोटी उम्र में प्रत्यक्ष देखा है, हाँ! हमारे घर में, चोगान में। यह क्या है? नयी रस्सी से बनाया है न? कुत्ते को क्यों बिठाया? तो कहते, ऐसा वहेम है लोगों को। नई रस्सी से बने हुए खटिये पर सोये और मर जाय तो? तो अरथी पर सुलाया हो ऐसा कहे तो? इसलिये थोड़ी रोटी ऊपर डालते हैं ताकी कुत्ता उपर आये। और बीचमें डाले। एक बाजु डाले ऐसा भी नहीं। खटिये के बीच में रोटी डाले तो कुत्ता उपर चढ़कर खाये। लो खटिया भुन गया अब। जगत को भ्रम भी कितना है? समझ में आया?

'**फिर हम पूछते हैं कि व्रतादिकको छोड़कर क्या करेगा? यदि हिंसादिरूप प्रवर्तेगा तो वहाँ तो मोक्षमार्ग का उपचार भी सम्भव नहीं है; वहाँ प्रवर्तने से क्या भला होगा? नरकादि को प्राप्त करेगा।**' हिंसा, जूठ, चोरी, भोग आदि वासना की तीव्रता होगी तो नर्क में जायेगा। '**इसलिये ऐसा करना तो निर्विचारीपना है।**' ऊपर कहा था न उन्होंने? निर्विचार पुरुष ऐसा प्रश्न करता है। ऐसा कहा था न? स्वयं ही यहाँ उसका टोटल करतें हैं। '**यहाँ कोई निर्विचारी पुरुष ऐसा कहे...**' ऐसा ऊपर शीर्षक में कहा था। उसको यहाँ ले आये कि ऐसा करना वह तो निर्विचारीपना है। विचार रहित तेरे कार्य, नासमझ के हैं, तुझे सत्य-असत्य का पता नहीं। निश्चय-व्यवहार क्या है यह मालूम नहीं है।

देखो आया। '**तथा व्रतादिरूप परिणति...**' परिणति ऐसी है। व्रतादि की परिणति, पर्याय, शुभभाव की '**परिणति मिटाकर केवल वीतराग उदासीनभावरूप होना बने तो...**' भले ही ऐसा कर। व्रत, नियम आदि के परिणाम शुभ छूटकर और शुद्धोपयोग हो जाय और वीतरागभाव हा जाये तो बहुत अच्छी बात है। उसके लिये कौन मना करता है तुझे? शुभ परिणति छूटकर केवल वीतराग। देखो मिटकर। मिटना-मिटना। उसे मिटाकर अर्थात् मोक्षमार्ग। वह निमित्त मिटने की बात आई थी न भाई! निमित्त मिटना। मिटना अर्थात् छूटना। छूटना अर्थात् व्यवहार से छूटना ऐसा यहाँ कहा।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह मिटा, वह तो यहाँ मिटा तब उसका आरोप देते हैं। वहाँ परद्रव्य का ग्रहण-त्याग था कब? मिटना अर्थात् छूटना। परद्रव्य से कब छूटना है? समझ में आया? परद्रव्य से तो भिन्न ही पड़ा है। परन्तु उसके भाव में निमित्त का

छूटना ऐसा बोलते हैं न? इसने स्त्री को छोड़ा, उसने यह छोड़ा, यह छोड़ा, छोड़ा अर्थात् उतना मोक्षमार्ग हुआ, ऐसा। मोक्षमार्ग तो निमित्त के कथन से कहा है। ग्रहण-त्याग आत्मा में त्याग-ग्रहण था कब? समझ में आया? ऐसी बात कही है न। तोल तोलकर शास्त्र का बराबर उसका जो हृदय है ऐसा वहाँ कहा है।

'**व्रतादिरूप परिणति को मिटाकर...**' व्रत, नियम, इन्द्रियदमन, संयम ऐसे शुभभाव है उसकी परिणति की अवस्था मिटी '**केवल वीतराग उदासीनभावरूप होना बने...**' आहाहा...! केवल वीतराग उदासीन ज्ञाता-दृष्टा में रम जाये। अलौकिक बात है बापु! उसका तो क्या कहना? समझ में आया? ऐसा '**बने तो अच्छा ही है;...**' परन्तु '**वह नीचली दशा में हो नहीं सकता;...**' चौथवे, पाँचवे, छठवें गुणस्थान में ऐसा नहीं हो सकता। उसे शुभभाव आये बिना रहे नहीं। स्वरूप में निर्विकल्प उपयोग से स्थिर न हो, तब चौथे, पाँचवे और छठवें में भक्ति, व्रत के परिणाम पाँचवे, छठवे में, चौथे गुणस्थान में भक्ति आदि का शुभराग, पूजा, दान ऐसे शुभभाव आये बिना रहे नहि। उसको तू कहे कि मैं छोड़ दूँ। कहाँ से छोड़ेगा? वह परिणति छूटकर शुद्धोपयोग हो जाये तो छूट जाये। लेकिन उस परिणति को मोक्षमार्ग मानता है वह मान्यता छोड़ दे। परिणति छोड़ी नहीं जायेगी, वह तो शुद्धोपयोग होगा तब छूटेगी। समझ में आया? आज तुम्हारे कोई मित्र मिले थे। कीरचन्द। कीरचन्द वाघजी? बड़ा हो गया। मोटर चलती थी। दूर से देखा तो नीचे उतरे। कौन? राजकोट। लालचन्दभाई के मित्र। ऐसा कहा था। ... गाड़ी देखी।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, हाँ, मिले थे। लालचन्दभाई मेरे मित्र हैं, ऐसा बोले थे। लालचन्दभाई के नाम पर सबकुछ जाना जाता है न यहाँ? राजकोट में। लालचन्दभाई प्रसिद्ध है महाराज के साथ में, ऐसा उसको मालूम है। मैं लालचन्दभाई का मित्र हूँ। कहो, समझ में आया?

'**व्रतादिरूप परिणति को मिटाकर केवल वीतराग...**' सम्यग्दृष्टि सहित शुभपरिणति जो है वह छूट जाये और स्वरूप में स्थिर हो जा तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन नीचे की दशा में नहीं हो सकता। निश्चय शुद्ध परिणति के साथ ऐसे शुभ परिणति के भाव आये बिना रहते नहीं। '**इसलिये व्रतादि साधन छोड़कर स्वच्छन्द होना योग्य नहीं है।**' शुभ परिणाम को छोड़कर अशुभ परिणाम करना ऐसा कहने में नहीं आया है। स्वच्छन्दी होना योग्य नहीं है।

'**इसप्रकार श्रद्धान में...**' अब टोटल आया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- व्यवहारसाधन। जिसको हो उसको। पाँचवे और छठवे में व्रतादि और जो नीचे हो उसको, चौथे में। पहले लिया था। समझाते हैं उसको लेकिन सम्यग्दृष्टि सहित। कहो, समझ में आया? सम्यग्दृष्टि होकर भी व्रतादि साधन छोड़कर स्वच्छन्दी होना योग्य नहीं है।

'**इसप्रकार श्रद्धान में निश्चयको,...**' यह दो पन्ने पहले का टोटल आया। २५५ में था। श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहारूप रखते हैं। पहली पंक्ति थी २५५ में। '**श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं। इसप्रकार दोनों नयों को अंगीकार करते हैं।**' पहली पंक्ति २५५ में पहली पंक्ति। वह चलते-चलते यहाँ सब पूरा कर दिया। प्रवृत्ति में कहता था न वह? प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं। प्रवृत्ति में व्यवहार कहाँ आया? प्रवृत्ति का परिणाम आये उसको मोक्षमार्ग मानना छोड़ दे। '**इसप्रकार श्रद्धान में निश्चय को, प्रवृत्ति में व्यवहार को उपादेय मानना वह भी मिथ्या भाव ही है।**' मिथ्यादृष्टिपना है। कहो, समझ में आया इसमें? शक्कर में दूध डालकर बुरा नहीं करते? बुरा अर्थात् शुद्ध। मूल तो बुरा नाम बोलते हैं। दूध धोकर शुद्ध शक्कर नहीं बनाते? ऐसे यहाँ निश्चय-व्यवहार में कहाँ मैल--विपरीतता है उसको यहाँ धोकर शुद्ध बताते हैं। शुद्ध कर.. शुद्ध कर... ऊलटा रहने दे तेरी श्रद्धा निश्चय-व्यवहार की। लो, वह हुआ।

'**तथा यह जीव दोनों नयोंका अंगीकार करने...**' वही लिया। व्यवहारालंबी और निश्चयालंबी दोनों। वहाँ से शुरू किया है न व्यवहारालंबी और निश्चयालंबी। '**यह जीव दोनों नयोंका अंगीकार करनेके अर्थ कदाचित् अपनेको शुद्ध सिद्ध समान...**' शुद्ध सिद्ध समान। पर्याय समझे न? शुद्ध सिद्ध समान हूँ ऐसा सोचता है। कहाँ सिद्ध हो वर्तमान में? सिद्ध हो तो फिर साधन कहाँ करना रहता है? '**रागादि रहित...**' सिद्ध समान लिया। पर्याय। वहाँ से शुरू किया है, सातवें भी वहीं से शुरु किया है। केवलज्ञान की शक्ति सब केवलज्ञान वाले लिये। निश्चय से अपने को रागादि रहित मानता है। और '**केवलज्ञानादि सहित...**' केवलज्ञानादि सहित। लो ठीक! '**आत्मा अनुभवता है,...**' हम तो शुद्ध सिद्ध समान हैं। रागादि रहित हैं, केवलज्ञाना सहित हैं। केवलज्ञान। आदि अर्थात् अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। आदि सहित हैं।

'**ध्यानमुद्रा धारण करके...**' ध्यान धारण करके ऐसा नहीं। परन्तु वस्तु के भान बिना ध्यान किसका? किसका ध्यान करे? ऐसे बैठ जाये। ऊलटी विपरीतता होगी। अभी बहुत लोग ऐसा सीखे हैं कि महाराज ऐसा कहते हैं तो अपने सिर्फ आत्मा... क्या आत्मा समझे बिना? मुँह बन्द करके, आँख बन्द करके। भ्रमणा हो और जीवन व्यतीत हो जाये। वस्तु का ज्ञान क्या? चैतन्य क्या? पर्याय क्या? शक्ति क्या? गुण क्या? उसके ज्ञान में भास हुए बिना वह ज्ञान किसका ध्यान करे? किसमें एकाग्र किस तरह हो? इसलिये यहाँ कहा कि ध्यानमुद्रा, ध्यानकी मुद्रा। ध्यान नहीं।

'**ध्यानमुद्रा धारण करके ऐसे विचारो में लगता है;...**' कैसे विचार? कि मैं तो शुद्ध सिद्ध समान हूँ। विकार रहित हूँ, रागादि रहित हूँ। केवलज्ञान सहित हूँ। '**सो ऐसा आप नहीं है, परन्तु भ्रम से निश्चय से मैं ऐसा ही हूँ ऐसा मानकर सन्तुष्ट होता है।**' कहो, समझ में आया? ऐसा स्वयं नहीं है, वर्तमान में सिद्ध समान कहाँ है? पर्याय सिद्ध समान है? रागादि रहित है? तो वीतराग होना चाहिये। केवलज्ञान सहित है? तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान किसके हैं यह? स्वयं ऐसा पर्याय में नहीं है। '**परन्तु भ्रम से निश्चय से मैं ऐसा ही हूँ ऐसा मानकर सन्तुष्ट होता है।**' स्वयं ऐसा नहीं है परन्तु भ्रम से, निश्चय से, भ्रम से निश्चय से मैं ऐसा हूँ। ऐसा। भ्रम से निश्चय से मैं ऐसा हूँ। पर्याय मेरी सिद्ध समान है। परन्तु कहाँ से आयी सिद्ध समान? मति श्रुत का प्रकार दिखता है न? मति श्रुत था, और केवलज्ञान के काल में मति-श्रुत भी हो, ऐसे दो सकते हैं? एक समय में दो प्रकार--पूर्ण पर्याय और अधूरी पर्याय ऐसा नहीं होता। अधूरी पर्याय के काल में पूर्ण पर्यायवाला हूँ ऐसा कहाँ से लाया? भ्रम से।

'**निश्चय से मैं ऐसा ही हूँ ऐसा मानकर सन्तुष्ट होता है। तथा कदाचित् वचन द्वारा निरूपण ऐसा ही करता है।**' ऐसा अर्थात्? सिद्ध समान मैं हूँ। विकाररहित आत्मा है, केवलज्ञानसहित है ऐसा कथन में प्ररूपण करता है। परन्तु समझता नहीं है कि किस अपेक्षा से कथन है वह। परन्तु प्रत्यक्ष स्वयं जैसा नहीं है वैसा उसको मानना वहाँ निश्चय नाम कैसे प्राप्त करें? सिद्ध की पर्याय नहीं है और पर्याय मानना वह निश्चय नाम कैसे प्राप्त करे? विकाररहित दशा नहीं है और विकार रहित पर्याय माने तो निश्चय नाम कैसे पाये? मतिज्ञान में अधूरी पर्याय में पूर्ण पर्याय मानना वह निश्चय नाम कैसे पाये? समझ में आया? स्वयं जैसा नहीं है वैसा स्वयं को मानना वहाँ निश्चय नाम कैसे प्राप्त करें? नहीं है उसका नाम निश्चय कैसे पाये? क्योंकि वस्तु

को यथावत् प्ररूपित करे उसका नाम निश्चय है। लाकर रख दिया। पहले से कहा था वह। वस्तु को जैसी है द्रव्य से, शक्ति से, पर्याय से ऐसी है ऐसा जाने अथवा कहे उसको निश्चयनय कहने में आता है। क्योंकि वस्तु का यथावत् प्ररूपित करे उसका नाम निश्चय है।

इसलिये **'जैसा केवल निश्चयाभास वाले जीवके अयथार्थपना पहले कहा था उसी प्रकार इसके जानना।'** निश्चयाभास। वस्तु समझे नहीं, पर्याय की योग्यता कीतनी है? द्रव्य-गुण पूर्ण है परन्तु पर्याय की योग्यता कितनी उसको तो जाने नहीं और मान ले के हम भगवान हो गये, सिद्ध हो गये, परमात्मा पर्याय में हो गये। वस्तु से परमात्मा है। द्रव्य-गुण की शक्ति परमात्मस्वरूप है। परन्तु पर्याय में परमात्मा हो तो फिर बाकी क्या रहा? समझ में आया? **'केवल निश्चयाभास वाले जीवके अयथार्थपना पहले कहा था उसी प्रकार इसके जानना।'** निश्चय का कहा था न? केवलज्ञानसहित मानता है, ऐसा मानता है, बहुत लिया था पहले। निश्चयाभासवाले को पहले याद किया है, व्यवहारभासवाले की बात बाद में कही है, कथन की शैली में। **'अथवा यह ऐसा मानता है कि इस नय से आत्मा ऐसा है, इस नय से ऐसा है।'** आत्मा तो जैसा है वैसा है। इसमें नय का कथन क्या कहना है उसको तुम समझते नहीं। इस नय से आत्मा ऐसा है। निश्चयनय से सिद्ध समान पर्याय है और व्यवहारनय से मतिपर्यायस्वरूप है। निश्चयनय से आत्मा रागरहित है और व्यवहार से रागसहित है। ऐसे दो रूप कहाँ उसके थे? समझ में आया?

निश्चयनय से तो आत्मा सिद्ध समान, राग रहित केवलज्ञान सहित है, व्यवहार से संसारी, व्यवहार से संसारी है, राग सहित है और मतिज्ञानपर्याय सहित है। मतिज्ञान आदि अपूर्ण पर्याय सहित है। इस प्रकार एक ही आत्मा को दो नय से ऐसा मानना वह भ्रम है, तुझे मालूम नहीं है। **'सो आत्मा तो जैसा है वैसा ही है;...'** पर्याय में एक साथ दो मानता है उसकी बात चलती है। **'परन्तु उसमें नय द्वारा निरुपण करनेका जो अभिप्राय है उसे नहीं पहचानता।'** निश्चय से क्या कहा? वस्तु स्वयं सिद्ध समान है। शक्ति उसकी आत्मा की परमात्मा समान है निश्चय से। परन्तु कोई पर्याय निश्चय से केवलज्ञान समान है या सिद्ध समान है ऐसा कुछ कहा नहीं। समझ में आया? वहाँ नय द्वारा निरुपण करने का जो अभिप्राय है उसे तो पहचानता नहीं।

'जैसे--आत्मा निश्चय से तो सिद्धसमान...' देखो वह स्वयं मानता है। कहा

था न, इस नय से आत्मा ऐसा है। '**निश्चय से तो सिद्ध समान...**' ऐसा मानता है। '**केवलज्ञानातिसहित, द्रव्यकर्म–नोकर्म–भावकर्म रहित है,...**' ऐसा मानता है। लेकिन ऐसा है नहीं। '**व्यवहारनय से संसारी...**' देखो! '**मतिज्ञानादि सहित तथा द्रव्यकर्म–नोकर्म–भावकर्म सहित है – ऐसा मानता है; सो एक आत्मा के ऐसे दो स्वरूप तो होते नहीं;...**' पर्याय में एक आत्मा के दो स्वरूप होते नहीं। पर्याय की बात चलती है हाँ यहाँ पर। पर्याय में––अवस्था में कोई आत्मा के दो रुप होते हैं? सिद्धरूप भी हो और संसारी भी हो। रागरहित हो और रागसहित भी हो? केवलज्ञानसहित भी हो और मतिज्ञानसहित भी हो? ऐसे दो रुप पर्याय में है? समझ में आया?

'**सो एक आत्मा के ऐसे दो स्वरूप तो होते नहीं है; जिस भावहीका सहितपना...**' यहाँ तो भाव लेना है न? पर्याय। '**जिस भावहीका सहितपना उस भावहीका रहितपना एक वस्तु में कैसे सम्भव हो?**' समझ में आया? समझ में आया? भाव अर्थात् पर्याय लेनी है यहाँ। जिस पर्याय का सहितपना उसी पर्याय का रहितपना। संसारपर्याय का सहितपना, उसी पर्याय का रहितपना संसार पर्याय में? ऐसा हो सकता नहीं। समझ में आया?

'**जिस भावहीका सहितपना उस भावहीका रहितपना एक वस्तु में कैसे सम्भव हो? इसलिये ऐसा मानना भ्रम है।**' यहाँ पर्याय की बात चलती है न? शास्त्र में चली है वह द्रव्य की बात चली है। सिद्ध समान परमात्मा शुद्ध। और वहाँ एक नय से ऐसा भी कहा है कि जैसे सिद्ध के गुण हैं, ऐसे संसारी के है। परन्तु वह सब तो शक्ति की अपेक्षा से कहा है। समझ में आया? नियमसार में आता है न? संसारी जीव भी सिद्ध समान ही है, आठ गुणवाला है। वह तो शक्ति के स्वभाव की अपेक्षा से बात है। पर्याय में आठ गुण सिद्ध के हो तो फिर बाकी क्या रहा अब? समझना क्या? सोचना क्या? ध्यान क्या? बाकी तो कुछ रहा नहीं। ऐसा नहीं है। एक समय में आत्मा को दो दशा हो, दो दशा, ऐसा हो सकता नहीं। दो दशा अर्थात् संसार दशा भी हो, सिद्ध दशा भी हो, विकार दशा भी हो, अविकार दशा भी हो ऐसा सम्भव नहीं। समझ में आया? '**इसलिये ऐसा मानना भ्रम है। तो किस प्रकार है?**' तो वह किस प्रकार है? हम ऐसा कुछ समझे हैं शास्त्रमें से सुनकर। कोई जगह कहा तो है आप हमको कहते हैं ऐसा, कि सिद्ध समान, रागरहित कहीं पर कहा तो है। जो कहा है वह हम मानते हैं।

'**तो किस प्रकार है? जैसे – राजा और रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं;...**' राजा और रंक मनुष्यपने की अपेक्षा समान है। '**उसी प्रकार सिद्ध और संसारी को जीवतत्त्वपने अपेक्षा**

समान कहा है।' देखो! कहीं पर्याय की अपेक्षा से समान नहीं है। पर्याय की अपेक्षा से समान हो तो कहाँ संसारपर्याय और कहाँ मोक्षपर्याय! आहाहा..! कहाँ अशुद्ध और कहाँ पूर्ण शुद्ध! '**सिद्ध और संसारी को जीवतत्वपने अपेक्षा समान कहा है।**' दो एक समान है। दो जीव समान। सिद्ध का जीव और संसारी का जीव दोनों एक समान है। जीव में कुछ असमानता है शक्ति स्वभावभाव में? '**केवलज्ञानादिकी अपेक्षा समानता मानी जाय, सो तो है नहीं;...**' केवलज्ञान है, सिद्धपर्याय है, रागरहित है ऐसा पर्याय में मान ले, सो तो है नहीं। कहो, बराबर है यह बात?

'**क्योंकि संसारी के निश्चय से मतिज्ञानादिक ही हैं,...**' लो! मतिज्ञान की पर्याय निश्चय से स्वपर्याय में निश्चय-वास्तव में है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि, मनःपर्यय आदि। समझ में आया? '**कर्म के निमित्त से है,...**' उतना निमित्तत्व है न थोड़ा? इसलिये अपूर्णता स्वयं में है। '**कर्म के निमित्त से है,...**' लो! इसमें ऐसा आया। मतिज्ञान कर्म के निमित्त से है। निमित्त-निमित्त ना कहते है कि नहीं? यहाँ तो कहते है कि पूर्ण क्षायिकपर्याय नहीं है, इसलिये उसमें थोड़ा कर्म का निमित्त है और नैमित्तिक अपनी उस प्रकार की योग्यता की पर्याय है। मतिज्ञान की अपूर्ण पर्याय क्यों? वहाँ कर्म का अभी निमित्त है और नैमित्तिकता इतनी अपूर्णता है। पूर्णता हो वहाँ निमित्त होता नहीं। उससे होता है, नहीं होता है, उसका प्रश्न नहीं है।

'**कर्म के निमित्त से है, इसलिये स्वभाव अपेक्षा...**' स्वभाव अपेक्षा से, क्योंकि वह स्वभाव नहीं है। अपूर्ण एक मतिज्ञानादि उसका स्वभाव नित्य स्वभाव नहीं है। '**स्वभाव अपेक्षा संसारी में केवलज्ञान की शक्ति कही जाये तो दोष नहीं है।**' केवलज्ञान शक्ति आत्मा में है। शक्ति है केवलज्ञान की। पर्याय में केवलज्ञान माने तो बाकी क्या रहा अब? मति की जगह पर केवलज्ञान मान, तुझे नय की कथन की पद्धति का स्वरूप मालूम नहीं।

'**जैसे - रंग मनुष्य में राजा होनेकी शक्ति पाई जाती है, उसी प्रकार यह शक्ति जानना।**' रंक हो और वह राजा बने। कथा नहीं आती? ये सयाजीराव हुए। बकरी चराने को जाते थे या भैंस चराने जाते थे। यह सयाजीराव गायकवाड सरकार। चल बसे। वह भेंस चराते थे। उसमें .. को ले गये न सरकार? रानी थी, उसकी रानी। बुलाईए अपने कुटुम्ब के सदस्यों को। वह तीन भाई थे सयाजीराव को। वहाँ भेंस चराने को गये थे। चलो रानी साहेबा बुलाती है। चलो। शक्ति थी कि नहीं उसमें? एकने पूछा क्यों आये? साहब! आपने बुलाया इसलिये आये। सयाजीराज

ने पूछा, क्यों आये? राज लेने आये। परन्तु भेंस चराते थे न? तब रानी ने कहा कि यह पुण्यवंत लगता है। यह पुण्यवन्त है। पुण्य, पुण्य की बात है हं! धर्म–बर्मकी कहाँ? हम राज लेने आये है। ओहो..! मलावडा की सरकार ले गया। इनको राज सोंप दो। ... क्यों आये हो? आपने बुलाया इसलिये आये हैं। आप क्यों आये हो? कि राज लेने आये है। शक्ति है कि नहीं? उस अपेक्षा से कहा जाता है कि रंक में राजा की शक्ति। ऐसे संसारी में केवलज्ञान की शक्ति कहने में आती है। परन्तु प्रगट माने तो भ्रमणा है।

(श्रोता :– प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.–२४८८, चैत्र वद १, शुक्रवार, दि.२०–४–१९६२
अधिकार – ७, प्रवचन नं.–२२

... निश्चय को मानते हैं और व्यवहार को भी मानते हैं। ऐसा मानता है, लेकिन उसकी उसको खबर नहीं है। व्यवहार किसे कहते हैं? निश्चय किसे कहते हैं? उसके ज्ञान बिना मिथ्यादृष्टिपना धारता है। समझ में आया?

यहाँ तो अधिकार यह आया है कि कुछ लोग अपने आत्मा को सिद्ध समान वर्तमान में मानते हैं। शास्त्र में सिद्ध समान तो शक्ति अपेक्षा से कहा है। आत्मा की शक्ति सिद्ध होने की है। उसका स्वभाव––सामर्थ्य सिद्ध होने का है। उसकी जगह वर्तमान पर्याय में––अवस्था में सिद्ध समान माने यह बड़ा भ्रम है। हाँ, ऐसा कहा। केवलज्ञान की मेरे में शक्ति है, सिद्ध होने की मेरे में लायकात है ऐसा माने तो

वह यथार्थ है। समझ में आया? आत्मा सिद्ध होने के लायक है--स्वभाव और केवलज्ञान की शक्ति भी अन्दर पड़ी है। बाहर में तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान आदि अल्प ज्ञान की दशा है। ऐसी दशा में केवलज्ञान मान ले तो भ्रमणा में पड़ा है। यह मतिज्ञान आदि अल्प है, वहाँ कर्म का थोड़ा सम्बन्ध निमित्त का है। इसलिये केवलज्ञान उसमें-पर्याय में नहीं है।

'**स्वभाव अपेक्षा संसारी में केवलज्ञानकी शक्ति कही जाये तो दोष नहीं है।**' स्वभाव की अपेक्षा से केवलज्ञान आत्मद्रव्य में स्वभाव में शक्ति केवलज्ञान की पूर्ण द्रव्य में पड़ी है ऐसा माने तो उसका विरोध नहीं है। दूसरी रीति से कहते हैं कि जैसे रंक और राजा में अंतर कैसा है? कि रंक में राजा होने की शक्ति है। '**रंक मनुष्य में राजा होने की शक्ति पाई जाती है, उसी प्रकार यह शक्ति जानना।**' समझ में आया? परन्तु रंक और राजा की पर्याय को समान मान ले वर्तमान में (तो) कहाँ रंक और कहाँ राजा। कहाँ मतिज्ञान की पर्याय और कहाँ केवलज्ञान! भ्रम में पड़ा है, कहते हैं।

दूसरी बात---'**तथा द्रव्यकर्म...**' जड़ कर्म मिट्टी, आठ कर्म ज्ञानावरणीय आदि। '**नोकर्म...**' यह शरीर, वाणी आदि, वह '**पुद्गल से उत्पन्न हुए हैं,...**' आठ कर्म और शरीर, वाणी तो पुद्गल से उत्पन्न हुए हैं। आत्मा ने उत्पन्न किये नहीं है और आत्मा उसको उत्पन्न कर सकता नहीं। कहो, समझ में आया? '**इसलिये निश्चय से संसारीके भी इनका भिन्नपना है,...**' संसारी को भी कर्म पुद्गल है, जड़ की अवस्था है, शरीर की भी जड़ अवस्था है, इसलिये जीव को और इनको दोनों को भिन्नत्व है, भिन्नपना है।

'**परन्तु सिद्धकी भाँति इनका कार्यकारण अपेक्षा सम्बन्ध भी न माने तो भ्रम ही है।**' माने क्या? शरीर और आठ कर्म का निमित्तपना व्यवहारकारण और आत्मा में उस जात की शरीर काल में अपनी योग्यता हलन-चलन गति आदि में और कर्म का निमित्त और राग-द्वेष की नैमित्तिकता, अपने योग्यता ऐसा कारण-कार्य, व्यवहारकारण, निश्चयकार्य ऐसा न माने तब भी भ्रमणा है। सेठ! क्या कहा देखो! द्रव्यकर्म और नोकर्म तो पुद्गल से उत्पन्न हुए हैं, जड़ से। आत्मा उसको उत्पन्न कर सकता नहीं। इसलिये निश्चय से संसारी को भी आत्मा से शरीर और वाणी बिलकुल भिन्न है। इसलिये उसका तो कर्ता-हर्ता आत्मा है ही नहीं।

'**परन्तु सिद्धकी भाँति इनका कारणकार्य अपेक्षा सम्बन्ध भी न माने...**'

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। कारण अर्थात् निमित्त। समझ में आया? निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, व्यवहार सम्बन्ध है। इतना व्यवहारसन्बन्ध भी जीव को और शरीर को, जीव को और कर्म को व्यवहार निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पर्याय में है उतना न माने तो वह भी भ्रमणा है। देखो! यह सम्बन्ध सिद्ध किया।

अबद्धस्पष्ट आत्मा, चैतन्य पर से निराला, वह वस्तु की दृष्टि। परन्तु पर्याय में रागादि है और कर्म का निमित्त है, पर्याय में जैसी शरीर की अवस्था होती है ऐसी स्वयं में भी उस प्रकार की अवस्था अपने कारण से होती है। इतना वहाँ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, इतना भी न स्वीकारे तो वह भी भ्रमणा है। कहो, समझ में आया? ये कारण-कार्य को स्थापित किया। हिंमतभाई!

वस्तु नहीं है? आत्मा वर्तमान पर्याय में अल्पज्ञ है, उसमें ज्ञानावरणीय का निमित्त है। अल्पज्ञ नैमित्तिक अपनी अपने कारण से पर्याय है। परन्तु उसमें ज्ञानावरणीय कर्म निमित्त है। ऐसे दर्शन उपयोग की हीनतारूपी पर्याय, चक्षु-अचक्षुदर्शन की पर्याय अपनी अपने में है। परन्तु उसमें निमित्त, दर्शनावरणीय का निमित्त है। निमित्त है इसलिये यह है ऐसा नहीं। तब तो निमित्त नहीं रहा। समझ में आया? और यहाँ हीन दशा होती है इसलिये उसको निमित्तपने आना पड़ता है ऐसा भी नहीं है। तब तो कर्ताकर्म हो गया। अल्प अवस्था कर्ता और निमित्त का आना वह उसका कार्य हो गया। परन्तु वह एक चीज़ है। ज्ञान की पर्याय में हीनता वह नैमित्तिक, कर्म ज्ञानवरणीय का निमित्त। बस! वह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। न हो तो यहाँ केवलज्ञान होना चाहिये। पूर्ण सिद्धदशा होनी चाहिये, ऐसा तो वर्तमान में है नहीं। इसप्रकार आठों कर्म का निमित्तपना तो है। निमित्त की ना नहीं कही है। सेठ! तुम्हारे उसमें आता है कि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का स्वीकार करो। उपादेय रूप से स्वीकारो, यह बाधा थी। उपादेय रूप से स्वीकारो बाद में चर्चा होगी। क्यों मालचन्दजी! यह बात है? उपादेय कहाँ से माने? निमित्त एक ज्ञान करने की चीज है, उपादेय अंगीकार करने की चीज है नहीं। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि '**सिद्धकी भाँति...**' जैसे सिद्ध परमात्मा, उनको तो शरीर और कर्म का निमित्त भी नहीं है। इसलिये अपने में अपनी नैमित्तिक पर्याय हीन आदि भी सिद्ध को नहीं है। '**तथा भावकर्म...**' अब आया। पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, तप और जप ऐसा जो विकल्प उठता है राग-राग, वह भावकर्म है, वह पुण्यभाव है, वह शुभभाव है। और हिंसा, जूठ, चोरी, विषयभोग वासना का

भाव वह पाप भावकर्म है। पापभाव अरूपी भावकार्य जीव में है।

'**भावकर्म आत्मा का भाव है...**' यहाँ तो उसकी पर्याय परसे भिन्न बतानी है न? अभी वह अधिकार नहीं है कि समयसार का कि भावकर्म वह जड़, जड़ का है। पहले द्रव्य को पर से भिन्न न करे, अभी द्रव्य स्वयं आत्मा है, उसकी शक्तियाँ है और उसकी पर्याय है, विकारी या अविकारी स्वयंसिद्ध अपने से है, पर से नहीं है। परवस्तु एक निमित्तमात्र है। इतना स्वीकार पर से पृथक् का न करे उसको भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द है, उसके स्वभाव में विकार है ही नहीं। तो स्वभाव की दृष्टि कराने के लिये स्वभावदृष्टि हुई कि वह विकार मेरा नहीं है और मेरे में नहीं है। समझ में आया?

परन्तु पहले से ऐसा स्वीकार कर ले कि विकार कर्म का है... विकार कर्म का है... विकार कर्म का है... तो उसको भिन्न करना (रहा नहीं), कर्म तो भिन्न चीज ही है। वह तो पहले कहा न। समझ में आया? वह तो निश्चय से संसारी को द्रव्यकर्म, नोकर्म भिन्न ही है। भिन्न है उसको भिन्न क्या करे? समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पिण्डस्वरूप है, उसकी पर्याय में--अवस्था में विकार, पुण्य-पाप आदि शुभ-अशुभभाव है, वह जीव के अस्तित्व में है, जीव का है, वह आत्मा का कार्य है। आत्मा कर्ता होकर परिणमता है। समझ में आया?

दर्शन अधिकार में, सम्यग्दर्शन अधिकार में तो वस्तु स्वयं अभेद और निर्मलानन्द है। उस दृष्टि का भान हुआ, फिर भी उस दृष्टि के साथ जो सम्यग्ज्ञान हुआ, उस ज्ञान के अंश में एक ज्ञान का अंश आत्मा को पूर्ण जानता है और उस ज्ञान का अंश वर्तमान में मेरे में राग का परिणमन है, परिणमन है, भावकर्म का मेरे में मेरे कारण परिणमन है ऐसा एक ज्ञान का अंश उसको जानता है। समझ में आया?

४७ नय आयी न? ४७ नय, प्रवचनसार। तो कर्तृत्वनय आत्मा का धर्म है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, दया और दान, पाप के परिणाम वह सब आत्मा की पर्याय का धर्म अर्थात् स्वभाव है। वह आत्मा की पर्याय स्वयं उस प्रकार से परिणमित हुई है, ऐसे सम्यग्दृष्टि भी अपने कर्तृत्वधर्म को (अर्थात्) मेरे में यह है ऐसा जानता है। आहाहा..! समझ में आया?

दृष्टि का विषय अभेद है। वह तो एकरूप चैतन्यद्रव्य है। ज्ञायकमात्र वस्तु ज्ञायकभाव। ऐसी दृष्टि हुई, फिर भी जब तक केवलज्ञान और सिद्धपद न हो, तब तक उसको भी राग-द्वेष तो है और राग-द्वेष का कर्तृत्व-भोक्तृत्वधर्म मेरा है। ४७ नय में है। दीपचन्दजी!

समझ में आया? कर्तृत्वरूप परिणमन और हर्ष-शोक का भोक्तृत्वरूप परिणमन मेरा धर्म, धर्म अर्थात् उस भाव को मैंने धारण कर रखा है। आत्मा ने धारण किया है। उस अपेक्षा से आत्मा ज्ञान से जानता है कि मेरे में कर्तृत्व-भोक्तृत्व है। आदरणीय है कि नहीं वह प्रश्न यहाँ नहीं है, एक जानने लायक चीज़ है।

'**तथा भावकर्म...**' अर्थात् पँच महाव्रत के भाव, अव्रत के भाव, हिंसा, जूठ, चोरी के भाव, काम-क्रोध के भाव, दया, दान, अनुकंपा, सेवा, करुणा, यात्रा, भक्ति का भाव, वह आत्मा के भाव है, आत्मा की पर्याय है, आत्मा में अवस्था का परिणमन है। और वह निश्चय से आत्मा का ही है, निश्चय से आत्मा का है। क्योंकि स्व का है। स्व सो निश्चय और पर सो व्यवहार। अभी इतनी बात चलती है। कहो, पाटणीजी!

एक ओर समयसार में कहे कि कर्म व्यापक होकर पुण्य-पाप का व्याप्य--अवस्था वह कर्म की व्याप्य अवस्था है। आत्मा की व्याप्य नहीं। किस अपेक्षा से? दृष्टि का चैतन्य पर, ज्ञायक पर परिणमन हुआ तो दृष्टि का विषय द्रव्य है और द्रव्य का परिणमन स्वभाव की पर्याय है। द्रव्य का परिणमन स्वभाव की पर्याय है। ऐसा गिनकर विभाव की पर्याय कर्म में डाल दी। समझ में आया? इस ओर खीँचे तो ऐसा खीँचे, उस ओर खीँचे तो वहाँ खीँचे।

'**भावकर्म आत्मा का भाव है सो निश्चयसे आत्माही का है, परन्तु कर्म के निमित्त से होता है, इसलिये व्यवहार से कर्मका कहा जाता है।**' देखो! निश्चय से आत्मा का विकारभाव है, स्व का है इसलिये। और कर्म का निमित्त साथ में है, उपचार है, आरोपित एक चीज है, इसलिये उससे हुआ ऐसा कहकर, इसलिये उसको व्यवहार से कर्म का भी (कहने में आता है)। विकारी भाव व्यवहार से कर्म के कहें। व्यवहार से अर्थात्? निमित्त को देखकर उसका है ऐसा व्यवहार से अर्थात् वास्तव में उसका नहीं है। वास्तव में उसका नहीं है, निश्चय से तो जीव का संसार जीव में है। जीव की विकारी पर्याय राग, द्वेष, दया, दान, विकल्प आदि आत्मा की पर्याय में--अवस्था में निश्चय से है। कहो, समझ में आया? कर्म का निमित्त अर्थात् नैमित्तिक तो अपनी नीजी पर्याय राग, द्वेष, पुण्य, पाप आदि है और कर्म तो उसमें निमित्त है। नैमित्तिक की अपनी अपेक्षा से वह निश्चय है, परन्तु निमित्त की अपेक्षा से व्यवहार उसका है ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

'**तथा सिद्धकी भाँति संसारी के भी रागादिक न मानना,...**' सिद्ध को जैसे

संसार और राग-द्वेष नहीं है, पुण्य-पाप नहीं है, ऐसे संसारी को भी नहीं है, रागादि नहीं मानना और '**उन्हें कर्मका ही मानना...**' देखो! कर्म के ही राग-द्वेष है। पुण्य-पाप, दया, दान, काम, क्रोध कर्म के ही है। ऐसा मानना वह भी भ्रम है, भ्रमणा है। कहो, समझ में आया? यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है न इसमें? ज्ञानप्रधान स्वपरप्रकाशक ज्ञान है। तो ज्ञान हुआ वह अपनी पर्याय स्वयं परिणमन करती है ऐसा जानता है। निमित्तत्व कर्म का है, इसलिये कहने में आया कि उसके हैं, इसलिये उनके नहीं हो जाते। समझ में आया?

संसारी को राग, द्वेष, पुण्य, पाप मानना ही नहीं, मेरे है ही नहीं, वह तो जड़ के ही हैं। ७५वीं गाथा चलती थी न? उसका प्रश्न हुआ था, राजकोट में सोमचन्दभाई ने प्रश्न किया था। वास्तव में इन दोनों का है क्या? ७५वीं गाथा आयी तब (ऐसा आया कि) निश्चय से व्याप्य-व्यापक कर्म का है। अन्तरंग में राग-द्वेष हो या बाह्य कर्म जड़ की पर्याय हो। वह सब कर्म का है, आत्मा में नहीं है। निश्चय से वहाँ कहा है। यहाँ कहा कि निश्चय से आत्मा के राग-द्वेष है। यह निश्चय अर्थात् स्व का है इतनी अपेक्षा से। स्व अशुद्धता का परिणमन उसका है, उसके अस्तित्व में है। शुद्ध उपादान, त्रिकाल शुद्ध उपादान की दृष्टि में विकार उसका है ही नहीं। अशुद्ध उपादान की पर्याय में स्वयं का है इसलिये उसका कहा है। समझ में आया? उसके है कि नहीं? उसके है कि नहीं?

पुराने पंडित थे वह सब अच्छे थे। पुराने पंडित की बात बराबर है, ऐसा कहते थे। यह सब नये हुए हैं। सब मालूम है। एक बार बोले हो वह शब्द कान में पड़ा हो। वहाँ सब बातें करते थे सनारामजी आदि। पुराने पंडितों के जो सिद्धांत है वह बराबर है, अभी के नहीं। मगनभाई जैसे वहाँ बैठे हो, सुनते रहे। मगनभाई को कुछ मालूम नहीं होता। जो भी हो, भाई। एय..! लालचन्दभाई! पुराने पंडित क्या कहते हैं और वर्तमान के क्या कहते हैं उसके विवेक बिना.. पुराने पंडित कहते हैं वह बराबर है कि व्यवहार से आत्मा में धर्म होता है, व्यवहार से होता है। व्यवहार से आत्मा का है। परन्तु व्यवहार से है माने क्या? है नहीं। परन्तु कर्म का निमित्त देखकर व्यवहार कहने में आया है। मालचन्दजी! बहुत गड़बड़ी चलती है शास्त्र के नाम पर। ओहोहो..!

वह प्रश्न उठा था कि नहीं, सेठिया को? आस्रव जीव है कि अजीव? आस्रव जीव है कि अजीव? आस्रव तो जीव है। अरे..! आस्रव तो जीव हमारे गुरु परम्परा

से कह गये हैं। पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, अव्रत के विकल्प जो हैं आस्रव, वह जीव है। जीव है तो अभेद है कि भेद है? बालचन्दजी! सेठिया ने प्रश्न किया था।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, हाँ, किया था, वह मालूम है। नाम नहीं लेते हैं। भेद है कि अभेद है आत्मा के साथ? विचार करने लगे, यदि भेद कहेंगे तो जीव का सिद्ध नहीं होता, अभेद कहेंगे तो सिद्ध में नहीं है। करना क्या? नयदृष्टि तो है नहीं। समझ में आया? हज़ारो लोगों में वह प्रश्न हुआ था। आस्रव का परिणाम। क्योंकि श्वेताम्बर शास्त्र में ऐसा आता है कि, जीव का परिणाम... जीव का परिणाम... जीव का परिणाम है। परिणाम एक सारा पद है, उसमें सब जीव के ही परिणाम, राग, द्वेष, पुण्य, पाप, काम आदि जीव के परिणाम हैं। जीव के परिणाम तो पर्यायदृष्टि की अपेक्षा से है। समझ में आया? द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा से जीव के परिणाम नहीं है। इसप्रकार दो नय लागू किये बिना वास्तविक तत्त्व का ज्ञान सच्चा हो सकता नहीं। समझ में आया? समझ में आता है कि नहीं?

यहाँ कहते है देखो! पर्याय में उसके हैं, पर्यायदृष्टि से पर्याय उसमें है। पर्याय का अंश राग, द्वेष, पुण्य, पाप, आस्रवभाव, पुण्य-पाप का दो एकरूप वह आत्मा में है, पर्याय से। द्रव्यदृष्टि से नहीं है। समझ में आया? पर्यायदृष्टि से अभेद है, द्रव्यदृष्टि से भेद है। क्या कहा? पर्यायदृष्टि से अभेद है। एक समय की दृष्टि में आस्रवभाव अभेद है। द्रव्यदृष्टि से भेद है। वस्तु में आस्रव परिणाम है ही नहीं। वस्तुदृष्टि से। दो के मिलान किये बिना उसका सच्चा द्रव्य का ज्ञान, प्रमाणज्ञान सच्चा होता नहीं। समझ में आया?

दूसरा---'**संसारी के भी राग-द्वेष, पुण्य-पाप न मानना, उन्हें कर्मका ही मानना वह भी भ्रम है।**' पहले से ही कर्म के मानना, अशुद्ध उपादान उसके अस्तित्व में होता है, निश्चय से उसका वह काल है इसलिये वह विकार उसके सत् में होता है। वह सत् है, पर्याय सत् है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तीनों सत् है। विकार की उत्पत्ति और पूर्व के विकार का व्यय और द्रव्य तीनों सत् है। अपने में है, अपने कारण से अपना सत् है। समझ में आया? परन्तु उसे कर्म के ही मान लेना और स्वच्छन्दी हो जाना (यह उचित नहीं)। कर्म का है, तब तक राग होगा। हमें क्या है? आत्मानुशासन में कहते हैं। क्या? आत्मावलोकन। आत्मावलोकन में कहते हैं कि जब तक पुद्गल रहेगा तब तक विकार रहेगा। विकार रहेगा तब तक पुद्गल रहेगा ऐसा नहीं। ऐसा

है। आत्मावलोकन... क्या कहते हैं? दिपचन्दजी साधर्मीकृत। अनुभवप्रकाश, चिद्विलास, आत्मावलोकन बनाया है न? आत्मावलोकन में लिया है कि जब तक पुद्गल है तब तक विकार है। ऐसा क्यों नहीं कहा कि जब तक विकार है तब तक पुद्गल है? ऐसा क्यों नहीं कहा? नहीं, सुन! जब तक पुद्गल है तब तक विराक रहेगा, ऐसा क्यों कहा? विकार को अनित्य सिद्ध करने को। विकार अनित्य है, आत्मा है वहाँ विकार है तो आत्मा तो द्रव्यस्वभाव त्रिकाल है। तो त्रिकाल विकार हो तो तो विकार कभी निकल सकता नहीं। जब तक पुद्गल है तब तक विकार है। ऐसे विकार को अनित्य सिद्ध करने को, क्षणिक सिद्ध करने को ऐसा कहा। आत्मावलोकन में है। दिया है कि नहीं? आपने कुछ आत्मावलोकन का दिया है न? निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में डाला है कुछ। फूटनोट में डाला है। फूटनोट में डाला है। आपके सामने देखा तो याद आया। समझ में आया?

भगवान आत्मा,... यह शरीर, वाणी, मन, कर्म तो जड़ पर है, वह तो भिन्न ही है, सर्वथा भिन्न है। वह सर्वथा भिन्न हो तब ही निमित्त-निमैतित्क सम्बन्ध कहने में आता है। परन्तु विकार परिणाम है वह सर्वथा भिन्न नहीं है। कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न है। आहाहा..! समझ में आया? विकार के परिणाम पर्याय--अवस्था-हालत की दृष्टि से तो अभिन्न ही है, अभिन्न ही है। उसकी पर्याय में है। स्वचतुष्टय में है, स्वचतुष्टय में है। बराबर है? समयसार में अब तक कहा कि नहीं? वह किस अपेक्षा से? यह निश्चय करने के बाद वस्तु स्वसंवेदन चैतन्यमूर्ति का हुआ, स्वभाव का कार्य स्वभाव होता है। स्वभाव का कार्य विभाव है ही नहीं। विभावकार्य तो अज्ञानभाव में था। समझ में आया?

मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ, ज्ञातादृष्टा हूँ। मैं हूँ आतमराम। बोलते नहीं? सहज स्वभावी ज्ञाता-दृष्टा। फिर? चैतन्य मेरा नाम। वह राजेन्द्र बोलता था न? वह चला गया, उसके पिताजी के घर पर गये। यहाँ बोटाद पिताजी के घर पर था। कहो, समझ में आया? 'मैं हूँ आतमराम सहजस्वभावी ज्ञातादृष्टा चैतन्य मेरा नाम।' वह दृष्टि की अपेक्षा से बात है। भीखाभाई! इसमें क्या मानना? यह मानने जाये तो समयसार का जूठा हो जाता है, समयसार का मानने जाये तो यह जूठा हो जाता है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ! समय आने पर वह बोलते हैं। उस तरह समझने की पर्याय की लायकात न हो तो कौन समझे? कहो, समझ में आया?

'**सिद्धकी भाँति संसारी के भी...**' पुण्य, पाप, दया, दान, रागादि का परिणाम विकारी है उसके। '**उन्हें कर्मही का मानना वह भी भ्रम है।**' कर्म में होगा वैसे होगा, कर्म में जैसा होगा वैसा होगा, कर्म में होगा वैसा होगा। हमें तो कर्म में दया लिखी होगी तो होगी। व्रत भी कर्म में लिखे होंगे तो होंगे। पाप के भाव भी कर्म में लिखा होगा तो होगा। कर्म में कहाँ से होगा? धूल होगा? वह तो जड़ है। तेरे में है। पर्याय में--तेरी अवस्था में वह विकार है। कहो, समझ में आया?

'**इस प्रकार नयों द्वारा एक ही वस्तु को एक भाव अपेक्षा ऐसा भी मानना और ऐसा भी मानना, वह तो मिथ्याबुद्धि है;...**' समझ में आया? एक ही पर्याय संसार की उसको संसार की पर्याय भी मानना और उसको सिद्ध की पर्याय भी मानना। एक ही पर्याय रागवाली, उसको रागवाली भी माननी और अरागवाली भी मानना। एक ही पर्याय मतिज्ञान, उसको मतिज्ञानवाली मानना और केवलज्ञानवाली मानना। समझ में आया? एक भाव को दो प्रकार से मानना ऐसा हो सकता नहीं।

'**इस प्रकार नयों द्वारा एक ही वस्तु को एक भाव अपेक्षा से ऐसा भी मानना...**' भाव अर्थात् पर्याय की बात है न यहाँ? '**और ऐसा भी मानना, वह तो मिथ्याबुद्धि है,...**' तीन बोल ले लिये। मनुष्यपना यहाँ वर्तमान है उसमें गति की योग्यता भी जीव में है। और गति की योग्यता, मनुष्य की योग्यता भी मानना और वर्तमान में सिद्ध की पर्याय को भी मानना। भ्रम है। एक पर्याय में दूसरी पर्याय हो सकती नहीं। जिस पर्याय अपेक्षा से वह है, उस ही पर्याय अपेक्षा से है। दूसरी पर्याय उसमें है ही नहीं। राग के परिणाम की पर्याय है, उस काल में अराग की भी पर्याय है ऐसा नहीं है। अशुद्ध पर्याय है उस ही काल में शुद्ध पर्याय है ऐसे दो हो सकती नहीं।

'**परन्तु भिन्न-भिन्न भावोंकी अपेक्षा नयोंकी प्ररूपणा है–**' द्रव्यपना त्रिकाल भाव है वह शुद्ध है, वर्तमान पर्याय अशुद्ध है वह, दो भावों की भिन्नता की अपेक्षा से कथन है। एक ही भाव को इस नय से ऐसा और दूसरी नय से ऐसा, ऐसा है नहीं। कहो। '**ऐसा मानकर यथासम्भव वस्तुको मानना...**' जैसी वस्तु की पर्याय है, गुण है, द्रव्य है। द्रव्य अर्थात् नित्य वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् अवस्था। जैसी है वैसी यथासम्भव। सम्भव अर्थात् सम्भवे ऐसी, उसमें हो ऐसी। यथासम्भव–यथा नाम जिस काल में वहाँ उसमें वह हो उस काल में उस तरह जानना। समझ में आया? यथासम्भम मानना, यथासम्भव मानना। जैसी पर्याय जहाँ है वैसी उसको

मानना। '**सो सच्चा श्रद्धान है।**'

'**इसलिये मिथ्यादृष्टि अनेकातन्तरूप वस्तुको...**' देखो! अनेकान्त मानता है। हम भी अनेकान्त मानते हैं। सिद्ध समान भी हैं और संसारी भी हैं, रागवाले भी हैं और अरागी भी हैं, केवलज्ञानी भी हैं, मतिज्ञानी भी हैं। यह उसका अनेकान्त। ऐसा अनेकान्त होता नहीं। मतिज्ञान पर्यायपने मतिज्ञान है और केवलज्ञानपने वह नहीं है। रागकी पर्यायपने राग है और अरागपने वह नहीं है। ऐसा अनेकान्त है। कहो, समझ में आया?

'**इसलिये मिथ्यादृष्टि अनेकान्तरूप वस्तुको मानता है...**' इस प्रकार अनेकान्त हाँ! अर्थात् जूठा अनेकान्त। ये सब अनेकान्त ठहराते है न अभी? अनेकान्त करो। कथंचित् उपादेय, कथंचित् हेय। वही की वही वस्तु को। समझ में आया? ओहो..! वही की वही चीज़ को कथंचित् उपादेय, व्यवहार से तो उपादेय कहो। परन्तु उसका अर्थ क्या हुआ? व्यवहार से उपादेय का अर्थ अभूतार्थ दृष्टि से उपादेय व्यवहार, सत्य दृष्टि से उपादेय है नहीं। दो नय का तो विरोध है। निश्चय कहता है कि मैं सत्य हूँ, व्यवहार कहता है कि सत्य से विरुद्ध असत्य कहनेवाला व्यवहार है। दोनों को उपादेय और एकरूप कैसे मानें? जाननेयोग्य दूसरी चीज़ है ऐसा मान सके, परन्तु आदरणीय मान सकते नहीं। समझ में आया?

'**परन्तु यथार्थ भाव को पहिचानकर नहीं मान सकता...**' पर्याय को पहिचानकर भाव अर्थात्। वास्तविक पर्याय क्या है? द्रव्य-गुण त्रिकाल क्या है? उसको पहिचानकर मान सकता नहीं इसलिये वह जैन में जन्मा हो फिर भी जैन साधु होने पर भी और जैन का श्रावक होने पर भी इस तरह अनेकान्त को समझता नहीं और अपनी दृष्टि से अनेकान्त को स्वीकारता है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? देखो! यह अधिकार वहाँ हुआ। अब दूसरा आया।

'**तथा इस जीव के व्रत, शील, संयमादिक का अंगीकार पाया जाता है,...**' व्रत, शील, संयम आदि क्रिया। '**सो व्यवहार से ये भी मोक्षके...**' मोक्षमार्ग के कारण है, ऐसा है। लिखा है उसमें? पहले में मोक्ष के कारण है ऐसा लिखा है। बराबर है। क्या कहा? तथा अज्ञानी ऐसा मानता है कि हमें व्रत है, शील है, संयम है, छकाय की हिंसा का त्याग है, यह है, वह है, वह अंगीकार करता है। '**सो व्यवहार से ये भी मोक्षके कारण है...**' मोक्षमार्ग का कारण है '**ऐसा मानकर उन्हें उपादेय मानता है;...**' यहाँ उपादेय मानता है। हेय को उपादेय मानता है। यहाँ शरीर की क्रिया लेनी है पहली। समझ में आया कुछ? ग्रहण-त्याग शुभोपयोग

बाद में लेंगे। यहाँ शरीरादि से ग्रहण–त्याग होता है न? यह अव्रत का त्याग और यह स्त्री का त्याग और यह ब्रह्मचर्य का अंगीकार, इसका त्याग, उसका अंगीकार, ऐसी देहादिक की जो क्रिया, परके कर्तृत्व की। '**सो ये भी मोक्षमार्ग के कारण है...**' देखो! वह व्रतादि मोक्ष के कारण, वास्तव में मोक्षमार्ग के कारण नहीं है। समझ में आया?

उसमें शुभराग आये वह भी कारण नहीं है और बाह्य की क्रिया शरीराश्रित है यह तो बिलकुल कारण है ही नहीं। समझ में आया? हिंसा से शरीर को हटाया और दया में शरीर को क्रिया में जोड़ा। वह तो पर की क्रिया है, आत्मा में कहाँ थी? समझ में आया? जूठ बोलना छोड़ा और सत्य बोलना अंगीकार किया। बोले कौन? जड़ भाषा वह तो भिन्न है, वह तो पहले से कहा। कर्म और नोकर्म अर्थात् शरीर, वाणी तो भिन्न है। उसका आत्मा में ग्रहण–त्याग कहाँ है? उसको उपादेय मानता है। देखा? मोक्षमार्ग का कारण व्रत, शील, संयम पालो, बराबर क्रिया करो, अच्छी करो, देहादि में किसीको स्पर्श न करने दो, यह न होने दो, वह न होने दो। परन्तु स्पर्शे करे या न करे वह कहाँ तेरी क्रिया हैं? समझ में आया? स्त्री के पल्लु का स्पर्श नहीं होने देना, यह नहीं होने देना, शरीर से नववाड़ ब्रह्मचर्य का पालन करना, स्त्री बैठी हो वहाँ बैठना नहीं। पेट में ज्यादा आहार नहीं खाना। हमको ब्रह्मचर्य पालना है। बाह्य क्रिया से ब्रह्मचर्य का पालन होता होगा? समझ में आया?

वह मोक्षमार्ग के कारण। मार्ग के कारण हाँ! देखो! वह व्रतादि मोक्षमार्ग जो निश्चय है उसका वह कारन मानता है। उसको उपादेय माने '**सो जैसे पहले केवल व्यवहारालम्बी जीव के अयथार्थपना कहा था वैसे ही इसके भी अयथार्थपना जानना।**' व्रतादि की क्रिया शरीराश्रित है। वह कहाँ आत्मा को आदारणीय है? ओहोहो..! बड़ा कठिन भाई! बड़े–बड़े साधु नाम धराये, आचार्य नाम धराये, अब उसको नीचे उतरना (कठिन पड़ता है) इतना छोड़ो, यह खाओ, वह छोड़ो, यह खाओ, यह छोड़ो और यह खाओ। इतना चलना बन्द करो, यहाँ पचलो और इतना चलना बन्द करो, इस दिशा में नहीं जाना, इस दिशा में जाना। इतने व्रत देशावगाशिक आता है न? मुनि ऐसे अभिग्रह धारण करे, इतने में नहीं जाना, यहाँ बैठना। आहार के लिये जाये तब इस गली में जाना, उस गली में नहीं जाना। नग्न मुनि हाँ! दिगम्बर नग्न मुनि की बात है। वह भी ऐसी व्रतादिक की क्रिया को ग्रहण–त्याग माने तो मिथ्यादृष्टि है। ओहोहो..! समझ में आया?

यहाँ तो जैन के मतानुयायी की बात ली है न? उन दोनों को तो जैन मतानुयायी कहा ही नहीं है। कौन? श्वेताम्बर और स्थानकवासी तो जैन मतानुयायी में लिया ही नहीं। वह तो पाँचवे अध्याय में आ गया है। पहले वह बात आ गयी है। यहाँ तो दिगम्बर जैन धर्म में जन्मे, जिनाज्ञा माने फिर भी उसको निश्चय-व्यवहार की सन्धि की खबर नहीं है, ऐसे मिथ्यादृष्टिकी सँभाल, सँभाल ली है। कहो, समझ में आया? देखो न! यह आदरना, यह छोड़ना। यहाँ चमडे का पट्टा बाँधा हो तो नहीं लेंगे। ऐसा आहार हो तो लेंगे। वह तो बाहर की क्रिया तो जडाश्रित है, उसमें तुझे क्या है?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- .. धूल में भी नहीं है। उसमें कदाचित् राग की मन्दता का शुभभाव हुआ हो तो पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया? उसमें जोर (दे), बस! ऐसा नहीं। चौका में ऐसी चीज हो तो हम नहीं लेंगे। चौका के बाहर नीकले तो नहीं लेंगे। वह सब बाह्य ग्रहण-त्याग का जोर है। होता है कि नहीं? सेठ! यह तो उनके गर्भदिगम्बर है। दिगम्बराभास। बराबर है? यहाँ तो उसको ही कहते हैं, उसकी बात नहीं है।

दिगम्बर तो वस्तु का स्वरूप है। दिगम्बर कोई धर्म अर्थात् वस्त्र रहित साधु इतना ही दिगम्बर है ऐसा नहीं है। उसको दिगम्बर का नाम मुनि की अपेक्षा से दिया है। बाकी उसका नाम निर्ग्रंथ मार्ग है, निर्ग्रंथ मार्ग है। भ्राँति से बाहर निकला है और राग से भी निकलकर निर्भ्रांत होकर स्थिर हुआ है ऐसा वीतराग का मार्ग है। वीतराग मार्ग की वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। वह किसी के द्वारा की हुई या कल्पना की है ऐसा नहीं है। समझ में आया?

फिर कहते हैं कि '**तथा यह ऐसा भी मानता है कि यथायोग्य व्रतादि क्रिया तो करने योग्य है;...**' शरीर में ग्रहण-त्याग करना, वाणी ऐसे नहीं बोलना, ऐसा नहीं करना, ऐसा रहना, वैसे रहना। समझ में आया? '**परन्तु इसमें ममत्व नहीं करना।**' जड़ की क्रिया करना, ममता नहीं करनी। हरिकाय छोड़ देना और जमीकंद छोड़ देना, प्रत्येक वनस्पति लेना। कौन ले सकता है? कौन छोड़ सकता है? मालूम है? वह तो जड़ शरीर की क्रिया है। जड़ की क्रिया, पर की क्रिया है। समझ में आया? पंचरस नहीं खाना। ऐसा नहीं। मालमलिदा तो खाते हैं परन्तु तप करके उडाते हैं। मालमलिदा कौन खाता है? धूल भी आत्मा नहीं खाता। वह खाता है ऐसा मानना

वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है ऐसा कहते है यहाँ। और बाद में आहार छोड़कर तपस्या करना। वह शरीर की क्रिया हुई, वह तो आहार छूटा और शरीर ऐसा पडा वह तो अजीव है, मिट्टी है, धूल है यह तो। ऐसी व्रतादि क्रिया तो करनी योग्य है, शरीरादि की। '**परन्तु इसमें ममत्व नहीं करना।**'

'**सो जिसका आप कर्ता हो, उसमें ममत्व कैसे नहीं किया जाये?**' कर्ता होकर ऐसा कहे कि मैंने शरीर से यह छोड़ा, वाणी से यह छोड़ा, इतना आहार छोड़ा, इतना मैंने छोड़ा, इतना मैंने लिया, मुझे इतने द्रव्य का उपयोग है, इतने द्रव्य का उपयोग नहीं है। मालचन्दजी! है कि नहीं? छह द्रव्य का उपयोग है। एक साल में एक एक द्रव्य छोड़ देना। छोड़ते-छोड़ते संथारा कर लेना। क्या तेरा संथारा? और क्या तेरा द्रव्य छोरड़ना? द्रव्य छोड़ना-ग्रहना तो जड़ की क्रिया है। क्या आत्मा वह कर सकता है? आहाहा..! बहुत कठिन है यह, भाई यह। समझ में आया?

फिर ऐसा कहे कि कर्ता तो होना, ममता नहीं करनी। '**कैसे नहीं किया जाय? आप कर्ता नहीं है तो मुझको करने योग्य है ऐसा भाव कैसे किया?**' मुझे खाना छोड़ देना चाहिये, मुझे यह नहीं खाना चाहिये, यह मैं ले सकता हूँ, यह मैं नहीं ले सकता, मुझे ऐसे चलना चाहिये, ऐसे नहीं चलना चाहिय, मुझे ऐसे बोलना चाहिये, ऐसे नहीं बोलना चाहिये। यह कहाँ से आया? तुझ में कहाँ था बोलना, न बोलना, चलना, फिरना वह तो जड़ का है। समझ में आया? '**ऐसा भाव कैसे किया?**' कर्ता नहीं है तो मुझे करनेयोग्य है ऐसा तुने कैसे माना?

'**और यदि कर्ता है तो वह अपना कर्म हुआ,...**' शरीर की अवस्था, वाणी की अवस्था, बाह्य पदार्थ छूटा उसकी अवस्था। समझ में आया? तु कर्ता और वह तेरा कार्य। तु कर्ता और वह तेरा कार्य। वह तो मिथ्यादृष्टि हो गया। इसलिये कर्ताकर्म सम्बन्ध स्वयंसिद्ध हुआ। कर्ताकर्म सम्बन्ध हुआ। यह मैंने छोड़ा। आज अष्टमी थी तो मैंने आहार छोड़ा, आज नहीं खाना। रात को बराबर पेट भर के खा लेना। कल उपवास करना है। मूढ है? क्या खाना तेरी क्रिया है? और कल मैंने छोड़ दिया पर। पर को छोड़ना तेरी क्रिया है? वह तो जड़ की है। समझ में आया? उपवास पहले करना हो सवंत्सरी तो रात को रोटी और दहीं खा ले। दहीं.. दहीं... दहीं... दहीं कहते है क्या कहते हैं? दहीं। तृषा न लगे और रोटी बराबर साथ में खा सके। खट्टा-मीठा दहीं होता है न। फिर दूसरे दिन तकलीफ नहीं। आज मैंने छोडा और रात को ग्रहण किया। वह सब जड़ की क्रिया पर अजीव की है, भिन्न द्रव्य की है।

उसको कर्ता होकर 'यह मेरा कार्य' ऐसा माने तो मूढ है। बड़ी कठिन बात यह, भाई। ऐसे ईश्वर को कर्ता माने तो मिथ्यादृष्टि माने। ईश्वर कोई कर्ता है, उसके सब काम है। तो कहे, ना। और आत्मा स्वयं ईश्वर और शरीर के ग्रहण-त्याग के कार्य मेरे। वह तो ईश्वर का बाप हुआ, वही का वही। दुर्गादासजी! दूसरी तरह से तुने ईश्वर को लाकर बैठा दिया। यह कर्ता, शरीर का त्याग करुं, यह त्याग करुं, यह छोड दुँ, परद्रव्य छोड दुँ, परद्रव्य लुँ। एक-एक का उपयोग करु, फिर एक-एक छूटेगा। समझ में आया?

'**यदि कर्ता है तो वह अपना कर्म हुआ, तब कर्ता-कर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही हुआ;...**' उस जड़ के साथ, त्याग-ग्रहण के साथ, जड़ के साथ। इस प्रकार तीन काल में आत्मा कर्ता और पर का कार्य आत्मा में है नहीं। अब '**ऐसी मान्यता तो भ्रम है।**' शरीर, वाणी की क्रियाएँ होती है, बाहर आहार-पानी का त्याग-ग्रहण हो आदि। समझ में आया? इतना द्रव्य का उपयोग करना, इस गली में जाना, उस गली में नहीं जाना। इस काल में... ऐसा होता है न? बस! आठ बजे, दस बजे जाना, उसके बाद नहीं जाना। परन्तु वह सब क्रिया तो जड़के आधीन है। तेरे आधीन क्रिया कहाँ है? उसका कर्ता होकर वह क्रिया अपनी मानना वह तो भ्रम है, मिथ्यात्व है।

'**तो कैसे है?**' भाईसाहब! अब खुलासा तो करो। हम तो दुविधा में पड़ गये। हम तो दुविधा में पड़ गये। ऐसा कहैं तो ऐसा, ऐसा करे तो ऐसा। अब हमें करना क्या? पाप करें दुकान पर बैठकर तो कहेंगे, पाप करते हो, दुकान छोड़कर यहाँ बैठते है तो कहते हो छोड़ने के कर्ता होते हो उसका पाप तुझे लगता है। समझ में आया? दुकान पर रहे तो कहते हो, पाप, फिर हमने दुकान छोड़ी और हम निवृत्त होकर बैठे हैं। हमने उसको छोड़ा और स्वाध्याय मन्दिर को अंगीकार किया। तो कहते हो, कर्ता क्रिया हुई। तु कर्ता और वह क्रिया। हमें करना क्या अब? मालचन्दजी! बहुत अच्छी बात ली है।

एक रजकण भी,... यह वाणी बोली जाती है, उसकी पर्याय आत्मा से नहीं है। वह तो जड़ भिन्न तत्त्व की बात है। भिन्न अजीव है। ऐसा बोले कि अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व, जीव को अजीव माने तो मिथ्यात्व.. आता है न मिथ्यात्व? २५ प्रकार का मिथ्यात्व आता है। दस प्रकार कहा, फिर २५ प्रकार तो उसमें आते है। स्थानकवासी में २५ प्रकार आते हैं। उन लोगों में १० आता है। समझ में आया? मार्ग को कुमार्ग माने तो मिथ्यात्व, कुमार्ग को मार्ग माने तो मिथ्यात्व। साधु को

कुसाधु माने तो मिथ्यात्व, कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व। आता है कि नहीं? खबर नहीं कुछ।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह साधु था कब? अभी तो श्रद्धा--दृष्टि का पता नहीं कि यह आत्मद्रव्य पर की एक परमाणु की क्रिया का ग्रहण-त्याग वह चैतन्य में नहीं है। समझ में आया? यह तो कहे, हम उपदेश दे सकते हैं, हम चल सकते हैं, विहार कर सकते हैं, दूसरे को समझा सकते हैं, हम से दूसरे समझे उसका हमें लाभ होता है। सब मूढता मिथ्यादृष्टिपना है।

श्रोता :- पूरा क्रियामार्ग ही निषेध कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- पूरा क्रियामार्ग का उथापन किया। चला गया लो! घर आये नग्न मुनि को आहार दे। आज हमारे यहाँ आहारदान हुआ। जाओ ५०१ आहारदान की खुशहाली में देते हैं, पुस्तकालय में कोई पुस्तक छपवाते हो तो दे। समझ में आया?

श्रोता :- बड़ी दीक्षा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बड़ी दीक्षा हो, बड़ी माने क्या? बहुत लोग एकट्ठे हुए। अभी हुए थे आगरा में बहुत लोग इकट्ठे हुए थे। उसकी बात करते हैं। बहुत लोग इकट्ठे हुए। हो... हा... नग्न होते हैं, बापू! दीक्षा लेते हैं बापु! किसकी दीक्षा? दुःख लेते है। ज्यादा दुःखी होता है। दखीया समझते हों? दुःखी। शरीर की क्रिया मेरी, यह क्रिया जड़की, ईश्वर स्वयं कर्ता होकर उनके कार्य को स्वयं का माने। छह काय की दया मैंने पाली, छह काय हिंसा मैं करता था, वह सब भ्रमणा और मिथ्यादृष्टिपना है। तो करना क्या अब हमें किसतरह? कुछ खुलासा तो करो। व्रत पाले तो कहे मिथ्यादृष्टिपना। व्रत नहीं पालते हैं तो कहे अव्रत का पाप, अत्याग का पाप। स्त्री के पास बैठे तो कहे पाप, उसको छोडें तो कहे, पाप। समझ में आया? बोले तो कहे पाप। बोलने की मान्यता हुई तेरी। मौन रहे तो कहे पाप। मौन जड़ की पर्याय है तो कहता है, मैं मौन रहा। अजीव का स्वामी हो गया।

'**तो कैसे है? बाह्य व्रतादिक हैं वे तो शरीरादिक परद्रव्य के आश्रित है,...**' त्याग-अत्याग बाह्य आचरण में जो जड़ छूटा और मिला, कुछ रहा, कुछ टल गया वह तो शरीर और वाणी परद्रव्याश्रित है। वह स्वद्रव्याश्रित नहीं है। और '**परद्रव्य का आप कर्ता है नहीं;...**' परद्रव्य कर्ता कभी हो सकता है? रजकण मैंने छोड़े,

मैंने रखा। क्या तेरे में थे? तु उसका स्वामी है कि उसको छोडे या रखे? समझ में आया? बाह्य व्रत है, अव्रत आदि है उसके जो निमित्त के आचरण होते हैं न शरीर के? वह शरीरादि परद्रव्याश्रित है।

'**परद्रव्य का आप कर्ता है नहीं; इसलिये उसमें कर्तृत्वबुद्धि भी नहीं करना और वहाँ ममत्व भी नहीं करना।**' मैंने इस देह का त्याग किया, इस चीज़ का त्याग किया, मैंने ग्रहण किया वह कर्तृत्व भी छोड़ और ममत्व भी छोड़। '**तथा व्रतादिकमें ग्रहण–त्यागरूप अपना शुभोपयोग हो, वह अपने आश्रित है,...**' इतनी बात है। इतनी बात लाये कि जो भी बाह्य पदार्थ पाप के निमित्त हैं उसको छोड़ता है, उसमें जो शुभभाव है न शुभभाव? वह तेरे में है। वह तेरी क्रिया है। जड़ की क्रिया तेरी नहीं है। छोडी, रखी, रही और गई वह तेरी क्रिया नहीं है, जड़ की है। समझ में आया? शान्ति से स्वाध्याय करना नहीं, वाँचन करना नहीं। अपने लिये क्या सत्य है उसका विचार नहीं करना, क्या करे? ऐसे ही वस्तु मिल जाये ऐसी है?

कहते हैं कि '**व्रतादिक में...**' व्रत लिया, नियम लिया, अभिग्रह लिया, आज मुझे इसका उपयोग करना है, इसका उपयोग नहीं करना है, आदि। उसमें '**ग्रहण–त्यागरूप अपना शुभोपयोग हो, वह अपने आश्रित है,...**' शुभोपयोग अपने आश्रित है। यहाँ अभी यह लेना है। समझ में आया? '**उसका आप कर्ता है;...**' कर्ता अर्थात् परिणमन है। परिणमन उसका है। राग का परिणाम जीव का है, कर्तृत्व जीव का धर्म है। राग का परिणमन वह कर्तृत्व जीव का धर्म अर्थात् धारण की हुई क्रिया है। वह उसकी क्रिया है। शरीर, वाणी, मन को ऐसा हुआ... ऐसा हुआ... ऐसा लगा शरीर में। नीचे जीव हो तो पैर ऊँचा किया। मैंने किया। मूढ है? वह तो जड़ की क्रिया है। मैंने शरीर ऐसे बराबर रखा। पैर ऐसे रखा। ऐसा होता है न? पैर की ऐडी। नीचे मकोड़ा तो ऐसा रखे। शास्त्र में ऐसा बहुत आता है। समझ में आया? चरणानुयोग में ऐसा आता है। पैर की एडी ऐसे रखना, ऐसे रखना, बीचमें से जीव बच जाये। कहते हैं कि उसमें यह पैर ऐसे हुआ वह मैंने किया और ऐसे टेढा रखा वह मैंने ऐसा किया तो वह जीव बच गया, वह मान्यता छोड दे। वह क्रिया तेरी नहीं है। उसमें जो राग की मन्दता का भाव हुआ वह शुभोपयोग है। वह तेरे आश्रय से है। समझ में आया?

ये सब इकट्ठे हो तो कुछ मेल नहीं रहे। वह उस ओर खींचे और यह इस ओर खींचे। आया है न अभी? भेलसा कहा था न? पत्र आया है। अगले साल भेलसा

गये थे न? सब पंडित इकट्ठे हुए थे। इस बार भी मंगवाते है। एक महिना-देढ महिना साथ में है ने क्लास। पंडित इकट्ठे होओ, भाषण करो। सब को बुलाया है।.. दूसरे को भी हमने आमंत्रण दिया है। .. फूलचन्दजी और बाकी सब..

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- ना। ना। वह नहीं। भेलसा में है। .. तो उस तरफ रहा। वह तो पुष्कर बाजु.. वह तो (संवत) २०१६ के वर्ष में। यह तो २०१७ वीं साल में गये थे न, फूलचन्दजी आदि सब गये थे। लक्ष्मीचन्द सेठ है न? भेलसा के है। वहाँ से फिर गुना आये थे। वह अगले साल की बात है। वह उसके आगे वर्ष की बात है। समझ में आया? इन सब को बुलाते हैं। कब जाना है आप को? वह डोक्टर कहता है, खटिये पर सोते रहो। ऐसा कहता है न? लोंग माँगते है कि आपके कोई हुशियार पंडित हो उसको हमारे पास भेजो। ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? वह पत्र किसीका आया है न? आप को नहीं पता। कोई सुबह में बात करता था। हिंमतभाई सुबह बात करते थे। पत्र आया है भेलसा से। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि शुभभाव हुआ, उस दया के भाव में वह तेरे आश्रित हुआ है। परन्तु यह शरीर ऊँचा-नीचा रहा कि यह है वह मेरा कार्य और मैं उसका कर्ता हूँ। मूढ हो, मिथ्यादृष्टि हो। वह तो अजीव की क्रिया, अजीव की पर्याय का स्वामी हुआ। अजीव को जीव माना।

'**शुभोपयोग हो, वह अपना आश्रित है, उसके आप कर्ता है; इसलिये उसमें कर्तृत्वबुद्धि भी मानना...**' परिणमन है न? ऐसा यहाँ सिद्ध करना है न? राग का परिणमन उसका है न? कर्तृत्वबुद्धि अर्थात् ज्ञान में बराबर जानना। शुभोपयोग मेरा परिणमन है, मेरे में है ऐसा उसको जानना चाहिये। '**और वहाँ ममत्व भी करना।**' मम अर्थात् वह मेरे में है ऐसा जानना। पुद्गल से हुआ है और जड़ से शुभोपयोग हुआ है ऐसा नहीं है।

'**परन्तु...**' अब आया। '**इस शुभोपयोग को बन्ध का ही कारण जानना,...**' बन्ध का ही कारण जानना। यह तो धर्मी की बात करते हैं। शुभपोयगो जो होता है दया का या त्याग या अमुक का, ये संथारा ग्रहण किया या यह ग्रहण किया ऐसा कहते हैं न, मैंने यह व्रत ग्रहण किया? अंश में भी सँवर नहीं है और अंश निर्जरा भी नहीं है। वह सब लम्बा चलेगा, अभी आता है। शुभोपयोग पुण्य है। दया का भाव, पर को नहीं मारने का भाव आदि '**बन्ध का ही कारण जानना,...**'

उसको बन्ध का ही कारण जानना। उसको मोक्ष का कारण नहीं जानना।

'**परन्तु मोक्ष का कारण नहीं जानना।**' देखो! अस्ति-नास्ति की। यहाँ तो अस्ति-नास्ति की है। ऐसा नहीं किया है कि कथंचित् शुभोपयोग बन्ध का कारण, कथंचित् शुभोपयोग मोक्ष का कारण। अनेकान्त ऐसे लगाते हैं। कौन जाने क्या हो गया है? आकाश फटा है आकाश बड़ा। कौन दे सकता है? सेठिया! लोग माँगते है कि हमारे यहाँ कोई उपदेशक आने चाहिये, फलाने आने चाहिये। सब कहते हैं कि हमें हमारा करना है। वह कहते हैं कि आना चाहिये। सेठ जैसे होंशियार हो तो बहुत काम करे कि नहीं? क्यों हिंमतभाई! वह कहते हैं कि हमें अपना करना है।

दो बात करी कि शरीराश्रित जो त्याग-ग्रहण परमाणु का मन्दपना होना, छूटना, आना वह तो सारी जड़ की क्रिया है। उस जड़ की क्रिया का कर्ता नहीं मानना और ममता नहीं करनी कि वह मेरे में है और मैं था तो यह हुआ, मैं था तो यह हुआ। वह तो जड़ के कारण होता है। हाँ, उस समय तुम्हें दया का शुभभाव हो तो वह शुभोपयोग है। कोई आहार छोड़ने का, कोई उपवास का, इत्यादि समझे न? आज उपवास किया है। आज खाना खाया नहीं। परन्तु खाने की क्रिया कहाँ तेरी थी? वह तो जड़ की है। खाना नहीं हुआ और पेट मन्द रहा वह तो जड़ की पर्याय हुई है। उसमें शुभोपयोग रहा उतना तेरा है। उसमें ममत्व करना कि मेरे में है। परन्तु मानना उस शुभोपयोग को बन्ध का कारण। समझ में आया?

'**शुभोपयोग को बन्ध का ही कारण जानना, मोक्ष का कारण नहीं जानना, क्योंकि बन्ध और मोक्षके तो प्रतिपक्षपना है;...**' लो! कितनी अच्छी बात कही है। बन्ध और मोक्ष तो विपक्ष है, दो दरवाजे हैं दरवाजे। झांपो समझते हो? बाडा होता है न उसमें दरवाजा (होता है), दरवाजा। दो दरवाजें भिन्न है। उस तरफ बाग में जाने का दरवाजा अलग है और उसके घर में आने के दो दरवाजे अलग होते हैं। यह बन्ध का दरवाजा, बन्ध का भाव और मोक्ष का भाव, दोनों बिलकुल प्रतिपक्ष है। '**इसलिये एक ही भाव पुण्यबन्धका भी कारण हो और मोक्षका भी कारण हो – ऐसा मानना भ्रम है।**' शुभ दया का भाव अभिग्रह में कुछ विकल्प उठे शुभ का भाव, तप का भाव, उस शुभभाव में.. एक ही भाव पुण्यबन्ध का भी कारण हो और सँवर-निर्जरा भी मोक्ष का कारण है। ऐसा। मोक्ष का कारण अर्थात् सँवर-निर्जरा भी हो, ऐसा मानना वह भ्रम है। लो! मोक्ष का भी कारण हो, ऐसा कहा न? कारण अर्थात् संवर-निर्जरा। शुभोपयोग से थोड़ी संवर-निर्जरा होती है। है

कि नहीं? उसमें तो है ही। धर्म है वहाँ पुण्य है ही। ऐसा कहते हैं कि नहीं? धर्म है वहाँ पुण्य है ही। पुण्य है वहाँ थोड़ी निर्जरा है ही।

श्रोता :- पुण्य हो वहाँ निर्जरा हो या आत्मा की शुद्धि हो...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह पुण्य हो वहाँ निर्जरा धर्म (होना मानते हैं)।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री:- नहीं। धर्म बिना पुण्य होता ही नहीं ऐसा कहते है। एकेन्द्रिय में कहाँ से? एकेन्द्रियवाले पुण्यभाव से तो बाहर आते हैं। धर्म तो है नहीं कोई निगोद में। निर्जरा होती है। अशुभ की निर्जरा कहा है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- धर्म कहाँ रहा?

एक ही पुण्यभाव-शुभभाव को बन्ध का भी कारण मानना और मोक्ष का कारण मानना, वह सब भ्रम है। तो क्या है? धर्म क्या है? वह बात करते हैं।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.-२४८८, चैत्र वद ३, रविवार, दि.२२-४-१९६२
अधिकार - ७, प्रवचन नं.-२३

पृष्ठ-२६०। सातवाँ अधिकार, मोक्षमार्गप्रकाशक। '**जैन मतानुयायी मिथ्यादृष्टि का स्वरूप...**' जैन संप्रदाय में गर्भ से, पहले से जन्म होने पर भी उसको निश्चयनय क्या और व्यवहारनय क्या, उसकी सन्धि का भान नहीं है और व्यवहार का विषय जो अन्दर-शुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम आये उसको मोक्ष का कारण मान ले और निर्जरा माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

आखिर में यह कहा, देखो! '**एक ही भाव पुण्यबन्ध का भी कारण हो और मोक्ष का भी कारण हो - ऐसा मानना भ्रम है।**' उपर से ८वीं पंक्ति।

आत्मा में जितना अंतर शुद्ध चैतन्यस्वभाव है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और निर्विकल्प रमणता हुई उतना तो अंतर में सच्चा निश्चयमोक्षमार्ग है। परन्तु उसके साथ में जितना शुभोपयोग हो--व्रत का, अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य का भाव, व्रत का, वह शुभोपयोग है। वह शुभोपयोग पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु वह शुभोपयोग पुण्यबन्ध का भी कारण हो और संवर-निर्जरा का भी कारण हो ऐसा मानना भ्रमणा और अज्ञान है। कहो, समझ में आया? वह आखरी बात आयी है। एक ही भाव में दो फल आये ऐसा नहीं हो सकता।

अव्रत के भाव वह पाप है और व्रत का भाव वह पुण्य है। संवर-निर्जरा नहीं है। पंच महाव्रत हो, अहिंसा आदि हो, अट्ठाईस मूलगुण हो या श्रावक के बारह व्रत हो अथवा ग्यारह पडिमा का विकल्प हो श्रावक का, वह सब पुण्यबन्धन का कारण है, शुभोपयोग है। उससे पुण्यबन्ध भी हो, उससे मोक्षमार्ग अर्थात् संवर-निर्जरा भी हो ऐसा कभी बन सकता नहीं। जैन में जन्मे हो फिर भी इसप्रकार मानते हो वह जैन नहीं है, उसको मिथ्यादृष्टि कहने में आता है।

'**इसलिये व्रत-अव्रत दोनों विकल्परहित जहाँ परद्रव्य के ग्रहण-त्याग का कुछ प्रयोजन नहीं है...**' परन्तु व्रत वह शुभ परिणाम है, शुभोपयोग है और अव्रत वह अशुभोपयोग है। उन दोनों रागरहित, दोनों के रागरहित '**जहाँ परद्रव्य के ग्रहण-त्याग का कुछ प्रयोजन नहीं है...**' अव्रत के परिणाम में ऐसा ग्रहण करुँ, व्रत के परिणाम में ऐसा त्याग करुँ, पर की हिंसा छोडुं आदि विकल्प, वह सब पुण्यबन्ध का कारण, उससे रहित आत्मा में ग्रहण-त्याग ... ज्ञाता-दृष्टापना, शुद्ध चैतन्य की परिणति ज्ञाता-दृष्टापने ग्रहण, पर का ग्रहण-त्याग रहित जितनी शुद्ध परिणति रहे उसको मोक्षमार्ग कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

'**जहाँ परद्रव्य के ग्रहण-त्याग...**' अर्थात्? हिंसा न करुं और दया पालुँ अथवा अहिंसा करुं ऐसा भाव या हिंसा न करुं ऐसा भाव, दोनों विकल्प और राग है। जूठ बोलने का भाव राग, जूठ नहीं बोलने का, सत्य बोलने का भाव भी राग है। पाँचों महाव्रत के परिणाम राग, उससे रहित पर के ग्रहण-त्याग रहित चीज अंतरदृष्टि में शुद्ध परिणति ज्ञाता-दृष्टा के भान सहित स्थिरता राग रहित की वर्ते, उसको मोक्ष का कारणरूप मार्ग कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

'**ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग वही मोक्षमार्ग है।**' उदासीन वीतराग ज्ञाता-दृष्टापने का, पुण्य-पाप के राग की वृत्ति, वासना बिना का, केवल चैतन्यस्वभाव, जानन

और देखन शक्ति को प्रगट करने के लिए ज्ञाता-दृष्टापने का प्रयत्न जितना स्थिररूप है, उतना ही वीतराग शुद्धोपयोग है, वही मोक्षमार्ग है, वह एक ही मोक्षमार्ग है। बीच में व्रतादि के परिणाम आये वह मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया? वर्तमान में सभी यही मानते हैं। बहुत लोग कहते हैं कि व्रत का पालन करना वही धर्म है, व्रत का पालन वह संवर और निर्जरा है। सेठ! कहते हैं न? मालचन्दजी! तुम्हारे उस तरफ तो बहुत चलता है। यही बात है।

बस, भाई! अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह पंच महाव्रत पालो, बस! वह धर्म हो गया, वह अध्यात्म धर्म है। अब ऐसा चला है। अब अध्यात्म भाषा आई है। वह अध्यात्म है। क्योंकि निवृत्ति है। परन्तु निवृत्ति तो पाप से निवृत्ति का परिणाम, परन्तु पुण्य की तो प्रवृत्ति के परिणाम वह है। समझ में आया? वह अध्यात्म कहते हैं कितने ही लोग। जैनदर्शन अध्यात्म मार्ग है। उसके साधु अध्यात्म साधते है। क्या अध्यात्म साधते हैं? हिंसा, जूठ, चोरी के परिणाम छोड़कर अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य के परिणाम हो वह अध्यात्म परिणाम है। अध्यात्म नहीं है। वह तो पुण्य परिणाम है। पंच महाव्रत के भाव भी विकल्प का उत्थान, राग का भाग है। वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। परन्तु नीचे वह आये बिना रहता नहीं। वह मोक्षमार्ग नहीं है। पंच महाव्रत के परिणाम संवर-निर्जरा नहीं है। पंच महाव्रत के परिणाम आस्रव के भाव है। उसको कोई धर्म और संवर माने तो वह जैन नहीं परन्तु मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया?

'**नीचली दशा में...**' '**शुद्धोपयोग वही मोक्षमार्ग है।**' आत्मा में परद्रव्य के ग्रहण-त्याग रहित उदासीन जितनी अंतर ज्ञाता-दृष्टा की दशा हो, उतनी अकषाय परिणति, वीतराग उपयोग वह एक ही मोक्षमार्ग है। '**नीचली दशा में कितने ही जीवों के शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का युक्तपना पाया जाता है;...**' नीचली दशा में चोथे गुणस्थान में, पाँचवे आदि मुनि को शुद्धोपयोग नाम अंतर आत्मा में शुद्ध परिणति वीतराग दशा भी होती है और उसके साथ पंच महाव्रत आदि या बारह व्रत के शुभराग ज्ञश उपयोगभाव भी शुभ होता है। समझ में आया?

'**इसलिये उपचार से व्रतादिक शुभोपयोग को मोक्षमार्ग कहा है;...**' देखो! शुद्ध आत्मा की, निर्विकल्प आत्मा की श्रद्धा, स्वसवेंदनज्ञान का ज्ञानवेदन और उस ज्ञानस्वरूप में रमणता की लीनता, वह एक ही शुद्ध परिणति एक ही मोक्ष का मार्ग है। परन्तु नीचली दशा में शुद्ध परिणति के साथ पंच महाव्रतादि के शुभोपयोगरूप परिणाम

भी होते हैं। समझ में आया? इसलिये उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा। लो! उपचार कहा। शुभोपयोग पंच महाव्रत का, मुनि के अट्ठाईस मूलगुण, दिगम्बर मुनि के अट्ठाईस प्रकार के विकल्प, वह सब आस्रभाव है, शुभोपयोग है। परन्तु अंतर शुभोपयोग के अभावस्वभावरूप चैतन्य की अनुभव की दृष्टि, ज्ञान, रमणता वर्तती है इसलिये उस शुभोपयोग को उपचार से मोक्षमार्ग कहा। वह निश्चय से मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भी शुभोपयोग मोक्ष का मार्ग नहीं है। बहुत सूक्ष्म।

परन्तु '**वस्तु का विचार करनेपर...**' वस्तु का विचार करे तो '**शुभोपयोग मोक्षका घातक ही है;...**' पंच महाव्रत के परिणाम वह वृत्ति का उत्थान है। उसको न मारुं, उसको दुःख न दुँ, सत्य बोलुं, ब्रह्मचर्य पालुँ वह सब राग की वृत्ति है। वह राग मोक्ष का घातक है। बहुत कठिन। पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का मुनि का राग और बारह व्रत के परिणाम श्रावक के या ग्यारह पडिमा का विकल्प दर्शन पडिमा, व्रत पडिमा, सामायिक पडिमा, प्रौषध पडिमा का जो विकल्प उठे शुभराग, वह सब मोक्ष का घातक है। उसके बिना होता है? उसके बिना ही शुद्ध परिणति होती है। बहुत कठीन बात। जगत इसमें अटक गया। अभी तो दृष्टि मिथ्यात्व है, शुभ परिणाम करे और धर्म माने। भक्ति, पूजा, यात्रा, दान, दया, पंच महाव्रत आदि शुभ परिणाम है, वह धर्म नहीं है। वह धर्म का घातक परिणाम है। बहुत कठिन लगे जगत को।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- .. होता होगा? बात तो ढिंढोरा पीटकर बाहर आयी है। इसमें कुछ गुप्त नहीं है।

परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा, वह शुभ और अशुभ विकल्प और पुण्य-पाप के भाव से रहित है। उसको अन्दर में अंतर्मुख होकर दृष्टि, ज्ञान और रमणता हो, वह एक ही मोक्षमार्ग है। परन्तु नीचली दशा में केवल शुद्ध परिणति पूर्ण नहीं हो सकती। इसलिये शुद्ध परिणति के काल में उसको दया, दान, व्रत के शुभ परिणाम हो उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहने में आता है। उपचार से अर्थात् मोक्षमार्ग नहीं है। परन्तु उसे उपचार से कहना अर्थात् वह मोक्षमार्ग का घातक है। मोक्षमार्ग का घातक है उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहना, व्यवहार के कथन ही ऐसे हैं। आहाहा..! देखो न कितना स्पष्ट है! उपचार तो उसके लिये कहा। समझ में आया?

श्रोता :- संवर-निर्जरा...

पूज्य गुरुदेवश्री :- संवर-निर्जरा कहो या मोक्षमार्ग का घातक कहो, एक ही हुआ। क्या हुआ? क्या कहा देखो न। मोक्ष का घातक का अर्थ मोक्ष के परिणाम का घातक, कारण का। ठीक प्रश्न किया। ऐसा कहते हैं कि मोक्ष का घातक है परन्तु संवर-निर्जरा का घातक है? वह मोक्ष के मार्ग का घातक है। इसलिये मोक्ष का ही घातक है। व्यवहारमोक्षमार्ग वह बन्ध का ही कारण है। वह मोक्ष का कारण नहीं है। क्या करे? पूरा बदल गया है। अभी प्ररूपणा, कथन (ऐसा ही चलता है कि), ये सब व्रत पालो, व्रत पालो तो धर्म होगा, तो संवर-निर्जरा होगी, और धीरे-धीरे मोक्ष होगा। तीन काल में नहीं होगा। व्रत के परिणाम अज्ञानी को सच्चे होते नहीं। परन्तु ज्ञानी को भी व्रत के परिणाम जो आते हैं, वह मोक्षमार्ग का घातक है। समझ में आया?

इस प्रकार जो बन्ध का कारण है... देखो! जिसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा था। सम्यग्दृष्टि को आत्मा के वेदन के भान में स्थिर नहीं रह सकता, इसलिये ऐसे पंच महाव्रतादि के या बारह व्रत के या भक्ति का भाव आता है, परन्तु वह उपचार से मोक्षमार्ग कहा, वह मोक्षमार्ग का घातक है। दूसरी तरह से कहे तो वह बन्ध का कारण है। वह बन्ध का ही कारण है। '**वह ही मोक्षका घातक है...**' जो बन्ध का कारण है वह मोक्ष के मार्ग का, मोक्ष का घातक है। मार्ग कहा था न इसलिये यह कहा। मोक्ष का घातक क्यों कहा? कि उपचार से मोक्षमार्ग कहा था न? मोक्षमार्ग। राग को, शुभोपयोग को मोक्षमार्ग कहा था। अर्थात् मोक्ष का कारण। उससे मोक्ष होता है ऐसा कहा था, उपचार से। इसलिये उसको कहा कि मोक्ष का घातक है। समझ में आया? जिसको व्यवहार से मोक्षमार्ग (कहा था), व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान और पंच महाव्रत के परिणाम वह तो रागभाग है, उसको जो मोक्षमार्ग का उपचार आया था, तो कहते हैं कि नहीं, जो मोक्ष का कारण कहा था, वही मोक्ष का घातक है, वही मोक्ष का घातक है, वही बन्ध कारण है ऐसा सिद्ध किया। वह बन्ध का ही कारण है। समझ में आया?

यह तो कितने साल पहले हो गया है मोक्षमार्गप्रकाशक। टोडरमल ने हज़ारों शास्त्रों में से सन्धि सर्वज्ञ के शास्त्र में आचार्यों ने, कुन्दकुन्दाचार्य, पूज्यपादस्वामी, समंतभद्राचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, नेमिचन्द सिद्धांतचक्रवर्ती आदि महामुनियों, धर्मात्मा जिन्होंने वास्तविक तत्त्व को प्रसिद्ध किया है उसकी यहाँ सन्धि की है। कहीं उसको 'समाधि सुदाणं सम्मते' पंचास्तिकाय में आया है। धर्मास्ति आदि की श्रद्धा वह समकित है, शास्त्र

का ज्ञान वह ज्ञान है, छह काय की दया वह चारित्र है ऐसा जो कहने में आया हो तो कहते हैं कि निश्चय से यह बात सत्य नहीं है। आहाहा..!

तब वह कहते हैं कि आप्त के वचन में मोक्षमार्ग कहा है और टोडरमलने ऐसा क्यों कहाँ? टोडरमलने आप्त के वाक्य का विवेक किया है कि व्यवहार अभूतार्थ है। आप्तने ११वीं गाथा में कहा था कि व्यवहार अभूतार्थ है। जहाँ पराश्रित कथन करने में आये और शुभराग में मोक्षमार्ग स्थापित करे, वह व्यवहार अभूतार्थ है। इसलिये उसका मेल करके बात करते हैं। समझ में आया? ओहोहो..! घर की बात एक भी नहीं है। मूल बात की खबर नहीं। व्यवहार अभूतार्थ जैनदर्शन सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ के मर्म में यह बात आयी, वह बात भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ११वीं में प्रसिद्ध की। कहो, समझ में आया? एक ही गाथा का स्पर्श सब जगह है। व्यवहार अभूतार्थ, असत्यार्थ। व्यवहार सब असत्य बात को करता है। जैसा है वैसा वह कहता नहीं। इसलिये जिस शास्त्र में, जैन शास्त्र में भी व्यवहार को मोक्षमार्ग कहा हो तो अभूतार्थ दृष्टि से कहा है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कोई घर की बात नहीं कही। तब कहते हैं, उन्होंने कहा है न? कहा है न, कहा है न। वह किस नय का कथन है? निश्चय का कथन है? छह द्रव्य की श्रद्धा करना सो समकित, वह निश्चय का कथन है? निश्चय तो स्वआश्रय आत्मा को श्रद्धे वह सम्यग्दर्शन है।

श्रोता :- ऐसा कहने में आता है न कि दान, पूजा...

पूज्य गुरुदेवश्री :- दान और पूजा वह शुभभाव है, दान और पूजा वह शुभभाव है। वह परम्परा अर्थात् उसको छोड़कर स्थिर होगा तब मुक्ति होगी। समझ में आया? वह तो पंचास्तिकाय में नहीं कहा है? दुरतरम्। पाठ में दूरतर कहा है, बाद में अमृतचन्द्राचार्य ने 'परंपरा' अर्थ किया है। दूरतर अर्थात् शुभ परिणामवाले को अभी मोक्ष दूर है। क्योंकि शुभ छोड़कर स्थिर होगा तब होगा। उसका अर्थ किया अमृतचन्द्राचार्यने टिका में कि यह परम्परा मोक्ष का कारण है। अर्थात् इसको छोड़कर आगे शुद्ध में जायेगा तब मोक्ष होगा। दूरतर का अर्थ ऐसा किया। बराबर किया है। उसमे क्या है? आहाहा..! आचार्यों ने तो बहुत स्पष्ट हथेली में आँवला दिखे ऐसे बताया है। हथेली में आँवला दिखे ऐसे। आमळा समझते है? आमळा नहीं होता है? हथेली में आँवला ऐसे हमारे यहाँ कहते हैं। हाथ में आँवला बताया है। देख ले तु, ऐसा करके।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। यह तो प्रत्यक्ष आँवला दिखाया। देख लो भाई। न दिखे तो हाथ ऐसा हो, ऐसा हो। हाथ में आँवला है न? नीचे रखा हो तो स्वयं को ऐसा-ऐसा करना पडे। हाथ में हो तो.. जिस तरफ प्रकाश पड़े, उसे बराबर दिखे। ऐसा प्रत्यक्ष है। ऐसे आचार्योंने निश्चय और व्यवहार की सन्धि का न्याय महासन्त दिगम्बर मुनियों ने यथार्थ वस्तु का वर्णन किया है। उसमें कहीं कोई फेरफार एक अक्षर का भी नहीं है। उसको समझने में फेर पड़े वह पड़े। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि जो भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप सिद्ध स्वरूप है, वह निर्विकल्प और पुण्य-पाप के भावरहित है। उसका भान करके अन्दर स्थिर हो उसको मोक्षमार्ग कहने में आता है। उसके साथ में जितना शुभोपयोग होता है वह मोक्षमार्ग का घातक है। बन्ध का कारण वही मोक्ष का घातक है ऐसा श्रद्धान करना। ऐसा श्रद्धान करना। बहुत कठिन जगत को। है न उसमें?

'**ऐसा श्रद्धान करना।**' भगवान आत्मा वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा, जैन परमेश्वर ने जिस आत्मा का वीतरागी विज्ञानघन स्वभाव बताया ऐसे वीतरागी विज्ञानघन में अनुभव करके स्थिर होना, यह एक ही मोक्षमार्ग है। बीच में पंच महाव्रतादि का भाव आये, मोक्ष का घातक, बन्ध का कारण है ऐसी श्रद्धा करनी। उसमें अल्प भी संवर-निर्जरा होगी ऐसा मानना नहीं।

श्रोता :- अपने देश में नहीं होता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- दूसरे देशमें होता होगा कहीं? आटे की जगह धूल की सुखडी होती होगी? दूसरे देश में होती होगी कहीं? सुखडी समझते हो न? सुखडी में तीन चीजें होती हैं। आटा, घी और शक्कर या गुड़। तीन के सिवा दूसरी चीज होती है? शक्कर निकालकर कोई चिरोडी डाले? आटा निकालकर कोई धूल डाले? और घी निकालकर कोई पानी डाले? पानी कहा मैंने लो न। उसकी कोई सुखडी बनती होगी? सुखड़ी तो आटा, घी और गुड़-शक्कर उसकी सुखडी बनती है। दूसरी चीज से सुखडी नहीं बनती। हिन्दी में क्या कहते हैं? पकवान? सुखडी नहीं बनाते गुड की? बिछाकर करते है न? मीठाई। मीठाई तीन चीज की बनती होगी या चौथी कोई आती होगी उसमें? तीन के बदले दूसरी वस्तुएँ डालते होंगे, एक लाख वर्ष पहले? और बाद में महाविदेह में सर्वत्र सुखडी इन तीन चीजों से बनती है। इसमें दूसरी कोई चीज होती नहीं।

ऐसे तीनों काल में 'एक होय त्रण काळमां परमार्थनो पंथ' त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञदेव जैन परमेश्वरने जो तीन काल तीन लोक देखे और जानकर कहा, उसमें आत्मा

में अशुभभाव अव्रत के हो तो पाप है और शुभभाव व्रत के हो तो पुण्य है। दो से रहित आत्मा का अनुभव और स्थिरता करे तो धर्म और मोक्षमार्ग है। समझ में आया? दीपचन्दजी! क्या है? बहुत लोग तो कहते हैं, अरेरे..! एकान्त हो जाता है एकान्त। अपने जैनदर्शन का स्याद्वाद है, अनेकान्त है। कुछ तो थोड़ी छूट दो। कौन दे?

'**वस्तु विचार करनेपर...**'। ऐसा कहा है न? '**वस्तु विचार करनेपर...**' वस्तु का स्वभाव और विभाव देखनेपर, वह शुभोपयोग दया, दान का, पंच महाव्रत का, मोक्ष का घातक है। वस्तु विचार करनेपर ऐसा कहा है। '**वस्तु विचार करनेपर शुभोपयोग मोक्षका घातक ही है;...**' घातक ही है, घातक ही है। अर्थात् घातक-धात को करनेवाला।

श्रोता :- .. नक्की है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नक्की एक ही है। दो होते हैं? एक है। और मोक्षमार्ग नहीं और मोक्ष का घातक है।

'**क्योंकि बन्ध का कारण वह ही मोक्षका घातक है - ऐसा श्रद्धान करना।**' ऐसी श्रद्धा के बिना दूसरी श्रद्धा करेगा तो मर जायेगा। चोर्यासी के अवतार में भटकेगा। व्रत, दया और दान पाले तो भी। श्रद्धा जिसकी ऊलटी उसका मूल ऊलटा, मूल ऊलटा उसकी फसल सब ऊलटी होती है। फाल समझते हो? फसल होती है न? वृक्ष होते हैं। जैसा मूल हो वैसा वृक्ष होता है कि नहीं? अन्दर आम हो तो ऊपर कोई निबौली पक़ती होगी निबौली? और नीचे निबौली का बीज हो तो ऊपर आम पकता है? ऐसे जैसा उसका बीज वैसा उसका फल।

ऐसे, श्रद्धाशक्ति का सत्य बीज उसके फल में भी स्वरूप में रमणता करने से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। परन्तु मिथ्याश्रद्धा रखेगा तो उसकी शक्ति में निगोद में जाने की ताकात है। फिर व्रत-ब्रत पालता हो तो भले इस भव में कदाचित् स्वर्ग में एकाद जाये। बाद में नर्क में जायेगा मनुष्य होकर, पशु होकर क्रम से निगोद की गति को प्राप्त करेगा। क्योंकि श्रद्धा शक्ति का विरोध है। यथार्थ श्रद्धाशक्ति किसको कहना उसका उसे भान नहीं है। समझ में आया?

'**शुद्धोपयोग ही को उपादेय मानकर उसका उपाय करना,...**' शुद्धोपयोग आत्मा में शुद्धता में रमणता उसको ही उपादेय मानकर। देखो! उपादेय अर्थात् आदरणीय। आदरणीय अर्थात् उसमें एकाकार होना। उसका उपाय करना। शुद्धोपयोग का उपाय करना अन्दर

में ज्ञाता-दृष्टा में रमणता में उपाय करना। '**और शुभोपयोग-अशुभोपयोगको हेय जानकर...**' शुभ अर्थात् व्रतादि के परिणाम, अशुभ अर्थात् हिंसादि के परिणाम हेय, दोनों को हेय जानना। उसको उपादेय, इसको हेय। हेय जानना अर्थात् उसका आदर नहीं करना। आदर नहीं करना अर्थात् अपने स्वरूप में उसकी एकता करना नहीं। समझ में आया?

'**उनके त्यागका उपाय करना।**' उसको उपादेय मानकर उसका उपाय करना, इसको हेय जानकर उसके त्याग का उपाय करना। लो! शुभ-अशुभोपयोग के अभाव का उपाय करना और शुद्ध के उपयोग का उपाय करना। समझ में आया? त्याग अर्थात् शुभ परिणाम होता है, होता है, परन्तु वह आदरणीय नहीं है, उसमें एकाकार होने जेसा नहीं। एकाकार तो चैतन्य के अंतर स्वभाव में होने जेसा है। इस प्रकार शुद्ध का उपाय करना। परन्तु अशुभ को हेय जानकर अभाव करने का उपाय करना। उसका अभाव करने का उपाय करना। परन्तु उससे मोक्षमार्ग होगा ऐसा भाव करके बैठे नहीं रहना। वह श्रद्धा विपरीत है। कहो, समझ में आया?

'**जहाँ शुद्धोपयोग न हो सके...**' अन्दर शुद्ध का श्रद्धा-ज्ञान होने पर भी शुद्ध ही मोक्ष का मार्ग है, शुभोपयोग हो वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। ऐसा श्रद्धा-ज्ञान में आने पर भी '**जहाँ शुद्धोपयोग न हो सके...**' अंतर में रमणता-एकाकार न हो सके '**वहाँ अशुभोपयोग को छोड़कर शुभमें ही प्रवर्तन करना,...**' वहाँ अशुभ परिणाम को छोड़कर। कथनपद्धति तो ऐसे ही आये न? और शुभोपयोग में प्रवर्तन करना।

'**क्योंकि शुभोपयोग की अपेक्षा अशुभोपयोग में अशुद्धता की अधिकता है।**' शुभ परिणाम में राग की मन्दता, दया, दान, कषाय मन्द उससे अशुभोपयोग हिंसा, असत्य, तृष्णा, ममता के परिणाम में अशुद्धता की विशेषता है। अशुभ में अशुद्धता ज्यादा है। शुभ में अशुद्धता थोड़ी है। है तो दोनों अशुद्ध। ओहोहो..! समझ में आया? अभी तो ऐसा कहते हैं कि चौथे से छठवें गुणस्थान तक शुभोपयोग है। इसलिये शुभोपयोग में देखो समकितदर्शन और संवर-निर्जरा आ गये। देखो, ऐसा कहते हैं। आहाहा..! वह तो उपयोग का प्रकार करके गुणस्थान के भेद उपयोग की अपेक्षा से कहे, उसमें उसके कारण संवर-निर्जरा होती है ऐसा कहाँ कहा है? समझ में आया?

ज्ञान चैतन्य की जात केवल निष्क्रिय चैतन्यबिम्ब प्रभु, उसको अन्तर में ग्रहण किये बिना तेरे व्रतादि के परिणाम सब व्यर्थ हैं, वह बन्ध का कारण है, संसार में भटकने

का कारण है। स्वर्ग-बर्ग मिलेगा फिर मरकर चार गति में भटकेगा। 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो, फिर पीछो पटक्यो।' ऐसा आता है सज्झाय में। इसमें आता है न? जैसे 'मुनिव्रत धार अनंतबैर ग्रैवेयक उपजायो।' अनुत बार मुनिदशा अंगीकार करके मिथ्यादृष्टि श्रद्धा में भूल (करके), पुण्य की क्रिया दया, दान की क्रिया में धर्म मानकर अनंत बार जैन का साधु होकर ऊपर गया, अनंत बार। 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो, फिर पीछो पटक्यो।' चार सज्झायमाला है, उसमें आता है। सज्झाय माला चार है। सम्यग्दर्शन बिना आत्मा और विकार के भेदज्ञान की श्रद्धा बिना, ऐसा द्रव्यसंयम पंच महाव्रतादि पाले, उसको लेकर नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार गया परन्तु फिर पीछो पटक्यो। वहाँ से निकलकर चार गति में पड़ा। समझ में आया?

इसलिये '**शुभोपयोग-अशुभोपयोग हेय जानकर...**' शुद्धोपयोग की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता में प्रवर्तन करना। '**क्योंकि शुभोपयोगकी अपेक्षा अशुभोपयोग में अशुद्धताकी अधिकता है। तथा शुद्धोपयोग हो तब तो परद्रव्य का साक्षीभूत ही रहता है,...**' ग्रहण-त्याग कुछ है नहीं। उसमें ग्रहण-त्याग का विकल्प है। अव्रत में ग्रहण का हिंसादि का, उसमें त्याग का। व्रत में हिंसा छोडुँ आदि। '**शुद्धोपयोग हो तब तो परद्रव्य का साक्षीभूत ही रहता है,...**' अर्थात् वहाँ तो परद्रव्य का कोई प्रयोजन ही नहीं है। परद्रव्य के सामने लक्ष्य ही नहीं है। केवल चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द की मूर्ति प्रभु, उसमें एकाकार होकर शुद्धोपयोग अंतर में जमा, उसको तो परद्रव्य की हिंसा छोडुँ, दया पालुँ, असत्य छोडुँ, सत्य बोलुँ ऐसा कुछ नहीं है। वह तो विकल्परहित दशा है। कहो, समझ में आया?

'**शुभोपयोग हो वहाँ बाह्य व्रतादिक की प्रवृत्ति होती है,...**' देखो! व्रतादि देह की क्रिया की बात करते हैं। जहाँ आत्मा में शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान हो और शुभोपयोग हो, वहाँ बाह्य व्रतादिक की प्रवृत्ति देह में देह से कोई जीव मरे ऐसी प्रवृत्ति उसकी नहीं होती। जीव की दया आदि की प्रवृत्ति शरीर में उस तरह की प्रवृत्ति होती है। शरीर के कारण से हाँ! निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की बात है। '**शुभोपयोग हो वहाँ बाह्य व्रतादिक की...**' व्रत, यात्रा, भक्ति, पूजा आदि की देह में प्रवृत्ति होती है देह के कारण से। अशुभोपयोग हो तो बाह्य अव्रतादिक की प्रवृत्ति होती है। अन्दर अशुभ अव्रत पाप के परिणाम हो तो अव्रत, हिंसा, असत्य आदि की बाह्य देह की क्रिया में भी ऐसा निमित्तपना भजता है। जड़ के कारण जड़ में भजता है।

'**क्योंकि अशुभोपयोगके...**' सुधारा है न? पहले अशुभोपयोग। '**अशुभोपयोगके**

और परद्रव्य की प्रवृत्तिके निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पाया जाता है।' क्या कहते हैं? शुभभाव व्रत का, अशुभभाव अव्रत का, वह परिणाम उसको और देह की क्रिया में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। शुभभाव हो तो व्रत की क्रिया देह में होती है, अशुभ हो तो अव्रत आदि की क्रिया होती है। अशुद्ध उपयोग--शुभ और अशुभ दोनों मिलकर अशुद्ध, उसको और परद्रव्य की प्रवृत्ति देहादिक की, उसको निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। हिंसा का भाव छोड़ा उसको भाषा में ऐसा न आये कि हिंसा करने जैसी है। ऐसा आये? पर्याय का ऐसा दोनों का जड़ का और शुभराग का सम्बन्ध है। देह से विषय की अशुभ वासना गयी, शुभ हुई तो देह से भी विषय की क्रिया हो ऐसा बने नहीं। और ब्रह्मचर्य का शुभभाव हुआ तो विषय की वासना नहीं होती, अशुभभाव हो तो देह की क्रिया में विषय आदि की प्रवृत्ति होती है। और शुभभाव हो तो दया आदि की प्रवृत्ति देह में दिखती है। ऐसे अशुद्ध उपयोग को और शुभ-अशुभभाव को--दोनों को अशुद्ध कहते हैं। दोनों की प्रवृत्ति को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। समझ में आया?

'**निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पाया जाता है।**' निमित्त जब शुभ-अशुभ परिणाम का हो, तब जड़ में भी उस प्रकार की प्रवृत्ति की नैमित्तिक क्रिया जड़ में होती है। कहो, समझ में आया? परन्तु परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा में नहीं है। परन्तु परिणाम के समय में ऐसी प्रवृत्ति सहजरूप से देह में होती है। '**तथा पहले अशुभोपयोग छूटकर...**' सम्यग्दर्शन हुआ फिर भी पहले अशुभोपयोग छूटकर '**शुभोपयोग हो, फिर शुभोपयोग छूटकर शुद्धोपयोग हो - ऐसी क्रम परिपाटी है।**' आत्मा की श्रद्धा, पुण्य-पापरहित शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव एक स्वभाव आत्मा (है), ऐसा भान और प्रतीति हो फिर भी पहले अशुभोपयोग को छोड़कर शुभ में आये, बाद में क्रम से शुभ को छोड़कर अर्थात् शुद्ध में आये तब शुभ छूट जाये। वह तो कथनशैली की पद्धति ऐसी ही चले। समझ में आया? क्या है यह सब? बफम जैसा लगे। ऐय..! रिखवदास! क्या हुआ? .. याद आया। अरे..! क्या हो? यह वस्तु क्या है वह सुनने मिले नहीं, उसका मिलान करे नहीं, इसलिये मनुष्य को धड़कन बढ़ जाये धड़कन।

वीतराग त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर, अनंत काल में जो सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया, वह सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो? और उसकी श्रद्धा पहली सच्ची कैसे हो? उसकी बात कर रहे हैं। पहली श्रद्धा में ही घोटाला हो कि यह शुभ से धर्म होगा, पुण्य से धर्म होगा, व्रत से धर्म होगा, संवर-निर्जरा होगी, उसकी श्रद्धा ही जूठी है। उसको

सम्यग्दर्शन कभी होता नहीं तीन काल में तीन लोक में। भगवान के पास जाये समवसरण में तो भी नहीं होगा। समझ में आया?

'**तथा पहले अशुभोपयोग छूटकर शुभोपयोग हो,...**' ऐसे अव्रत को छोड़कर व्रत के परिणाम मुनि को पहले आते हैं, बाद में शुभ छोड़कर शुद्धोपयोग होता है। '**ऐसी क्रमपरिपाटी है।**' लो! ऐसा क्रम है एक के बाद एक होने का। इतनी बात वहाँ रखी।

अब, शुभ को शुद्धोपयोग का कारण माने उसकी थोड़ी बात छंछेडते हैं। '**तथा कोई ऐसा माने कि शुभोपयोग है सो शुद्धोपयोग का कारण है।**' ऐसा कितने ही लोग कहते हैं। भाई! शुभ करो। करते–करते शुद्ध होगा। शुभ कारण और शुद्ध कार्य। डुंगळी खाये... डुंगळी को क्या कहते हैं? प्याज। प्याज कहते हैं न? प्याज खाये और कस्तुरी का डकार आता है।

श्रोता :– कोई देश में आता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :– कोई देश में यह तो न आये, परन्तु इसमें आये कोई देश में। शुभोपयोग से शुद्ध हो ऐसी मान्यता।

'**कोई ऐसा माने कि शुभोपयोग है...**' राग की मन्दता, दया, दान, व्रत, परिणाम, भक्ति, पूजा '**सो शुद्धोपयोग का कारण है।**' वह अंतर के निर्मल परिणाम, निर्मल वीतरागी (भाव) होने का शुभोपयोग रागभाव वह कारण है, ऐसा कोई मानते हैं। वह बात असत्य है। वह बात समझाते हैं। समझ में आया? भाई! शुभ करो, शुभ करो, एक बार बाद में शुद्ध होगा। शुभ करते नहीं हो उसको शुद्ध कहाँ से होगा? कहते है कि नहीं? जूठ है। शुभ तो राग है। रागमें से अराग परिणाम कहाँ से आयेगा? बिलकुल नहीं आये।

'**सो जैसे अशुभोपयोग छूटकर शुभोपयोग होता है,...**' देखो! क्या कहते हैं? जैसे अशुभ हिंसा, असत्य, चोरी, विषय के परिणाम छूटकर, छूटकर शुभोपयोग होता है। उसपर वज़न है। अशुभ परिणाम हिंसा, असत्य, चोरी, विषय के छूटकर और शुभोपयोग होता है। अशुभ के कारण से शुभ होता है? अशुभ कारण और शुभ कार्य। ऐसा है? अशुभोपयोग छूटकर हिंसा के, जूठ के, चोरी, विषय, राग, तीव्रता छूटकर शुभ होता है। '**वैसे शुभोपयोग छूटकर शुद्धोपयोग होता है।**' वैसे शुभोपयोग छूटकर शुद्धोपयोग होता है। '**ऐसा ही कार्यकारणपना हो, तो शुभोपयोग का कारण अशुभोपयोग ठहरे।**' वह तो छूटकर होता है। फिर भी उसको कोई कहे कि अशुभ कारण, शुभ

कार्य, ऐसे शुभ कारण, शुद्ध कार्य। ऐसा है नहीं। तब तो अशुभोपयोग भी शुभोपयोग का कारण ठहरे। क्योंकि अशुभ छूटकर शुभ होता है न? तो यदि अशुभ कारण (कहो), यदि शुभ छूटकर शुद्ध होता हो और शुभ को कारण कहो और शुद्ध को कार्य कहो, तो अशुभ छूटकर शुभ हुआ। अशुभ को कारण कहो और शुभ को कार्य कहो। ऐसा तो बनता नहीं। अशुभ पाप कारण और शुभ पुण्य उसका कार्य, ऐसा हो सकता नहीं। समझ में आया?

'**ऐसा ही कार्यकारणपना हो,...**' वज़न तो यहाँ से 'छूटकर' है। फिर भी यदि उसको तु कारण-कार्य लागु कर '**तो शुभोपयोग का कारण अशुभोपयोग ठहरे।**' ऐसा। शुभ छूटकर शुद्ध होता है, उस अपेक्षा से शुभ को कारण और शुद्ध को कार्य कहे, तो अशुभ छूटकर शुभ होता है, तो अशुभ को भी कारण कहने में आये। '**अशुभोपयोग ठहरे।**' ऐसा कहते है न यहाँ तो? परन्तु ऐसा तो है नहीं। हिंसा का परिणाम कारण और दया के परिणाम कार्य, ऐसा होगा? कहो, समझ में आया? एक तो यह बात सिद्ध की। इसलिये शुभ परिणाम वह शुद्ध का कारण है, ऐसा कहते हो सो उचित नहीं है। क्योंकि यदि ऐसा हो तो अशुभ छूटकर शुभ होता हो तो अशुभ कारण और शुभ कार्य ठहरे। उसको भी कार्य-कारण ठहरे। शुभ का अशुभ भी कारण, शुभभाव का अशुभभाव भी कारण ठहरे। परन्तु ऐसा तो बनता नहीं। तो ऐसा बनता नहीं। शुभ छूटकर शुद्ध हो तो, शुभ कारण और शुद्ध कार्य ऐसा भी बने नहीं। समझ में आया?

बात को कितनी स्पष्ट की है, कितनी सादी भाषा में। अभी तो यह हिन्दी सादी भाषा में आ गया है, गुजराती हो गये हैं, अनेक हजार मोक्षमार्गप्रकाशक छप गये हैं। वाँचन करने का समय नहीं, निवृत्ति नहीं है, अपना आग्रह माना है, अपनी कल्पना का आग्रह हो वैसी बात आये तो सत्य, दूसरी बात निकले तो नहीं। स्वयं की बात तो सत्य मानकर बैठ गया, अब? हो जूठी, अयथार्थ तत्त्व को यथार्थ मानता हो। अब वह कुछ भी परढे तो उसमें दूसरा कुछ बैठे नहीं, आग्रह है इसलिये।

एक बात यह कही कि कारण-कार्य यदि आप ठहराओ, शुभोपयोग को कारण और शुद्ध को कार्य ठहराओ तो अशुभ को कारण और शुभ को कार्य ठहराना पड़ेगा। ऐसा तो बने नहीं। तो शुभ कारण और शुद्ध कार्य ऐसा भी बने नहीं। ऐसा सिद्ध किया। बाद में उपचार से बात करेंगे।

'**द्रव्यलिंगीके शुभोपयोग तो उत्कृष्ट होता है,...**' देखो, यह सिद्धांत रखा। नवमी

ग्रैवेयक दिगम्बर जैन मुनि (बनकर) अनंत बार हुआ। अनंत बार एक-एक महिने का पारना। जंगल में वनवासी, शरीर जीर्ण हो जाये। दूसरे देवलोक से इन्द्राणी आये तो चलित न हो। उसके लिए आहार-पानी का एक कण भी पानी का बिन्दु बनाकर दे तो ले नहीं। क्योंकि वह एकेन्द्रिय जीव है पानी। उसके लिये करके दे तो हिंसा है। वह आहार ले नहीं। ऐसी जिसकी दया, ऐसा जिसका ब्रह्मचर्य, ऐसी जिसकी क्रोध की मन्दता, माया, कपट नहीं ऐसे '**द्रव्यलिंगीके शुभोपयोग तो उत्कृष्ट होता है,...**' नौंवी ग्रैवेयक जाये उसको तो शुभोपयोग तो बहुत ऊँचा होता है। समझ में आया? दुर्गादासजी! अन्तिम ग्रैवेयक तक जाते हैं न जैन साधु होकर? अन्यमति ऊपर नहीं जा सकते। जैन का साधु ऐसी क्रियाकांड (करे), ऐसी शुक्ललेश्या हो कि शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो क्रोध न करे।

श्रोता :- उसके संप्रदाय के साधु जाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- एक ही संप्रदाय के जाये, दिगम्बर मुनि हो वही ऊपर जा सकते हैं, बाकी कोई न जा सके। उसको ही द्रव्यलिंगी कहते हैं, अन्य को द्रव्यलिंगी कहते नहीं। वस्तु ऐसी है। कठिन लगेगी। आज आये हैं दूसरे श्वेताम्बर। समझ में आया? कठिन लगे ऐसा है।

वास्तव में द्रव्यलिंगी तो उसको कहते हैं,... परन्तु प्रभु! कठिन तो पड़े ऐसा है, क्या करें? वस्त्र, पात्र रखे वह तो द्रव्यलिंगी साधु भी नहीं है। जैनदर्शन के मार्ग में, परन्तु जिसको द्रव्यलिंगी नग्नपना हो, उत्कृष्ट शुभभाव हो, शुक्ललेश्या हो, नौंवी ग्रैवेयक जाये। तो शुभोपयोग से यदि शुद्ध होता हो तो ऐसा शुभोपयोग तो अनंत बार नौंवी ग्रैवेयक गया तब हुआ है। श्रद्धा में बैठना कठिन लगे। जीव को पूरा बदल देना, जीव को बदल देना। आहाहा..!

भगवान आत्मा... धैर्य से देख। भाई! यह कोई पक्ष की बात नहीं है। यह तो वस्तु विचार की बात है। ऊपर आया था न? वस्तुविचार से देखें तो। वस्तु का ऐसा स्वभाव है। अब दूसरा पुकार करे तो करो तो परन्तु वस्तु में दूसरा कुछ नहीं है उसमें क्या करना? समझ में आया? भगवान आत्मा.. ऐसा कोई कहे कि शुभ करते-करते शुभ कारण से धर्म की शुद्धता होगी। तो शुभोपयोग तो नौंवी ग्रैवेयक द्रव्यलिंगी जैन साधु होकर अनंत बार गया है। उसके जैसा शुभोपयोग तो वर्तमान में तो किसी को होता नहीं, वर्तमान में तो किसीको नहीं होता। क्योंकि वर्तमान में नौंवी ग्रैवेयक जाये ऐसी स्थिति है नहीं। समझ में आया?

'**द्रव्यलिंगीके शुभोपयोग तो उत्कृष्ट होता है,...**' बहुत ऊँचा होता है। '**तो शुभोपयोग तो होता ही नहीं;...**' तो शुद्ध परिणति सम्यग्दर्शन की परिणति भी नहीं है। यदि शुभ से शुद्ध होता हो तब तो श्रद्धा महा जूठी है। इसलिये शुभोपयोग कारण नहीं है। शुद्धता होने में शुभोपयोग कारण नहीं है। शुभ की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि और स्थिरता करे वह कारण––द्रव्यकारण है। आहाहा..! बहुत बात ऐसी...! समझ में आया?

'**इसलिये परमार्थ से इनके कारण–कार्यपना है नहीं।**' यथार्थपने तो व्यवहार कारण और निश्चय कार्य अथवा शुभोपयोग कारण और निश्चय कार्य ऐसा होता नहीं। वह तो उसका अर्थ यह हुआ कि व्यवहार कारण और निश्चय कार्य यह भी होता नहीं। वह उसके अन्दर आ गया। व्यवहाररत्नत्रय कारण और निश्चयरत्नत्रय कार्य वह वास्तव में नहीं है। समझ में आया? सत्य को सत्य की तरह खड़ा रख, तेरे घर की मिलावट न कर। घर की मिलावट करेगा तो मर जायेगा। वीतराग मार्ग है यह, यह कोई पोपाबाई के राज नहीं है कि दूसरा माने और मना दे और चले ऐसा मार्ग नहीं है।

भगवान आत्मा सर्वज्ञ वीतराग हुए, वे अन्दर सर्वज्ञ वीतरागता अंतर में पड़ी उसमें से प्रगट की है। कहीं पुण्य–पाप के भाव के आश्रय से प्रगट नहीं की है। समझ में आया? सत्य को सत्य रखे, सत्य को सत्यरूप से श्रद्धा में खड़ रखे, फिर तो बहुत असत् नीकल जाये। समझ में आया? ऐसे विपरीत अभिप्राय बना रखे हो अन्दर से, ऐसा लगे कि यह असत्य लगता है। व्यवहारकारण को कारण ही नहीं कहते हैं। निश्चय स्वतंत्र कार्य है। व्यवहार था तो निश्चय हुआ? ना। तब तो अशुभ था और शुभ हुआ ऐसा कहो तुम। समझ में आया? उसकी ना कहे कि, नहीं। विषयसेवन के भाव थे तो ब्रह्मचर्य का भाव आया, उसके कारण से। ऐसा होगा? ऐसा नही बनता, परन्तु शुभभाव हो तो शुद्ध हो ऐसा बने। विपरीत मान्यता उसमें हो गयी। शुभ तो नौंवी ग्रैवेयक गये तब तो बड़ा ऊँचा था। उसको शुभ से शुद्ध हुआ नहीं। कहो, समझ में आया? थोड़ा शान्ति से (समझना)। बापु! ऐसा मनुष्यदेह है। देह छूट जायेगा, कोई ठिकाना नहीं रहेगा। आहाहा..! कहीं शरण नहीं है। बहुत को रखा होगा, बहुत को खुश रखा होगा, उससे बहुत लोग खुश हुए होंगे। उससे आत्मा में कुछ है नहीं। असत्य श्रद्धा से बहुत लोगों को खुश रखा। हाँ, बराबर है आप की बात, आप की बात बराबर है। वह उसको कहे कि,, वाह! वाह! आप बराबर माननेवाले हो।

श्रोता :- श्रावक तो ऐसे होते हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसे श्रावक होते हैं मख्खन लगानेवाले? श्रावक कैसे कहे उसको? श्रावक कौन कहे उसको? वास्तविक आत्मा उसका शुद्ध, शुभ और अशुभ उपयोग, इन चारों की विवेकता जिसको प्रगट हुई हो। श्रवण करके विवेकता प्रगट हुई हो उसको श्रावक कहते हैं। बाड़े के श्रावक, श्रावक ही (नहीं है)। चिरायता के बारदान में भरे चिरायता और ऊपर लिखे शक्कर, इससे कहीं चिरायता मिट जाये? शक्कर नाम लिखे तो? क्यों दुर्गादासजी! नहीं? नाम लिखे तो?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- निकले क्या, धूल में। बारदान खोले तब शान्ति होवे थोड़ी देर शक्कर है.. शक्कर है.. खोलते हैं। और शाहुकार हो और लिखे कि आपने दिवाला निकाला। तो दिवाला निकल जाता होगा? एक बार सेठ का दृष्टान्त नहीं दिया था? उसके मामा के पास बहुत पैसे थे। उसको दूसरा कोई कहे कि ओहो..! मोहनलाल सेठने दिवाला निकाला, मोहनलाल सेठने दिवाला निकाला। दिवार पर लिखा। वह कहता है, मेरी सीढी पर आकर लिख दे। मुझे मालूम है मेरे पास कितने है वह। मेरे पैसे कोई ले नहीं गया है। तुम लिखकर जाओ, पूरी दिवार पर लिख दे।

श्रोता :- भरोसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- भरोसा है न! मालूम है कि मेरे पास इतनी पुंजी है। आप लिखो कि मोहनलाल सेठने दिवाला निकाला। कोई बात नहीं। दिवाला निकाला। आहाहा..!

श्रोता :- कर्ज ही न हो उसको...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहा न, वही कहते हैं। देनेवाला निकले तो लेनेवाला निकले। कोई देनेवाला नहीं है, कोई लेनेवाला नहीं है यहाँ तो। वह बात कही थी शेठी ने एक बार। समझ में आया? ऊपर लिखे कि इसने इतना दिवाला निकाला। कोई हरकत नहीं। हमको हमारी खबर है कि हम कितनी पुंजीवाले है। एक चाबी मेरे पास है और एक गुप्त सँभालकर रखी है। तिजोरी में सब पड़ा है। ऐसे कोई असत्य को सत्य मनावे तो सत्य हो नहीं जाता और सत्य को कोई असत्य कहे तो सत्य, असत्य हो नहीं जाता, वह तो जो है वह रहेगा। वस्तु तो जो है वह रहेगी।

ऐसे कोई शुभोपयोग से शुद्धता मनाये तो चलेगा नहीं। दिवाला निकालेगा। फिर तो अशुभोपयोग से शुभोपयोग ऐसा कारण-कार्य लगा दे कि अशुभ परिणाम कारण है और शुभ कार्य है। नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। वह ऐसा नहीं तो वह एक सीढ़ी

निकाल दे, वह फिसलनेवाली सीढ़ी है। शुभोपयोग को कारण मानना और (शुद्ध को) कार्य (मानना)। तब तो वहीं कारण में पड़ा रहेगा। परन्तु उसकी रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि, दृष्टि और स्थिरता करेगा तो कार्य प्रगट होगा। उसके बिना प्रगटेगा होगा नहीं। समझ में आया?

'**इसलिये परमार्थ से इनके कारण-कार्यपना है नहीं।**' लो! वास्तव में तो नहीं है।

श्रोता :- वास्तविकता में...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वास्तविक है।

'**जैसे रोगी को बहुत रोग था, पश्चात अल्प रोग रहा।**' रहा, हाँ! रहा लिखा है न? अल्प रोग हुआ ऐसा लिखा है। रहा है, सुधारा है। पाँच डिग्री बुखार हुआ हो। उसमें ९९ रह जाय ९९। '**तो वह अल्परोग तो निरोग होने का कारण है नहीं।**' ९९ डिग्री निरोग होने का कारण है? फिर भी लोग ऐसा कहे कि कैसा है भाई? कल से अच्छा है। कल तक पाँच था, आज ९९ है, अच्छा है, ऐसा कहे। परन्तु वह रोग निरोग होन का कारण है ९९? '**तो वह अल्परोग तो निरोग होने का कारण है नहीं। इतना है कि अल्प रोग रहने पर निरोग होने का उपाय करे तो हो जाये;...**' ९९ आया हो और उसका उपाय बैद आदि का लागु पड़े और मिटने का हो तो मिट जाये। मिटने का हो तो मिट जाये हाँ! यह तो सिद्धान्त के लिये दृष्टान्त देना है न। ९९ का ९९ हमेशा रहे, छ महिने का बाद यहाँ जिथरी आना पड़े, फोटो लेने के लिए। ६ महिने से (बुखार है)।

श्रोता :- आपके दर्शन का भी लाभ मिले न।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हमारे यहाँ ऐसे बहुत आते हैं। यहाँ जिथरी है न? डेढ फलाँग कहते है न? फलाँग नहीं, डेढ माईल। बारह फलाँग। बहुत आते हैं। क्यों आये थे? शरीर में कुछ है? छ महिने से सूक्ष्म-सूक्ष्म बुखार, सूक्ष्म-सूक्ष्म बुखार रहा करता है। वह भी चार बजे के बाद रहता है। चार बजे के बाद सूक्ष्म-सूक्ष्म (रहता है), इसलिये शंका हुई है तो फोटो लेने आये है यहाँ। उसमें फेफडे में थोड़े-थोड़े छेद दिखे तो डोक्टर कहे कि यहाँ खटिये पर सो जाओ। एक पलंग खाली है यहाँ सो जाओ। अभी पहले नम्बर पर है, आगे दूसरे, तीसरे स्टेज में नहीं गया है, अन्यथा (दवाई) लागू नहीं होगी।

ऐसे ९९ (डिग्री बुखार) लम्बा काल चले तो क्षय लागू हो जाये। ऐसे शुभराग में लम्बा काल रहे तो उसकी रुचि में मिथ्यात्व का क्षय लागु पड़ा है उसको। शुभ

को अच्छा मानता है, शुभभाव को (अच्छा मानता है), उसको क्षय लागू पड़ा है। समझ में आया? ऐसा न कहे ९९.. वह तो निकाल दे तो अच्छा है। युवान लड़के होते हैं २५–२५ साल के हाँ! वहाँ युवान ही अधिकतर क्षय में आते हैं। कोई–कोई (वृद्ध होंगे)। वरना तो कोई २०, कोई २५, स्त्रियाँ, लड़कियाँ। ओहोहो..! वहाँ देखो तो पिंजरापोल हो। खटिये पर पड़े होते हैं, कोई ऐसा करता हो.. कोई ऐसा करता हो। देह का रोग, वह थोड़ा रोग भी निकाले नहीं तो उसको क्षय लागू हो जाये।

ऐसे शुभ परिणाम पुण्य को धर्म जानकर रहे, परन्तु यह निकाल देने योग्य है, उससे धर्म नहीं है, ऐसा न माने तो उसको मिथ्यात्व का, ऊल्टी मान्यता का क्षय लागु पड़ा है। ज्ञानी के पास उसका फोटो निकालना चाहिये कि ये क्या है? हमारी श्रद्धा सच्ची क्यों नहीं होती है? समझ में आया? बहुत कठिन बात जगत को। तुम्हारी पालिताणा की यात्रा हो गई, जाओ धर्म हो गया। यहाँ कहते हैं कि हराम धर्म हो तो। सम्मेदशिखर की यात्रा। आता है न तुम्हारे में आता है न? 'एक बार वन्दे जो कोई।'

श्रोता :- नरक–पशु न होय।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नरक–पशु न हो उसमें क्या हो गया?

श्रोता :- नीचे आये तब मोक्ष होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- मोक्ष होगा, हो गया। लाख बार सम्मेदशिखर जाये तो भी वह तो शुभभाव है। परद्रव्य ओर के लक्ष्यवाला शुभभाव तीन काल में संवर, निर्जरा और मोक्षमार्ग होता नहीं। सम्मेदशिखर से होता नहीं और सिद्धगीरी से भी होता नहीं। आहाहा..! जगत को बहुत कठिन लगे।

साक्षात् समवसरण में त्रिलोकनाथ विराजते हैं महाविदेह क्षेत्र में, अभी सीमन्धर प्रभु। करोड़ पूर्व का आयुष्य और पाँचसौ धनुष का देह। यहाँ भगवान विराजते हो उनके समवसरण में बैठा हो, फिर भी पर के लक्ष्य से और पर की श्रद्धा के भाव से कल्याण हो वह तीन काल में होता नहीं। भगवान के समवसरण में गया न? गया तो क्या है? भगवान ठीक है, सच्चे हैं, परन्तु भगवान कहते हैं कि मेरा लक्ष्य छोड़कर अंतर की दृष्टि कर तो तुझे सम्यक् होगा। ऐसा भगवान कहते थे वह तो माना नहीं। वह तो भगवान की कृपा और भगवान को मिले, अपना (कल्याण हो गया)। समवसरण में गये इसलिये समकित होगा ही। एक जन ऐसा कहता था बहुत

साल पहले। समवसरण में जाये उसे समकित होता ही है। अरे..! समवसरण में मिथ्यादृष्टि होते हैं, सुन न! इतना होता है कि उसको तीव्र मिथ्यात्व नहीं होता। क्योंकि अन्दर प्रवेश किया है न, इतनी योग्यता लेकर गया है। भगवान को जूठा ठहराना ऐसी कोई बात उसको नहीं होती। परन्तु अन्दर अगृहीत मिथ्यात्व, भगवान के समवसरण में अगृहीत (होता है), वह विकल्प शुभराग को धर्म माने, उसको करते-करते होगा ऐसी मान्यतावाले भी भगवान के समवरण में बैठे होते हैं। इसलिये समवसरण से आत्मा को लाभ हो जाये ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

हाँ, '**इतना है कि अल्प रोग रहनेपर निरोग होनेका उपाय करे तो हो जाये; परन्तु यदि अल्प रोगको ही भला जानकर उसको रखनेका यत्न करे...**' चलो भाई! ९९ परन्तु लोगों को शंका है क्षय है। देखो! सब पूछने आयेंगे। बाद में क्षय में मख्खन खिलायेंगे। क्षयवाले को मक्खन देते हैं। घी का खाखरा दे, मक्खन दे, भैंस का दूध दे उसको। इसलिये रोग अच्छा होगा? तो रोग को रखना? '**तो निरोग कैसे हो?**' '**अल्प रोगको ही भला जानकर उसको रखने का यत्न करे तो निरोग कैसे हो?**' कभी निरोग होता नहीं।

'**उसी प्रकार कषायीके तीव्रकषायरूप अशुभयोग था,...**' तीव्र कषायरूप हिंसा, जूठ अशुभ था। '**पश्चात् मन्दकषायरूप शुभोपयोग हुआ...**' अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, यात्राभाव। '**तो वह शुभोपयोग तो निःकषाय शुद्धोपयोग होनेका कारण है नहीं।**' शुभोपयोग जो पुण्य के परिणाम हैं, वह अकषाय शुद्धोपयोग होने का कारण नहीं है। '**इतना है कि शुभोपयोग होने पर शुद्धोपयोग का यत्न करे तो हो जाये;...**' लो! शुभोपयोग के काल में उसको छोड़कर स्वरूप में स्थिर होने का प्रयत्न करे तो हो जाये। बाकी शुभ के कारण शुद्ध होता है ऐसा बनता नहीं। विशेष बात करेंगे...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.–२४८८, चैत्र वद ४, सोमवार, दि.२३–४–१९६२
अधिकार – ७, प्रवचन नं.–२४

मोक्षमार्ग प्रकाशक शास्त्र है, सातवाँ अध्याय। '**जैन मतानुयायी मिथ्यादृष्टि का स्वरूप**' यहाँ शुभोपयोग की बात आई। क्या आया देखो। रोग का दृष्टान्त दिया न? '**जैसे रोगी को बहोत रोग था, पश्चात् अल्प रोग रहा, तो वह अल्प रोग तो निरोग होनेका कारण है नहीं।**' किसी को बहुत रोग हो और उसमें से अल्प रोग हो जाये, वह अल्प रोग कोई निरोगता का कारण नहीं है। '**उसी प्रकार कषायीके तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था,...**' तीव्र कषायरूप हिंसा, जूठ, मिथ्यात्व भाव आदि महा अशुभ था। '**पश्चात् मन्दकषायरूप शुभोपयोग हुआ...**' उसमें–से पीछे से राग की मन्दता, लोभ की मन्दता ऐसा उसको शुभोपयोग हो, होता है '**तो वह शुभोपयोग तो निःकषाय शुद्धोपयोग होने का कारण है नहीं।**' जैसे अल्प रोग निरोगता का कारण नहीं है। रोग टले तब निरोगता होती है। अल्प रोग है वह निरोगता का कारण है? ऐसे शुभोपयोग आत्मा में दया, भक्ति, पूजा, कषाय मन्द भाव वह कहीं निःकषाय ऐसा आत्मा के शुद्धोपयोग का कारण नहीं। उस निरोगता कारण अल्प रोग नहीं है। ऐसे शुभराग दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, जात्रा ऐसा शुभराग कहीं निरोगता–आत्मा की निःकषाय शुद्धोपयोग दशा उसका कारण कोई शुभोपयोग होता नहीं है। कहो, समझ में आया?

हाँ, उसमें आया था न? कि अल्प रोग हो और रोग मिटाने का उपाय करे, निरोग होना का, तो वहाँ उपाय करने से होता है। ऐसे यहाँ, इतना है कि शुभोपयोग होने से राग की, लोभ की मन्दता––पतलापन ऐसा दया, दान, भक्ति, पूजा, विनय, विवेक, व्यवहार ऐसा शुभभाव होनेपर '**शुद्धोपयोगका यत्न करे तो हो जाये;...**' उसको छोड़कर आत्मा के आनन्द के शुद्धोपयोगरूपी आचरण का भाव करना चाहे तो होता है। वह शुभोपयोग छोड़े तो। शुभोपयोग छोड़े तो शुद्धोपयोग हो। अल्प रोग मिटने का उपाय करे तो निरोगता होती है। अल्प रोग मिटने का उपाय करे तो निरोगता होती है। ऐसे शुभोपयोग मिटने का उपाय करे तो शुद्धोपयोग होता है। कहो, समझ में आया?

रात्री को दृष्टान्त नहीं दिया था? '**अल्प रोग तो निरोग होने का कारण है**

नहीं। इतना है कि अल्परोग रहने पर निरोग होने का उपाय करो तो हो जाये; परन्तु यदि अल्प रोगको ही भला जानकर उसको रखने का यत्न करे तो निरोग कैसे हो?' ऐसे कषाय की मन्दता, पुण्यभाव, शुभोपयोग उसको टालकर शुद्धोपयोग का यदि यत्न करे, चैतन्य का ज्ञान, आनन्द, शुद्ध आचरण अन्तर में एकाकार होने का उपयोग करे तो हो जाये। परन्तु वह शुभोपयोग को छोड़कर यत्न करे तो होता है। अशुभोपयोग को छोड़कर शुद्धोपयोग होता नहीं इतनी बात सिद्ध करने को कही है। समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- प्रयत्न शुद्धोपयोग का करे तो हो। मन्द भाव के काल में नहीं।

श्रोता :- वह छूट गया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसको छोड़कर, हो गया। अर्थात् वह काल गया। समझ में आया?

'**शुभोपयोग होने पर शुद्धोपयोग का यत्न करे तो...**' शुद्धोपयोग का यत्न करे '**तो शुद्धोपयोग...**' ज्ञान, दर्शन और आनन्द का आचरणरूप उपयोग होता है। '**परन्तु यदि शुभोपयोग को ही भला जानकर...**' देखो! अब आया। मगनभाई! रोग ही अच्छा है। ९९ रोग अच्छा.. ९९ रोग अच्छा है। क्षय लागू हो जायेगा। '**परन्तु यदि शुभोपयोग को ही भला जानकर...**' वह है इसलिये यह होगा, वह है इसलिये यह होगा। तो उसको उसने भला जाना। राग की मन्दता, कषाय का पतलापना ऐसा शुभ पुण्य का भाव शुभोपयोग हो, उस समय शुद्धोपयोग उस (शुभभाव को) छोड़कर तो (हो)। दो प्रयत्न साथ में चलता है? शुभ का भी चले और शुद्ध का भी चले? परन्तु शुभोपयोग होने से शुद्धोपयोग का जो यत्न करे तो हो जाये। '**परन्तु यदि शुभोपयोग को ही भला जानकर...**' वह कारण है, वह साधन है, वह भला है, उससे होगा ऐसे उसमें लगा रहे तो उसका अर्थ भला हुआ न?

श्रोता :- पहले मन्द कषाय होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- मन्द कषाय होता है इतना, परन्तु मन्द कषाय का भाव छोड़कर शुद्धोपयोग करे तो हो। उसके पहले तीव्र कषाय नहीं होता इतनी बात बतानी है। और यदि उसको वह भला जाने, भला जाने तो वहाँ रुचि हो गयी। उसका साधन साधता रहेगा मरते दम तक, आखिर तक। कषाय मन्द साधो, कषाय मन्द करो... कषाय मन्द करो... कषाय मन्द करो... भक्ति करो, यात्रा करो, पूजा करो, दया करो,

दान (करो), वह तो शुभोपयोग है, पुण्य है। भला जानकर उस ही में उपयोग करता रहेगा, '**उसका ही साधन किया करे तो शुद्धोपयोग कैसे हो?**' उसका ही साधन किया करे। उसका ही। शुभोपयोग के जात का कषाय मन्द का साधन किया करे तो '**शुद्धोपयोग कैसे हो?**' कहो, कितनी स्पष्ट बात तो है! समझ में आया? लोगों को बाहर की बात ऐसी बैठ गई है न। और प्ररुपक भी ऐसे उनको मिले। जो कुँए में हो ऐसा उबारे में आये और वह पीए। कुँए के पानी उबारे में आता है और वह पीता है। ऐसे उपदेशक भी ऐसे। 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवडां, भावधर्म रुचि हीण उपदेशक पण तेहवा शुं करे जीव नवीन?' करो यह... करो यह... करो यह... भक्ति करो, ९९ यात्रा करो, पूजा करो, गिरनार की यात्रा करो, शेत्रुंजय की यात्रा करो, आप का कल्याण होगा। समझ में आया? वह शुभोपयोग है, पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु उसको छोड़कर शुद्धोपयोग का यत्न करे तो होना सम्भव है। शुद्ध का प्रयत्न करे तो। समझ में आया? और वह धर्म है। शुभोपयोग स्वयं धर्म नहीं है और धर्म का निश्चय से कारण भी नहीं है, निश्चय से साधन भी नहीं है। इसलिये कहा न, देखो न! '**शुभोपयोग को ही भला जानकर उसका साधन किया करे...**' उसमें ही लगा रहे। राग की मन्दता भक्ति, पूजा, दान, दया, व्रत पालो, आचरण करो, यह करो.. यह करो.. यात्रा करो, शेत्रुंजय की यात्रा करो, सम्मेदशिखर की करो, गीरनार की करो, पूरे हिन्दुस्तान के तीर्थस्थलोंकी करो, कल्याण हो जायेगा।

श्रोता :- हम लोगों ने तो की है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- करी वह तो शुभभाव था। करी उसमें क्या है?

श्रोता :- .. आशा तो बन्धती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आशा धूल की भी बन्धती नहीं। शुद्ध का यत्न करे तो। आशा क्या बन्धे? शुभोपयोग हो तो आशा बन्धे? वह तो कारण हुआ। अनंत बार ऐसा शुभोपयोग किया, पहले तो बात कह गये हैं। ऐसा शुभोपयोग नौंवी ग्रैवेयक द्रव्यलिंगी गया अनंत बार, उसको शुभोपयोग उत्कृष्ट था। फिर भी शुद्ध हुआ नहीं। शुद्ध की आशा हुई नहीं। समझ में आया? बहुत शल्य पड़े हैं, ऐसी विपरीतता है कि अन्दर से उसको हाँ कहने में पसीना आ जाये। परन्तु वह शुभ हो तो शुद्ध होता है न? शुभ के काल में शुद्ध होता है न? शुभ हुआ उसमें उसका छोड़कर अंतर में चैतन्य का शुद्ध निरूपयोग निर्विकल्प उपयोग करना चाहे, यत्न करे तो होता है। परन्तु तीव्र कषाय हो और वहाँ शुद्धोपयोग का प्रयत्न करे, ऐसा हो सकता नहीं। समझ में आया?

परन्तु जो जीव वहाँ उसको भला जाने (कि) बस! वह साधन है, साधन है, करो साधन। साधन होगा तो साध्य होगा, साधन होगा तो साध्य हो जायेगा। ऐसा जानकर शुभोपयोग का साधन किया करे तो शुद्धोपयोग कहाँ से होगा? उसमें से हटकर आत्मा शुद्ध चिदानन्द का निर्विकल्प उपयोग, शुद्ध आचरण का आनन्द का उपयोग उसको होता नहीं। कहो, समझ में आया?

दूसरा। '**मिथ्यादृष्टि का शुभोपयोग...**' जिसकी दृष्टि मिथ्या है उसको राग की मन्दता का शुभोपयोग हो, उसको होता है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- होता है उसकी बात है यहाँ। नहीं की कहाँ है? पढ़ो तो सही। '**शुभोपयोग तो शुद्धोपयोग का कारण है नहीं;...**' शुभोपयोग है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसको तो कहाँ थी? दृष्टि जूठी है। वह तो पुण्य के परिणाम को ही धर्म मानकर उसके ही कारण में पड़ा है, निमित्त के कारण में पड़ा है, देहादि की क्रिया मेरे आश्रय से होती है ऐसी बहिर्बुद्धि... बहिर्बुद्धि... बहिर्बुद्धि... वीर्य का पूरा वेग बाहर जाता है। ऐसे मिथ्यादृष्टि को शुभोपयोग होता तो है, कषाय मन्द दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रतादि होते हैं। परन्तु वह शुद्धोपयोग का कारण है ही नहीं। वह कोई शुद्ध आत्मा के धर्म का कारण नहीं है। अनंत बार शुभ हुआ।

परन्तु '**सम्यग्दृष्टि को...**' जिसकी दृष्टि में शुभोपयोग भी धर्म नहीं है, संवर-निर्जरा उसमें किंचित् नहीं है, बन्ध का कारण है, ऐसी दृष्टिवन्त को शुभोपयोग तो शुद्धोपयोग का कारण '**शुभोपयोग होने पर निकट शुद्धोपयोग प्राप्त हो...**' इतनी बात लेना। उसको दृष्टि में भान है कि यह मन्द कषाय है वह शुभ है, वह भला नहीं है, सत्य साधन नहीं है, वह हेय है। ऐसे जीव को जहाँ सम्यग्दर्शन है, उसको शुभोपयोग हो तो वह होने पर निकट शुद्धोपयोग प्राप्ति होती है। उसको छोड़कर शीघ्र ही दृष्टि में स्वभाव दृष्टि वर्तती है, राग का आदर वर्तता नहीं है, इसलिये शुभ को छोड़कर उसको निकट में शुद्धोपयोग होता है, '**ऐसी मुख्यता से...**' ऐसे मुख्यपने के कारण से '**कहीं शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का कारण भी कहते हैं...**' शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का व्यवहारकारण के तौर पर दृष्टि में वह राग कारण स्वभाव का नहीं है ऐसी दृष्टि है, इसलिये '**शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का...**' व्यवहारकारण सम्यग्दृष्टि को प्रायः वहाँ कहने में आया है। समझ में आया?

'**शुभोपयोग होनेपर निकट शुद्धोपयोग...**' है न उपकण्ठे? इसलिये वह डालते हैं न उपकण्ठे है। आया था अखबार में। समकितदृष्टि को शुभोपयोग होता है वह शुद्ध का उपकण्ठ है, समीप में है। अरे..! सुन तो सही।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, परन्तु उसको सब सम्मुचय लगा। वहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात है। उसको ऐसा लगा देते हैं, संसारी जीव है,.. अरे..! जीवों को निज तत्त्व का निर्णय भी यथार्थ नहीं है। यथार्थ तत्त्व के निश्चय की खबर नहीं है, उसको कहाँ करना भेदज्ञान और कहाँ लाना प्राप्त आत्मा? और उसके बिना धर्म कहीं तीन काल तीन लोक में होता नहीं।

'**शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का कारण भी कहते है - ऐसा जानना।**' लो! इतनी व्याख्या शुद्ध और शुभ के कारण-कार्यकी व्याख्या करी। क्वचित् सम्यग्दृष्टि को शुभोपयोग से तुरन्त छूटकर शुद्धोपयोग निकट होने का कारण हो, ऐसा गीनकर मुख्यतया उसे व्यवहार से कारण कहने में आता है। परन्तु वास्तव में कारण नहीं है। वास्तविक कारण नहीं है। निश्चय से तो वह शुद्धोपयोग शुभ का कारण छोड़कर स्वभाव का साधन करे तब शुद्धोपयोग होता है। कहो, समझ में आया?

अब दूसरी बात करते हैं। '**तथा यह जीव अपने को निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का साधक मानता है।**' कुछ अज्ञानी। मालूम नहीं है कि निश्चय किसको कहते है और व्यवहार किसको किसको कहते हैं? स्वयं को निश्चय अर्थात् सत्य, व्यवहार अर्थात् उपचारी, ऐसे दोनों मार्ग का स्वयं को साधक मानता है। '**वहाँ पूर्वोक्त प्रकार से आत्मा को शुद्ध माना सो सम्यग्दर्शन हुआ;...**' सिद्ध समान शुद्ध (माना) वह सम्यग्दर्शन। सिद्ध समान आत्मा को पर्याय में शुद्ध माना वह सम्यग्दर्शन। यह अज्ञानी की मान्यता। समझ में आया? वर्तमान में शुद्ध कहाँ है? नहीं है और शुद्ध सिद्ध समान माने वह निश्चय सम्यग्दर्शन हो सकता नहीं। निश्चय अर्थात् स्व। मेरा आत्मा तो बस पर्याय में शुद्ध है, शुद्ध है। ऐसे। बस! वह शुद्ध है वह निश्चयसम्यग्दर्शन। अज्ञानी ने ऐसा माना है। समझ में आया?

'**वैसा ही जाना सो सम्यग्ज्ञान हुआ;...**' आत्मा पर्याय से शुद्ध है, निर्मल है, निर्विकार है, निर्दोष है ऐसा जाना सो सम्यग्ज्ञान। वह अज्ञानी का निश्चयज्ञान। यहाँ स्व की अपेक्षा से निश्चय की बात है न? बस! इतनी शुद्ध पर्याय निर्मल है, ऐसा सिद्ध समान आत्मा है, ऐसा माना वह सम्यग्दर्शन। ऐसा जाना वह सम्यग्ज्ञान अज्ञानी

को। समझ में आया? परन्तु पर्याय में सिद्ध समान है नहीं तो तेरी मान्यता और तेरा ज्ञान सब जूठें हैं। वह निश्चय आया न? स्वआश्रय निश्चय। अपनी पर्याय शुद्ध स्वआश्रय वह निश्चय। पर्याय शुद्ध है वह स्वआश्रय निश्चय, इसलिये हमने माना वह सम्यग्दर्शन है। ऐसा नहीं है। त्रिकाल द्रव्य शुद्ध है, पवित्र आनन्द है उसमें एकाकार होने से जो निश्चय प्रगट हो उसको सच्चा सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह तो उसने कल्पना की बात कही। वैसे आत्मा शुद्ध त्रिकाल है, उसका अन्तर्मुख होकर स्ववेदन का ज्ञान होना वह निश्चयज्ञान है। यह कहता है कि सिद्ध समान आत्मा की पर्याय जानी, आत्मा अभी सिद्ध समान है ऐसा जाना वह सम्यग्ज्ञान। वह बात सत्य नहीं है, असत्य है।

'**वैसा ही विचार में प्रवर्तन किया...**' लो! थोड़ा स्थिर हुआ, सिद्ध समान पर्याय श्रद्धा में, ज्ञान में, उस विचार में कि ओहो..! मैं तो सिद्ध ही हूँ, पर्याय से निर्मल हूँ, बिलकुल शुद्ध, पूर्ण शुद्ध हूँ। ऐसे विचार में रुका। उस विचार में रुका वह अज्ञानी का चारित्र। समझ में आया? तीनों बात जूठी है। '**वैसा ही विचार में प्रवर्तन किया सो सम्यक्चारित्र हुआ।**' ऐसा अज्ञानी मानता है। वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है।

'**इसप्रकार तो अपने को निश्चयरत्नत्रय हुआ मानता है;...**' हमें सच्चे रत्नत्रय प्रगट हुए हैं इसलिये हमारा मोक्ष होगा। हम तो आत्मा को शुद्ध मानते हैं, पर्याय से शुद्ध जानते हैं और उसमें हमारा प्रवर्तन है। उसके विचार में हम लीन हो जाते हैं, लीन हो जाते हैं, वह हमारा चारित्र है। समझ में आया? शुभाशुभ परिणाम की बातें तो अन्य भी करते हैं। शुभाशुभ परिणाम का नाश वह आत्मा का परमब्रह्म स्वरूप। परन्तु परमब्रह्म है कौन? वह तो नास्ति से बात कही। आत्मा है कौन? एक समय में अनंत-अनंत शक्तिओं का भण्डाररूप एकस्वरूप निधि, ऐसे आत्मा की अंतर दृष्टि बिना यह शुभाशुभ विकल्प टूटे नहीं। ऐसी बातें तो बहुत करते हैं, अन्यमत में भी करनेवाले बहुत हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा निरंजन निराकार, सिद्ध समान शुद्ध आत्मा, पवित्र परमब्रह्म आत्मा, परमानन्द आत्मा बस। उसका विचार करना, उसमें रुकना वही उसका चारित्र और वह धर्म है।

श्रोता :- ऐसा तो वेदान्त में बहुत आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हो न, वेदान्त में बात तो बिलकुल शुद्ध की बात करी है। परमब्रह्म सर्वथा शुद्ध है। वह जीवभाव, शुभाशुभभाव, मलिनभाव वह सब जीवभाव है, वह आत्मभाव नहीं हैं। निकाल दो उन्हें। क्या निकाले? निकालकर जाना कहाँ?

और निकालना कैसे? कहाँ जाकर निकालना यह मालूम है कुछ? और था कहाँ? मलिन पर्याय में शुभाशुभ भाव तेरे अस्तित्व में थे। तेरे अस्तित्व में पूर्ण शुद्धता है उसका आश्रय लेकर वह टल सकता है, बाकी दूसरा कोई उपाय नहीं है। आश्रय लेने योग्य चीज़ कितनी, कैसी कैसे है, उसको जाने बिना शुभाशुभ भाव अटके नहीं। समझ में आया? अब तो थोड़े रह गये हैं, महेमान सब चले गये हैं।

श्रोता :- अब राजकोट।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, यहाँ आना।

इस तरह केवल आत्मा मानो सिद्ध समान शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... बस हो गया, वह हमारा सम्यग्दर्शन। उसको जाना कि यह शुद्ध है वह ज्ञान। उसके विचार में रुका, उसके विचार में बहुत रुके वह हमारा चारित्र, वह हमारा निर्विकल्प उपयोग। ऐसे मिथ्यादृष्टि भ्रमणा में निश्चयरत्नत्रय मानता है। कहो, समझ में आया? वह स्वयं को निश्चय और व्यवहार का साधक मानता है, इस निश्चय का मैं साधक हूँ।

अब व्यवहार। अब उसकी बात असत्य साबित करेंगे। '**परन्तु मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध; सो शुद्ध कैसे मानता-जानता-विचारता हूँ...**' यह प्रत्यक्ष अशुद्ध पर्याय में मलिनता है, परन्तु मैं प्रत्यक्ष शुद्ध हूँ हाँ! अशुद्ध कोई जीव और आत्मा शुद्ध ऐसा नहीं। 'मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध' ऐसी भाषा है। ऐसा नहीं कि कोई जीवभाव अंतःकरण भाव कोई मलिन है और आत्माकी पर्याय... पर्याय-फर्याय.. वहाँ क्या है? परन्तु आत्मा बस शुद्ध ही है, आत्मा शुद्ध ही है। ऐसा नहीं (कहा है)। '**परन्तु मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध;...**' मलिन दशा पर्याय में प्रत्यक्ष प्रगट है, फिर भी मैं शुद्ध कैसे मानता हूँ? कैसे जानता हूँ? कैसे विचारता हूँ? '**इत्यादि विवेकरहित भ्रम से संतुष्ट होता है।**' उस विवेक की खबर नहीं है और भ्रमणा से मुझे आत्मा का अन्दर ध्यान हो गया और आत्मा निर्विकल्प उपयोग का आनन्द, शुद्ध अनुभव हो गया ऐसे अज्ञानी भ्रम में पड़ते हैं। समझ में आया?

विवेक रहित मात्र। विवेक का पता नहीं। पर्याय क्या? विकार क्या? अविकार क्या? त्रिकाल क्या? शक्ति क्या? शक्तिवान क्या? संयोग क्या? संयोग का अभाव क्या? उसके '**विवेकरहित भ्रम से संतुष्ट होता है।**' कुछ राग मन्द होता दिखे तो उसमें बफम जैसा हो जाये। न अन्दर में मार्ग चलता है, न बाहर जानपने का मार्ग चले, बफम होकर प्रमाद की,... वह भी एक प्रमाद की जात है। समझ में आया? '**विवेकरहित भ्रम से संतुष्ट होता है।**' भ्रमणा से संतोष मानता है। वह निश्चय की

बात में उसको जूठा साबित किया। '**विवेकरहित...**' मात्र अर्थात् पर्याय में प्रत्यक्ष अशुद्धता है और तुम शुद्ध कैसे मानते हो? प्रत्यक्ष अशुद्धता ज्ञान में आती है उसको कैसे जानता है? और उसमें विचार पलटे तो अशुद्ध में विचार पलटा, अशुद्ध में प्रवर्ता उसमें चारित्र कहाँ-से आया?

अब व्यवहार की बात करते हैं। अज्ञानी निश्चय को ऐसे मानता है वह भ्रमणा है और व्यवहार को ऐसे मानता है वह भी उसकी भ्रमणा है। क्या? '**तथा अरहंतादिके सिवा अन्य देवादिकको नहीं मानता,...**' हमारे तो अरिहंत सिद्ध परमात्मा ही गुरु अर्थात् सर्वज्ञदेव और आचार्य, उपाध्याय आदि हमारे गुरु, नग्न दिगम्बर हमारे गुरु, आचार्य उपाध्याय वह हमारे गुरु, नग्न मुनि वह हमारे साधु, उसके '**सिवा अन्य देवादिकको...**' अन्य देव, अन्य गुरु और अन्य शास्त्र। समझ में आया?

'**अरहंतादिके सिवा,...**' अरिहंत (आदि) पाँच पद। उसमें देव और गुरु दोनों आ गये। और शास्त्र सर्वज्ञ ने कहे हुए। उसके सिवा अन्य देव, अन्य गुरु और अन्य शास्त्र को वह मानता नहीं है। उसको व्यवहार सम्यग्दर्शन मानता है। समझ में आया? कहाँ से व्यवहार आया? अभी निश्चय वस्तु के भान बिना उसको व्यवहार कहे कौन? परन्तु निश्चय में ऐसा माने और व्यवहार में ऐसा माने, हम दोनों के साधक हैं। निश्चय और व्यवहार के आलम्बनवाले की बात चलती है न? दोनों का साधन साधनेवाला मैं ऐसा हूँ। हम तो दोनों साधन साधते हैं। भगवान का मार्ग दो नय का है न? एक नय का कहाँ है? अतः निश्चय से ऐसा मानते हैं, व्यवहार में अरिहन्त देव, गुरु, शास्त्र के सिवा अन्य देव-गुरु-शास्त्र को वन्दन नहीं करते, उसको मानते नहीं है। वह उसका व्यवहारसम्यग्दर्शन हुआ।

'**जैन शास्त्रानुसार जिवादकके भेद सीख लिये हैं उन्हींको मानता है, औरोंको नहीं मानता, वह तो सम्यग्दर्शन हुआ;...**' लो! अन्य देवादि को मानता नहीं है और '**जैन शास्त्रानुसार जिवादिकके भेद सीख लिये हैं...**' जीव, अजीव, पुण्यादि भेद शास्त्र अनुसार हाँ! शास्त्र अनुसार। वह तो जैन शास्त्र अनुसार सीखा। फिर भी, उन्हीं को मानता हूँ, अन्य को मानता नहीं, फिर भी वह मिथ्यादृष्टि ही है। उसको निश्चय का भान नहीं है इसलिये तत्त्व सीखता है उसमें भी व्यवहारश्रद्धा सच्ची नहीं है। समझ में आया?

'**जैन शास्त्रानुसार जिवादिक के भेद सीख लिये हैं उन्हीं को मानता है, औरोंको नहीं मानता, वह तो सम्यग्दर्शन हुआ;...**' व्यवहार सम्यग्दर्शन। व्यवहार

निश्चय के साधन बिना व्यवहार कहना किसको? ऐसा व्यवहार कहाँ से लाया तू? समझ में आया? निश्चय का साधन हुआ हो, शुद्ध द्रव्य के भान की दृष्टि, ज्ञान और रमणता तो ऐसे व्यवहार को व्यवहार तरीके मानें। यह तो तेरा निश्चय भ्रम है, उसमें यह व्यवहार आया कहाँ-से?

'**तथा जैन शास्त्रों के अभ्यास में बहुत प्रवर्तता है...**' लो! शास्त्र का अभ्यास वह हमारा सम्यग्ज्ञान हुआ, ऐसा मानते है। '**जैनशास्त्रों के अभ्यास में बहुत प्रवर्तता है...**' स्वाध्याय जैनशास्त्र का वह तो परवस्तु है। उस ओर का विकल्प तो जब निर्विकल्प ज्ञान हुआ हो, आत्मा का स्वसंवेन्दन ज्ञान हुआ हो, तब शास्त्र के ज्ञान का विकल्प और व्यवहार कहने में आता है। तेरे निश्चय का ठिकाना नहीं है तो व्यवहार कहाँ-से लाया? '**जैनशास्त्रों के अभ्यास में बहुत प्रवर्तता है सो सम्यग्ज्ञान हुआ;...**' लो! उसमें आत्मा के ज्ञान को ज्ञान कहता था, इसमें जैनशास्त्र का ज्ञान, उसमें आत्मा की श्रद्धा को श्रद्धा कहता था, पर्याय की शुद्धता को। समझ में आया?

'**तथा व्रतादिरूप क्रियाओंमें प्रवर्तता है...**' अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, भक्ति, पूजा में प्रवर्तता हूँ '**सो सम्यक् चारित्र हुआ।**' ऐसा अज्ञानी का व्यवहार। निश्चय जूठा इसलिये उसका व्यवहार भी जूठा। मानता है कि दोनों का साधन करता हूँ। '**इसप्रकार अपनेको व्यवहाररत्नत्रय हुआ मानता है।**' इसप्रकार अज्ञानी जैन में होते हुए भी वीतराग के निश्चय-व्यवहार के मूल मर्म को, रहस्य को जाने बिना, निश्चय और व्यवहार का मूल मर्म को, रहस्य को जाने बिना भ्रमणा से इस प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों का साधक हूँ, साधनेवाला हूँ, दोनों नय को हम अवलम्बते हैं, भगवान ने दोनों नय कही हैं, इसलिये दोनों को हम साधते हैं, ऐसा मानकर व्यवहाररत्नत्रय साधक है ऐसा मानता है।

'**परन्तु व्यवहार तो उपचार का नाम है;...**' देखो आया। व्यवहार तो उपचार का नाम है। निश्चय सच्चा हो तो इसको उपचार कहने में आता है। मात्र तेरा व्यवहार, निश्चय जूठा है तो यह व्यवहार कहाँ-से आया तेरे पास? समझ में आया? '**व्यवहार तो उपचार का नाम है; सो उपचार भी तो कब बनता है जब सत्यभूत निश्चयरत्नत्रय के कारणादिक हो।**' देखो यह कहा। विकल्प व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान और व्रतादिक के परिणाम, उसको छोड़कर निश्चय का साधन किया हो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, तो उस व्यवहार को व्यवहारकारण का आरोप देने में आता है। समझ में आया? तौल-तौल के लिखा है।

'**परन्तु व्यवहार तो उपचार...**' आरोप का नाम है और वह भी आरोप और '**उपचार भी तो कब बनता है जब सत्यभूत...**' देखो! यह सत्यभूत। व्यवहाररत्नत्रय तो असत्यभूत अभूतार्थ दृष्टि से है। परन्तु अभूतार्थ दृष्टि के कथन की मान्यता व्यवहार, निश्चय सत्यभूत, निश्चयरत्नत्रय के कारण आदिरूप हो, कारण--निमित्त सहचररूप हो तो उसको व्यवहार कहने में आता है। अर्थात् जैसे निश्चयरत्नत्रय सधे वैसे उसको साधे। है। उसको अर्थात् किसको? व्यवहार को। निश्चयरत्नत्रय साधे, वैसे उसको साधे तो उसमें व्यवहारपना सम्भवता है। आया कि नहीं? क्या कहते हैं? व्यवहार के विकल्प हैं, उसका साधन छोड़कर निश्चय करे तो उसके साधन को व्यवहारसाधन का आरोप देने में आता है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार को साधे अर्थात्? कि व्यवहार के रागादि की रुचि छोड़कर, भलापना छोड़कर निश्चय का साधन करे तो व्यवहार साधे उसको व्यवहार का आरोप देने में आये। '**सत्यभूत निश्चयरत्नत्रय के कारणादिकरूप...**' कारण, साधन आदि। क्यों छोटाभाई नहीं आये? समझ में आया?

सत्य निश्चय भूतार्थ, सत्यभूत अर्थात् विद्यमान आत्मा ज्ञानानन्द पूर्ण, उसके आश्रय से निश्चयरत्नत्रय प्रगट करे और उसका निमित्तपना उसको कहे तब उसको व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं, वरना व्यवहाररत्नत्रय भी नहीं कहते। व्यवहाररत्नत्रय .. छोड़कर निश्चय रत्नत्रय साधे तो व्यवहाररत्नत्रय को कारण, निमित्त और सहचर का आरोप देने में आता है। परन्तु यहाँ मूल में चावल ही नहीं है, तो बारदान किसका कहना? वह हो तो उसको कारण, निमित्त, व्यवहार कहने में आये।

'**जिस प्रकार निश्चयरत्नत्रय सध जाये...**' जिस प्रकार निश्चयरत्नत्रय सध जाये, ऐसे वजन है। शुभराग के भाग का साधन छोड़कर जैसे निश्चयरत्नत्रय सध जाये। विकल्प में उठा हुआ भाव, परन्तु अन्तर में जाकर यह स्वभाव शुद्ध है, अभेद है, अखण्ड है ऐसे साधे, वैसे उसको साधे तो व्यवहारपना भी सम्भव हो, परन्तु इसको तो सत्यभूत निश्चयरत्नत्रय की पहिचान हुई नहीं है। निश्चय क्या है उसका तो भान भी नहीं है। सत्यभूत निश्चयरत्नत्रय। '**भूयत्थंऽस्सिदो खलु**' भूतार्थ भगवान त्रिकाल सत्य स्वरूप परमेश्वर, सत्य परमेश्वर, सत्य परमेश्वर, ऐसे सत्य परमेश्वर का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो ऐसी तो उसकी पहिचान भी नहीं हुई है, पहिचान भी नहीं है। उसको तो ऐसा लगता है कि यह है तो यह होगा, यह है तो यह होगा। यह हुआ है हम सिद्ध समान मानते हैं वह, व्यवहार से निश्चय हुआ। समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– उसको उस राग का आरोप देने में आता है। उसको कहा न? '**निश्चयरत्नत्रय सध जाये उसीप्रकार इन्हें साधे...**' व्यवहाररत्नत्रय सध जाये तब साधे ऐसे नहीं। निश्चयरत्नत्रय आश्रय का साधन साधे तब उस व्यवहाररत्नत्रय को आरोप से कहने में आये। कहो, समझ में आया? '**परन्तु इसे तो सत्यभूत निश्चयरत्नत्रयकी पहचान ही हुई नहीं,...**' मालूम भी नहीं है कि निश्चय किसे कहते हैं, भगवान का नाम जाने। तुंबडी समझते हो? वह तुंबडी में बीज होता है न? उसमें आवाज़ आती है, तो ऐसा लगे मानो रुपया पड़ा हो। कंकर है या सुखा बीज है, कुछ मालूम नहीं। ऐसे निश्चय–व्यवहार का ज्ञान ही नहीं हो, किसको कहना निश्चय, किसको व्यवहार कहना, किसको कहना उपचार, किसको कहना सहचर, सहचर। सहचर तो निश्चय वस्तु का साधन साधे तो सहचारी को व्यवहार का आरोप देते हैं। परन्तु ये तो निश्चय शुद्ध सिद्ध समान, सिद्ध समान (मानते हैं) वह हमने साधन साधा और यह व्यवहारसाधन साधते हैं। तेरे दोनों साधन की बात में दम नहीं है। समझ में आया?

'**तो यह किस प्रकार कैसे साध सकेगा?**' क्या कहा? निश्चयरत्नत्रय––यह ज्ञायकमूर्ति आत्मा एकरूप प्रभु आत्मा, ज्ञानस्वभाव का सत्य परमेश्वर है, उसकी खबर नहीं, ख्याल में माहात्म्य आया नहीं, ख्याल में महत्ता आती नहीं और (मानता है कि) व्यवहार साधन और निश्चय हमारा साध्य। दोनों तेरा भटकने का मार्ग है। कहो, समझ में आया? बात बहुत अच्छी आई है इसमें। कहो, समझ में आया?

इसे तो सत्यभूत, सत्यभूत। वह व्यवहार असत्यभूत, आरोप। आरोप कहो, उपचार कहो या असत्यभूत कहो। उसमें भी तकरार करते हैं कि उपचार नहीं, उपचार असत्य नहीं। असत्य नहीं है तो क्या दो सत्य है? एक ही भूतार्थ धर्म है। शुद्ध चैतन्यप्रभु, ज्ञान का अंतर स्वभाव का अवलम्बन करके और जितना शुद्धोपयोग होता है या शुद्ध परिणति होती है उतना धर्म है। उतना सत्य है। और बीच में ऐसा (भाव) आये उसको असद्भूत, असत्य, अभूतार्थ, जूठा रत्नत्रय कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

'**मात्र आज्ञानुसार हुआ देखा–देखी साधन करता है।**' निश्चय यह और व्यवहार यह। देखा–देखी (करता है कि) यह करता है इसलिये मुझे करना है, यह करता है इसलिये मुझे करना है। आज्ञानुसारी बनकर देखा–देखी से साधन करता है। उसे आत्मा क्या चीज़ है? निश्चय क्या? व्यवहार क्या? उसकी सन्धि का कुछ भान नहीं है। मानता है कि अपने दोनों का साधन करते हैं। कहो, समझ में आया? '**इसलिये इसके**

निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं हुआ।' देखा-देखी करके साधन करे उसमें सच्चे तत्त्व की खबर नहीं और सच के बिना व्यवहार जूठ भी किसे कहना उसकी खबर नहीं।

'**निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्गका आगे निरूपण करेंगे,...**' पर रह गया। यहाँ ऐसी बात लेंगे। अभी तो यह शुरूआत की है न? सातवाँ चलता है यह तो, नौंवे अधिकार में थोड़ा शुरू करेंगे। '**निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का आगि निरूपण करेंगे, उसका साधन होनेपर ही मोक्षमार्ग होगा।**' उसके बिना कोई केवल निश्चय मान ले सिद्ध समान और व्यवहार में यह शास्त्र का अभ्यास करना, दूसरे को मानना नहीं, वह दोनों बात तेरी सत्य नहीं है। निश्चय जूठा है इसलिये तेरा व्यवहार भी जूठा है ऐसा कहते हैं।

'**इसप्रकार यह जीव...**' जैन में जन्मे हुए दिगम्बर श्रावक नाम धरनेवाले को भी इस तरह मिथ्यादृष्टिपना वर्तता है ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह जैन अर्थात् दिगम्बर जैन, अन्य को जैन कहने में आता नहीं। उसमें जन्मे हुए को भी निश्चय-व्यवहार का भान नहीं है। ऐसे ही ओघे ओघे (मानते हैं कि) यह हमारा निश्चय और यह हमारा व्यवहार। निश्चय तो व्यवहार करते-करते आयेगा। व्यवहार कहाँ से आया? निश्चय का साधन नहीं है तो व्यवहार का आरोप आया कहाँ-से?

'**यह जीव निश्चयाभासको...**' निश्चय नहीं है परन्तु निश्चय जैसा लिबास है। श्रावक नहीं परन्तु श्रावक जैसा लिबास। ऐसे शाहुकार नहीं परन्तु शाहुकार जैसा लिबास। बराबर ऐसा दिखे कि ओहो...! ये तो बड़ा शाहुकार है। बोस्की का ऊँचा कपड़ा पहने और ऐसे साफ बोले, यहाँ टांग पर घड़ी रखे। क्या कहते हैं? टांगा कहते हैं? इसको तो हाथ कहते हैं। कलाई-कलाई पर। कलाई पर पहने। यहाँ बाँधे। ओहो..! ये तो कोई बड़ा (सेठ लगता है, लेकिन) हो कोई बड़ा ठग। यहाँ पर एक आया था न, ठग गया था न?

'**निश्चयाभासको मानता-जानता है;...**' निश्चय नहीं परन्तु निश्चय जैसा दिखाव, दिखाव, निश्चय जैसा दिखावा। निश्चय क्या है उसको जानता नहीं, परन्तु निश्चय जैसा दिखाव (करे)। ऐसा दिखावा करे कि ओहोहो..! '**परन्तु व्यवहार साधनको भी भला जानता है,...**' देखो आया। '**परन्तु व्यवहार साधनको भी भला जानता है,...**' इसलिये उसका निश्चय भी सच्चा नहीं है। व्यवहार साधन को भला जानता है। है न? व्यवहार साधन को भला जानता है। '**इसलिये स्वच्छन्द होकर अशुभरूप नहीं प्रवर्तता है,...**' व्यवहार साधन को भला जानता है न। तो स्वच्छन्द होकर अशुभभाव

करता नहीं परन्तु '**व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्तता है,...**' व्रत, नियम, संयम, इन्द्रिय दमन, बराबर शुभोपयोग में प्रवर्तता है। '**इसलिये अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पद को प्राप्त करता है।**' लो! नौंवीं ग्रैवेयक तक जाये शुभ उपयोगवाला। ऐसी क्रिया व्यवहार का साधन ऐसा करे, व्रत पाले, नियम पाले आदि, कठिन तप करे। ऐसे प्रवर्तता है। '**इसलिये अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पद को प्राप्त करता है।**' अन्तिम ग्रैवेयक नौंवी ग्रैवेयक ३१ सागरोपम।

'**तथा यदि निश्चयाभासकी प्रबलता से अशुभरूप प्रवृत्ति हो जाये...**' दूसरी बात ली। शुभ में प्रवर्तता है और स्वच्छन्द होकर प्रवर्तते उसको भला जानकर, तो स्वर्गादि मिले। परन्तु '**निश्चयाभासकी प्रबलता से...**' हमें कुछ है ही नहीं। राग-बाग, शुभभाव क्या करना? शुभभाव क्या करना? शुभ तो पुण्यबन्ध का कारण है। ऐसे निश्चयाभास में चढ़ जाये और उसकी प्रबलता हो जाये तो देव, गुरु, शास्त्र, भक्ति, विनय, वाँचन, स्वाध्याय भी छोड़कर केवल अशुभ में प्रवर्तता है। '**निश्चयाभास की प्रबलता से अशुभरूप प्रवृत्ति हो जाये तो कुगति में भी गमन होता है।**' कहो, निश्चय को प्राप्त करता नहीं, समझा नहीं और व्यवहार छोड़कर बैठ जाये। अथवा तो व्यवहारसाधन को भला जानकर करने लगे तो स्वर्ग में जाये। और निश्चय प्राप्त करे नहीं और व्यवहार छोड़ दे (तो) मरकर नरक में जाता है। समझ में आया?

... इतना ज्यादा ऊल्टा जोर आ जाये कि इसमें पर की दया क्या पालना? समझ में आया? पडिलहेण करना वह तो दया पालनी। वह क्या? वह क्रिया आत्मा की है? ऐय..! अन्दर स्वच्छन्द का अशुभ परिणाम मिथ्यात्व का घूंटे। क्या यह शास्त्र बोलना? क्या यह शास्त्र वाँचना? क्या यह गाथाएँ बोलनी? उसमें क्या है? ऐसे निश्चयाभास की प्रबलता में शुभ परिणाम छूट जाये और अशुभभाव अन्दर हो ही। निश्चय तो है नहीं, व्यवहार छूट जाये। कहो, दुर्गादासजी! समझ में आया कि नहीं? कहाँ गये मदनलालजी? निश्चयाभास की प्रबलता हो जाये तो शुभ को गिने नहीं। शुभ क्या? शुभ क्या? शुभ क्या है? नहीं... नहीं... नहीं। एक कहता था न मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़कर? निश्चय हो उसको फिर ये क्या? अशुभ परिणाम हो या कुछ भी हो उसको क्या है? अन्दर बाधा ही कहाँ है? बहुत अच्छा, कहा। जाओगे नीचे। वहाँ कोई पता भी नहीं मिलेगा। दुर्गति (होगी), धर्म तो नहीं होगा, गति भी सारी नहीं होगी।

'**निश्चयाभास की प्रबलता से अशुभरूप प्रवृत्ति हो जाये...**' समझ में आया? लो! जीव, जन्तु आदि में, हम कहाँ किसीको मार सकते हैं, कहाँ ऐसा करते हैं।

फिर इच्छानुसार उपयोग रखकर इच्छानुसार चले। मंकोडी मरे, चींटीयाँ मरे, मंकोडे मरे, मेंढक मरे, क्या कहते हैं? रात को कीडा और वह पंचेन्द्रिय कानकडियाँ, कानकडियाँ आदि। यही दीया करते हैं न। दीये के पास आकर मर जाता है। पंचेन्द्रिय जीव मर जाये उसकी भी दरकार न हो। हम कहाँ मार सकते हैं? निश्चयाभास में ऐसे चला जाय और व्यवहार के शुभपरिणाम का ठिकाना न रखे तो कुगति में गमन होकर '**परिणामोंके अनुसार फल प्राप्त करता है,...**' परिणाम अनुसार फल प्राप्त करता है। चार गति का कोई प्राप्त करे। उसमें कोई धर्म-बर्म होता नहीं। कहो, समझ में आया?

'**परन्तु संसारका ही भोक्ता रहता है;...**' संसार ही रहे। चार गति के परिभ्रमण का भाव ही उसको रहता है। '**सच्चा मोक्षमार्ग बाये बिना...**' सच्चा मोक्ष का मार्ग, निश्चय क्या है उसको समझे बिना, प्रगट किये बिना वह '**सिद्धपदको नहीं प्राप्त करता है।**' उसको कभी मोक्ष होता नहीं।

'**इसप्रकार निश्चयाभास-व्यवहाराभास...**' ऊपर प्रथम से शुरु किया था न? '**दोनों के अवलम्बी मिथ्यादृष्टियों का निरुपण किया।**' हम तो दोनों नय का अवलम्बन करते हैं, दोनों को ग्रहण करते हैं, निश्चय को भी साधते हैं और व्यवहार को भी साधते हैं, परन्तु निश्चय-व्यवहार का स्वरूप क्या है उसकी खबर नहीं। यह पूरा हुआ। यहाँ से शुरु किया था न? देखो न कहाँ से? '**निश्चय व्यवहालम्बी मिथ्यादृष्टि का निरूपण।**' कितनी बातें उसमें लिखी है। ओहोहो...! साढे तीन पन्ने में। समझ में आया? बाद में व्यवहाराभास की कही, निश्चय-व्यवहाराभास दोनों का अवलम्बन लेनेवाले की बात कही, अब चौथी करते हैं।

सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि

'**अब, सम्यक्त्व के सन्मुख जो मिथ्यादृष्टि है उनका निरुपण करते हैं :-**' समझ में आया? तीन बात कही। कौन-सी तीन? पहले निश्चयाभास, बाद में व्यवहारभास, बाद में दोनों आभास, अब चौथा। '**सम्यक्त्व के सन्मुख जो मिथ्यादृष्टि है...**' परन्तु समकित सन्मुख पुरुषार्थ कर रहा है उसका निरुपण करते हैं। वह जीव कैसे होते हैं? समकित सन्मुख मिथ्यादृष्टि कैसे होते हैं? उसकी परिभाषा और उसका प्ररुपण करते हैं।

श्रोता :- अब इसमें नंबर लगे तो अच्छा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नंबर तो स्वयं लगाये तो लगे या कोई कहे तो लगे?

'**सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टि का निरुपण...**' धर्म की प्रथम सम्यग्दर्शन दशा, उसके सन्मुख (जीव), प्राप्त नहीं किया है, परन्तु मिथ्यादृष्टि है उसका क्या स्वरूप है उसका कथन अब करते हैं। कितनी बातें कही है देखो न। मनुष्य की आँखे खुल जाये। परन्तु पढ़े नहीं, विचार करे नहीं, स्वाध्याय नहीं और ऐसे ही... पढ़े तो क्या, दो-चार पंक्ति पढ़ी ली, जाओ।धूल में भी एक पंक्ति समजे आये नहीं। समझ में आया? (सम्यक्त्व) सन्मुख ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव कैसा होता है उसकी बात शुरू करते हैं।

'**कोई मन्दकषायका कारण पाकर...**' कषाय मन्द तो पहले हुआ हो। कषाय मन्द शुभभाव, कोमलता, करुणा, विनय ऐसा कषाय मन्द कोमल नम्र... नम्र... नरम... नरम... नरम... नरम... 'वाळ्यो वळे जेम हेम'। हेम समझे? सोना। सोने को जैसे मोड़ो, वैसे मुड़े। लोहे को मोड़ो तो ऐसे मुड़े? यशोविजयजी कहते हैं, 'वाळ्यो वळे जेम हेम'। ऐसे जिसको सच्चा उपदेश मिलने से जैसे मोड़ना चाहे वह मुड़ सकता है, सन्मुख हो सके ऐसे जीव को पहली कषाय मन्दता होती है। पहले कषाय मन्द होता है। अभी मन्द कषाय का ठिकाना न हो और तीव्र वेग हो और वह सम्यक् होने का पुरुषार्थ करे ऐसा बनता नहीं। समझ में आया?

जिसकी भूमिका में.. आता है न श्रीमद् में? 'मन्द कषाय ने सरळता' कषाय मन्द हो, सरल हो, विशाल बुद्धि हो। समझ में आया? जितेन्द्रियपना आदि चार बोल लिये हैं न? मन्द कषाय, अत्यंत कोमलता, नम्रता, अन्दर नम्रता और अल्प भी कठोरता नहीं, सत्ताप्रिय प्रकृति नहीं। कषाय मन्द पहले होता है। वह आदि। आदि अर्थात् ज्ञानावरणीय का भी उसको लेकर क्षयोपशम होता है। वह कहेंगे।

'**मन्दकषायादि का कारण पाकर ज्ञानावरणादि कर्मोंका क्षयोपशम हुआ,...**' ज्ञानावरण, अन्तराय, दर्शनावरण आदि का उघाड़ हुआ हो, मन्द कषाय हुआ हो और वह उघाड़ हुआ हो। ज्ञानावरणीय का उघाड हुआ हो। उसके बिना तत्त्वविचार कहाँ से करेगा? समझ में आया? बफम-बफम होगा। '**तत्त्वविचार करने की शक्ति हुई;...**' तत्त्व को अन्दर मिलान करने की, आत्मा क्या? विकार क्या? पर क्या? यह क्या आज्ञा कहते हैं? ऐसे '**तत्त्वविचार करनेकी शक्ति हुई...**' उघाड के कारण और कषाय की मन्दता के कारण और ज्ञानावरणी का अन्दर उघाड हुआ। '**तत्त्वविचार करनेकी शक्ति हुई;...**' अभी सम्यक्सन्मुख मिथ्यादृष्टि (की बात करते हैं)। तत्त्व के विचार, नव तत्त्व, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष आदि पर्याय किसको कहनी? कहाँ

कैसे किस प्रकार (होती है)? केवलज्ञान किसको कहते हैं? उसका विषय क्या? ऐसे तत्त्व विचार करने की शक्ति प्रगट हुई हो। '**तथा मोह मन्द हुआ,...**' समझ में आया? मोह अर्थात् दर्शनमोह का भी रस मन्द हुआ हो। मन्द कषाय में तो पहले डाला था। शुभ परिणाम में मन्द कषाय में डाला। मोह मन्द अर्थात् दर्शनमोह भी रस मन्द हुआ हो। समझ में आया कुछ? कर्मकी प्रकृति है उसमें तत्त्व विचार होने से दर्शनमोहन का रस मन्द पड़ गया हो, दर्शन की प्रकृति मिथ्यात्व की, उसका रस मन्द पड़ा हो।

'**तत्त्व विचार में उद्यम हुआ,...**' वह तत्त्व के विचार में सत्य तत्त्व क्या? नव तत्त्व क्या? छह द्रव्य क्या? उसके द्रव्य-गुण-पर्याय क्या? उसका त्रिकाली भाव क्या? क्षणिक भाव क्या? ऐसे सब तत्त्वों के विचार में उद्यमी। अभी तो सम्यक् सन्मुख मिथ्यादृष्टि की परिभाषा चलती है। समझ में आया? '**तत्त्व विचार में उद्यम हुआ,...**' हो। सत्य तत्त्व का विचार करने की शक्ति हुई है, उघाड है, मन्द कषाय है, मिथ्यात्व का रस मन्द पड़ा है और तत्त्व विचार में जिसका उद्यम--प्रयत्न चलता है। किस तरह वह आगे कहेंगे।

'**और बाह्य निमित्त देव-गुरु-शास्त्रदिकका हुआ,...**' बाह्य निमित्त मिला हो, सच्चे देव का, सच्चे गुरु का, सच्चे शास्त्र का, वह बाह्य निमित्त मिला हो। '**उनसे सच्चे उपदेशका लाभ हुआ।**' देखो, यह बात कही। प्रथम उसकी बात कही इतनी। बाह्य निमित्त में सच्चे देव, गुरु और शास्त्र आदि '**उनसे सच्चे उपदेशका लाभ हुआ।**' देखो यह। सच्चा उपदेश उसको सुनने मिला हो। ऐसा होनेपर भी उसको सच्चा उपदेश सुनने में आया हो। '**सच्चे उपदेशका लाभ हुआ।**' इधर-ऊधर के गप्पे लगाता हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? संवर-निर्जरा किसको कहनी? पुण्य-पाप किसको कहना? आत्मा किसको कहना? मोक्ष किसको कहना? केवलज्ञान किसको कहना? मति-श्रुत किसको कहें? परस्पर एकदूसरे में तत्त्व का अभाव, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, प्रयोजनभूत वस्तुएँ, उसका सत्य तत्त्व का उपदेश उसको मिला हो। आगे कहेंगे। यह सब बोल आगे कहेंगे। समझ में आया? देखो! आगे कहते हैं तुरन्त ही।

'**बाह्य निमित्त देव-गुरु-शास्त्रादिक का हुआ, उनसे सच्चे उपदेश का लाभ हुआ।**' सच्चा उपदेश उसको सुनने मिला हो। '**वहाँ अपने प्रयोजनभूत...**' अब आया देखो! अभी तो सम्यग्दर्शन सन्मुख (है), परन्तु प्रयोजनभूत का उसको ज्ञान हो। '**मोक्षमार्ग के,...**' लो! '**मोक्षमार्ग के...**' इत्यादि उपदेश से सावधान हो। मोक्षमार्ग के। कहो।

भाव। सम्यग्दर्शन का भाव क्या? सम्यग्ज्ञान का भाव क्या? सम्यक्चारित्र का भाव क्या? ऐसा सब उपदेश सुनने को मिला हो। सम्यग्दर्शन का भाव--पर्याय, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र उसका उपदेश मिला हो।

'**देव-गुरु-धर्मादिक के...**' भाव मिले हों। सच्चे सर्वज्ञ परमात्मा का क्या स्वरूप? गुरु का क्या स्वरूप? आत्मा के धर्म का क्या स्वरूप? आदि उसका उसको उपदेश मिला हो और उसका उसे जानपना हुआ हो। वह सावधान होता है, उपदेश मिला हो उसमें सावधान होता है। '**देव-गुरु-धर्मादिक के,...**' अरे..! नव तत्त्व का। लो! '**जीवादितत्त्वों के,...**' अब आता है। देव-गुरु-धर्मादिक का और अब जिवादि तत्त्वों का। जिवादि तत्त्वों का उसे भाव मिला हो। जीव का भाव क्या? पुण्य का भाव क्या? पाप का भाव क्या? संवर-निर्जरा का भाव क्या? मोक्ष का भाव क्या? बन्ध का भाव क्या? अजीव का भाव क्या? ऐसा उपदेश उसको मिला हो। तीन बोल हुए।

'**तथा निज-परके...**' चौथा बोल। निज-परके भाव का उसको उपदेश मिला हो। उपदेश मिला हो अभी तो। स्व का भाव क्या? पर का भाव क्या? पाँचवां। '**और अपनेको अहितकारी-हितकारी भावों के...**' वह पाँचवा बोल। समझ में आया? उसमें संवर, निर्जरा, आस्रव, बन्ध सब आ गया। .. सच्चा उपदेश उसको सुनने मिला हो, सुना हो। मिला नहीं, सुना नहीं और विचार में लिया नहीं उसकी तो बात है नहीं। वह तो कोई दूसरे रस्ते पर चढ़ गया है। समझ में आया?

इतने बोल लिये---प्रयोजनभूत मोक्षमार्ग--सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र। देव, गुरु, धर्म प्रयोजनभूत है। जिवादि तत्त्व-सात वह प्रयोजनभूत है। स्वपरका भेद वह प्रयोजनभूत है। हितकारी, अहितकारी भाव। संवर, निर्जरा हितकारी, आस्रव बन्ध अहितकारी, मोक्ष हितकारी, परम हित। ऐसे '**इत्यादिक के उपदेश से...**' उपदेश मिला हो। '**सावधान होकर...**' उसमें सावधान हुआ। '**ऐसा विचार किया...**' सावधान होकर ऐसा विचार किया '**अहो! मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं,...**' मोक्षमार्ग की पर्याय का भाव क्या? देव-गुरु-धर्म का स्वरूप क्या? सात तत्त्व का भाव क्या? स्वपर का भाव क्या? जीवादि नव तत्त्व का भाव क्या? समझ में आया? और हितकारी-अहितकारी भाव किसको कहना? '**मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं, मैं भ्रम से भूलकर प्राप्त पर्याय ही में तन्मय हुआ;...**' भ्रमणा से शरीर... शरीर... शरीर... शरीर... शरीर... और शरीर के साधन में ही मूढपने अनादि काल मैंने व्यतीत किया। परन्तु

मैंने अपने कार्य को सिद्ध करने का कोई प्रयत्न किया नहीं। ऐसा विचार करता है। समझ में आया? अभी तो सम्यग्दर्शन सन्मुख मिथ्यादृष्टि (जीव की बात है)।

'**अहो! मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं,...**' अरे..! मैं कौन? देव-गुरु-शास्त्र क्या?

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

शुक्रवार, दि.७-१२-१९६२
अधिकार - ९, प्रवचन नं.-२५

नौंवा अधिकार है। अहो! मोक्ष का उपाय पुरुषार्थ की उग्रता से मोक्ष का उपाय होता है। ... समझ में आया? '**इसलिये जो पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय करता है उसको सर्व कारण मिलते हैं...**' है? आत्मा का मोक्षमार्ग जिनेश्वर देवने जो उपदेश कहा कि आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता कर। यह जिनेश्वर का उपदेश है। आत्मपदार्थ वस्तु एक समय में शुद्ध है। तेरी रुचि जो विकार और निमित्त की है उसको छोड़ ऐसा न कहते हुए, आत्मा के स्वभाव की शुद्ध ज्ञानानन्द मूर्ति की रुचि, ज्ञान और रमणता ऐसा निश्चयरत्नत्रय का उपदेश जिनेश्वर की वाणी में आया। ऐसा उपदेश सुनकर अपना पुरुषार्थ जो करता है, '**पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय करता है उसको सर्व कारण मिलते हैं...**' एक कारण बाकी न रहे। पहली पंक्ति में आया न कि '**एक कार्य होनेमें अनेक कारण मिलते हैं।**' अनेक कारण होते हैं। पहली पंक्ति थी। एक कार्य में अनेक कारण होते हैं, मिलते हैं, होते हैं। ऐसा। एक कारण हो और दूसरा कारण न हो ऐसा बन सकता नहीं।

श्रोता :- न्याय के शास्त्र की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- व्यवहार के शास्त्र की बात कही, परमार्थ शास्त्र की बात कही।

कहो, समझ में आया?

... रुचि है राग की और निमित्त की, संयोग की। उसका तु कर्ता होकर रुचि कर, भगवान का उपदेश है कि तु कर्ता होकर पर की रुचि छोड़कर स्व की कर। कारण कार्य है न? आत्मा का वह कार्य है या कोई कर्म का और अन्य का कार्य है? आत्मा आनन्द नित्यानन्द है उसकी रुचि छूटकर, अनादि काल से पुण्य और पाप, राग और द्वेष, संयोग में रुचि, विश्वास, भरोसा वह मैं हूँ ऐसा मानकर पड़ा है और तु कर्ता होकर पड़ा है। कोई दूसरे ने कार्य करवाया नहीं है। तु कर्ता होकर वह कार्य करता है तो वीतराग का उपदेश तो ऐसा है कि आत्मा अंतर नित्यानन्द शुद्ध स्वरूप पवित्र है उसकी रुचि कर। कर्ता का कार्य यह है। कर्म को घटाना या नाश करना वह आत्मा का कार्य नहीं है। काललब्धि और भवितव्य तो उस समय होनेवाले हैं .. परन्तु तेरा कार्य क्या? सेठी!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- ... जड़ उसके कारण से होता है। उसका अर्थ करना। एक ही बात है यहाँ तो।

वीतराग के उपदेश में जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ .. हम सर्वज्ञ हुए वह सर्वज्ञ का लक्ष्य करके और स्वभाव का भान करके और उसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करके स्वरूप में राग-द्वेष को टालकर केवलज्ञान को प्राप्त किया। ऐसा ही उपदेश हम अनादि से तीर्थंकरो जैन परमेश्वरों दे रहे हैं।

'**उपदेशानुसार...**' उपदेश के अनुसार। इस उपदेश में यह करने को कहा कि जैसे तुने अनादिभाव से स्वभावकी रुचि छोडी है, स्वभावकी रुचि कर। .. आत्मा आनन्द का धाम है। आत्मा में आनन्द है। बाहर में आनन्द नहीं है। शरीर, वाणी में नहीं और पुण्य-पाप के भाव में भी आनन्द नहीं है। राग में आनन्द नहीं है। संयोग में आनन्द नहीं है। इसलिये तेरा साधन स्वभाव में जो आनन्द है ऐसा साधन प्रगट कर। कहो, समझ में आया कुछ?

आत्मा अनन्दर सच्चिदानन्द मूर्ति सत्... सत्... सत्... ज्ञान का आनन्द, ज्ञान का आनन्द ऐसा जिसका अन्तर स्वभाव जो भगवानने प्रगट किया और भगवानकी वाणी में भी वही उपदेश आया। उसके अनुसार '**पुरुषार्थ से मोक्षका...**' साधन. '**उपाय...**' अर्थात् साधन। '**करता है उसको सर्व कारण मिलते हैं...**' सर्व कारण होते है। काल पक गया तो सब जाये। '**उसको अवश्य मोक्षकी प्राप्ति होती है - ऐसा**

निश्चय करना।' ऐसा निर्णय करना। ऐसा नहीं कि मेरे पुरुषार्थ बिना अपनेआप हुआ है। ऐसा निर्णय नहीं करना। समझ में आया कुछ? यह अधिकार बहोत ऊँचा है।

ऐसा जो कहे कि जो कोई आत्मा के परमानन्द स्वभाव, उसकी रुचि, ज्ञान और रमणता करे उसको सब कारम मिले। काललब्धि, भवितव्य, कर्म का उपशम आदि क्षय वहाँ होता है। उसके कारण से एक हो और दूसरें कारणो न हो ऐसा बन सकता नहीं।

श्रोता :- .. सब कारण मिलते है कि मिथ्यात्व में?

पूज्य गुरुदेवश्री :- मिथ्यात्व में ऊल्टे कारण मिले सब।

श्रोता :- हरएक समय में?

पूज्य गुरुदेवश्री :- हा हरएक समय में। यहाँ तो करनेकी बात लेनी है न?

'**तथा जो जीव पुरुषार्थ से मोक्षका उपाय नहीं करता...**' देखो! अपने आत्मस्वभाव की रुचि, दृष्टि, कर्ता होकर कार्य करता नहीं है। अपना आनन्द स्वभाव उसका कर्ता होकर अपने आनन्दकी रुचि, ज्ञान करता नहीं '**उसके काललब्धि व होनहार भी नहीं है...**'

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह उपाय वही पुरुषार्थ।

श्रोता :- ..पुरुषार्थपूर्वक किसने कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पुरुषार्थ तेरा क्या? कहा था न पहले। कल आया था न कि कर्म मन्द पडे, कारण मिला पुरुषार्थ हुआ ऐसा नहीं। उद्यम हुआ ऐसा नहीं। वीर्यकी स्फुरणा से उद्यम किया। अपने स्वभाव में वीर्यकी स्फुरणा से उद्यम किया, कर्ताबुद्धि से उद्यम किया। राग में कर्ताबुद्धि छोड़कर स्वभाव में कर्ताबुद्धि होकर उध्यम किया। समझ में आया कुछ? बहोत मार्ग स्पष्ट है यह। हुकमीचन्दजी! यह सब मिलते है तो उसमें पुरुषार्थ नहीं। पुरुषार्थ अपना। बाहर में क्यो करता है राग इत्यादि?

'**उसके काललब्धि व होनहार भी नहीं...**' देखो! पुरुषार्थ, स्वभाव तरफ जिसकी गति, रुचि नहीं है उसको तो पुरुषार्थ नहीं है इसलिये उनको काललब्धि और होनहार नहीं है। उसका काल पका नहीं है। होनहार और काललब्धि नहीं, पुरुषार्थ नहीं करता है इसलिये। '**और कर्म के उपशमादि नहीं हुए हैं...**' उसको कर्म का उपशम और क्षयोपशम नहीं हुआ है। '**तो यह उपाय नहीं करता।**'

'**इसलिये जो पुरुषार्थ से मोक्षका उपाय नहीं करता...**' पुरुषार्थपूर्वक मोक्ष

के कारण को भजता नहीं है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्ष का उपाय। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। वह '**पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय नहीं करता...**' मोक्ष के उपाय को पुरुषार्थ से करता नहीं, उसको तो कोभी कारण मिलते नहीं। उशको एक भी कारण होते नहीं है। इसलिये '**उसको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती।**' कहो, समझ में आया कुछ?

काललब्धि और होनहार यह तुझे करना नहीं है। कर्म का नाश और उपशम वह तुझे करना नहीं है। तेरा कार्य तो स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करने का कार्य है। वह कार्य स्वयं त्रिलोकनाथ ने उपदेश में बताया है। वह कारण बताया और तुं दूसरा करे और मानता है कि मुझे होता नहीं। तो तुम उपदेश को समझता नहीं। वीतराग के उपदेश को समझता नहीं। त्रिलोकनाथ परमात्मा उसकी वाणी में संयोग और निमित्त उसकी रुचि अनादिकाल से कर रहा है। स्वभावकी रुचि कर, वीतरागभावकी रुचि कर।

अकषाय स्वभाव आनन्दरस उसकी दृष्टि कर, उसका पुरुषार्थ कर, उसका ज्ञान कर और उसमें क्रिडा करो। यह व्यवहार के उपदेश का तात्पर्य है। आया था न? मोक्ष का उपाय कर वह उपदेश का तात्पर्य है। ऐसे विचार कर मोक्ष को हितरूप जानकर एक मोक्ष का उपाय करे वह सर्वज्ञ उपदेश का तात्पर्य है। यह क्रमबद्ध में भी यही है। क्रमबद्ध में भगवान का उपदेश ज्ञाता आत्मा वह राग और पर का कर्ता ज्ञान का हो सकता नहीं। भगवान प्रज्ञाचक्षु आत्मा ज्ञान स्वरुप वह राग और पर का कर्ता कैसे हो सके? स्वभाव। इसलिये पर का कर्ता जिसको माना है उसको गुलाँट खिलाकर कहे ज्ञाता राग का पर का कर्ता नहीं है ऐसे पुरुषार्थपूर्वक निर्णय कर। कहो, देवानुप्रिया! है कि नहीं?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- निर्णय करने में अनन्ता पुरुषार्थ करे। कहा न यह आगे आयेगा।

श्रोता :- ऐसा निश्चय करना।

पूज्य गुरुदेवश्री :- निश्चय करना वह क्या कहा? निर्णय को बाद करना क्या कहा वह?

श्रोता :- ऐसा निश्चय करना।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसा निश्चय करना. देखो ओर भी आगे आयेगा इसमें।

'**जो पुरुषार्थ से मोक्षका उपाय नहीं करता उसको कोई कारण नहीं मिलते...**'

कारण नहीं मिलते, साधन होता नहीं। इसलिये '**मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती – ऐसा...**' देखो! '**ऐसा निश्चय करना।**' .. निश्चय करना? आया कि नहीं? पहले पंक्ति में आ गया। सुना क्या? '**पुरुषार्थ से मोक्षका उपाय करता है उसको सर्व कारण मिलते हैं और उसको अवश्य मोक्षकी प्राप्ति होती है–ऐसा निश्चय करना।**' ऐसा निर्णय करना। '**तथा जो जीव पुरुषार्थ से मोक्षका उफाय नहीं करता उसको कोई कारण नहीं मिलते – ऐसा निश्चय करना।**' कहो, देवानुप्रिया! है कि नहीं? उसमें कुछ चले ऐसा नहीं है। बचाव। दूसर तरफ गप मारे उसमें समझे नहीं। गप मारे तो चले। गप में क्या चले? सब ऊल्टा ही आये।

वस्तु कहते है कि तुझे रुचता है कि नहीं? क्या रुचा है? तेरे आश्रय से है या किसीके आश्रय से है? विकार रुचे, संयोग रुचे वह भी पर के आधीन होकर रुचे है गूँथन करके। ऐसे यहाँ वीतराग के उपदेश में उसतरह बताते हैं? वह तो अनादि से कर रहा है। त्रिलोकनाथ के उपदेश में यह आया भाई! अरे..! तुम कौन हो? तुम सच्चिदानन्द ज्ञानानन्द मूर्ति प्रभु तुं है। हमारी जात का तुं है। हमारी जात का, हमारी नात का तुं है। हमारी लाईन में, नात में बैठे ऐसा तुम हो। आहाहा..! हुकमीचन्दजी! सिद्धकी श्रेणी में बैठे ऐसा तुम हो। यह संसार की श्रेणी में तुम बैठो ऐसे तुम नहीं हो ऐसा भगवानने कहा है। सेठ! बराबर है?

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा परमेश्वर, उसकी वाणी जिनवाणी आयी .. अरे..! आत्मा! हम जो सिद्धकी श्रेणी में आये उसकी जातकी नात तेरी है। तुम सिद्ध की श्रेणी में आओ ऐसी तेरी जात है। संसार की नात में रहना प्रभु! वह तेरी जात, नात नहीं। सेठी! सर्व शास्त्र का उपदेश वीतराग कहा कि नहीं? वीतराग का अर्थ क्या हुआ? सर्व शास्त्र का तात्पर्य। यहाँ कहा न? तात्पर्य क्या कहा? हितरुप जानता नहिं .. समझ में आया? हितरुप जानता.. वह दूसरी बात कही। उसतरफ उसतरफ उसतरफ। उसतरफ। यह पन्ना तो अपना तो यहाँ चलता है न?

'**उसे भी विचार कर मोक्षको हितरूप जानकर मोक्षका उपाय करना। सर्व उपदेशका तात्पर्य इतना है।**' ३११ पन्ने, पहले पेरेग्राफ की आखरी पंक्ति। उपाय करना अर्थात् वीतरागभाव प्रगट करना वह ऐक ही उपाय है वह सर्व उपदेश का तात्पर्य है। पंचास्तिकाय में कहा कि सर्व शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। यहाँ इसतरह कहा। उपाय कहो या वीतरागता कहो। '**मोक्ष को हितरूप जानकर...**' एक मोक्ष का कार्य नाम वीतरागभाव कर्ता होक प्रगट करना वह सर्व उपदेश का तात्पर्य है।

कहो, समझ में आया कुछ?

निश्चय ऐसा करना कि जिसको यह आत्मा स्वभाव शुद्ध चैतन्य रुचा और पुरुषार्थ किया उसको सर्व कारण उस समय होता ही है। और जिसने स्वभाव का पुरुषार्थ चैतन्यमूर्ति का नहीं किया, उसको एक भी कारण नहीं है। मिले नहीं, है नहीं ऐसा निर्णय करना। कहो, समझ में आया कुछ?

'**तथा तू कहता है –**' अब उसमें उपदेशकी बात आई। वह काललब्धि, होनहार और कर्म के उपशम आदिकी बात तेरे पुरुषार्थ के आधिन सब बातें है। पुरुषार्थ कर तो सब होगा। अब तुने प्रश्न किया था कि '**उपदेश तो सभी सुनते है, कोई मोक्षका उपाय कर सकता है, कोई नहीं कर सकता; सो कारण क्या?**' ऐसा तुने प्रश्न रखा था।

'**उसका कारण यही है...**' सुन। '**जो उपदेश सुनकर...**' सर्वज्ञ का, संतो का, मुनिओं का उपदेश सुनकर '**पुरुषार्थ करते हैं...**' पुरुषार्थ करते हैं। शुद्ध आत्मा चिदानन्दकी रुचि, ज्ञान और रमणता का पुरुषार्थ करता है '**वे मोक्षका उपाय कर सकते हैं,...**' देखो! पुरुषार्थ करते हैं। देखो! दृष्टि को घुमाते है। राग और संयोग पर दृष्टि है वह स्वभाव तरफ दृष्टि कराने का जो उपदेश है, वह उपदेश सुनकर पुरुषार्थ करता है। तो उपदेश में यह आया था कि स्वभाव की रुचि कर, आनन्द आत्मा है उसकी दृष्टि कर। वीतरागी दृष्टि प्रगट कर, वीतरागी ज्ञान प्रगट कर, वीतरागी लीनता प्रगट कर।

'**उपदेश सुनकर पुरुषार्थ करते हैं वे मोक्षका उपाय...**' साधन, मार्ग '**कर सकते हैं,...**' सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वे मोक्षका मार्ग कर सकते हैं। '**और जो पुरुषार्थ नहीं करते हैं...**' किसका? करता तो है। परन्तु ऊलटा करता है। यह नहीं करता ऐसे।

श्रोता :- उपदेश सुनकर करता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह पुरुषार्थ करता नहीं। उपदेश सुनकर यह नहीं करता है।

'**और जो पुरुषार्थ नहीं करते हैं...**' अर्थात् मोक्ष के उपाय में अन्दर में पुरुषार्थ नहीं करता है '**वे मोक्ष का उपाय नहीं कर सकते।**' वे मोक्ष के मार्ग का सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र का प्रयत्न का साधन नहीं कर सकते। क्यों? '**उपदेश तो शिक्षामात्र है,...**' निमित्तमात्र है। कि ऐसा कर। अरे आत्मा! अनन्तकाल से भ्रम में तुं पड़ा है, उस भ्रम को तोड़ दे और स्वभावकी भगवान महिमा भगवती चैतन्य प्रभु उसकी भगवती

ज्ञान चेतना प्रगट कर। समझ में आया कुछ? वह '**शिक्षा मात्र है,...**' उपदेश में। वह तो निमित्तमात्र शिक्षा है।

परन्तु '**फल जैसा पुरुषार्थ करे वैसा लगता है।**' उपदेश क्या करे, निमित्त क्या करे वह उसमें आ गया। '**उपदेश तो शिक्षा मात्र है।**' सिखना या नहीं सिखना वह तो उसके आधार से है। '**फल जैसा पुरुषार्थ करे...**' जैसा स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ जिसप्रकार, जैसे जितना करे वैसा उसको फल आता है। दूसरा क्या करें? उपदेशक क्या करें? और शिक्षा भगवान की वाणी तो अनन्तबार सुनी। जिनेश्वरकी वाणी समवसरण में अनन्त बार धारावाही उपदेश सुना, परन्तु उपदेश अनुसार जो कहना चाहते हैं वह पुरुषार्थ किया नहीं। उपदेश तो शिक्षामात्र हुआ, '**फल जैसा पुरुषार्थ करे वैसा लगता है।**'

'**फिर प्रश्न है कि...**' आप पुरुषार्थ पुरुषार्थ करते हो '**द्रव्यलिंगी मुनि...**' जैन साधु हुआ। ग्यारह अंग को.. ऐसा थोडा आता है। द्रव्यलिंगी मुनि। उसको यहाँ से प्रश्न उठा है। '**फल जैसा पुरुषार्थ करे वैसा लगता है।**' उसके सामने प्रश्न उठाया है। पुरुषार्थ... पुरुषार्थ... पुरुषार्थ... करते है प्रभु, परन्तु हम आपको कहते हैं। एक हमारी दलील सुनो। कि '**द्रव्यलिंगी मुनि...**' जैन का साधु दिगम्बर '**मोक्ष के अर्थ...**' वह दृष्टान्त है देखो। '**मोक्ष के अर्थ...**' पुण्य के अर्थ से नहीं, व्यवहार से नहीं, गति अच्छी है उसके लिये नहीं। समझ में आया कुछ?

'**मोक्ष के अर्थ गृहस्थपना छोड़कर...**' हजारो रानीओंका त्याग करके, हजारो कुटुम्ब, कबीले, लाखो-करोडोंकी पेदाश का त्याग करके, गृहस्थ दिगम्बर मुनि, गृहस्थपना छोड़कर। वह तो नास्ति से बात कही। तो उसने किया क्या? '**तपश्चरणादि...**' करते हैं। महामुनिपना पालते हैं। पंचमहाव्रत पालते है, अठ्ठाईस मूलगुण पालते है, महिने-महिने के, दो-दो महिने के अपवास करते हैं, बारह-बारह महिने के अपवास के पारणे एक साधारण लुख्खा आहार लेते हैं। ऐसी क्रिया अनन्तबार। शिष्य का प्रश्न है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- पुरुषार्थ करता है। वास्तव में पुरुषार्थ करे तो फल आये। इतना तो पुरुषार्थ करता है। पूछते थे। जैन दिगम्बर मुनि होकर और गृहस्थपना छोड़कर मोक्ष के लिये हों! देखो फिर ऐसा कहे कि मुझे मोक्ष चाहिये, मुझे कुछ नहीं चाहिये।परन्तु भान नहीं श्रद्धा का तो क्या करे? ऐसा कहते है।

'**मोक्षके अर्थ गृहस्थपना छोड़कर...**' कोई मान मिलेगा, कोई साधु होंगे तो

इज्जत मिलेगी, बडे कहेंगे, आचार्य की, उपाध्यायकी पदवी मिलेगी। ऐसा नहीं। '**मोक्ष के अर्थ...**' माना हुआ मोक्ष अर्थात् मोक्ष को पहचानता कहाँ है? '**गृहस्थपना छोड़कर तपश्चरण आदि...**' देखो! पंचमहाव्रत, मुनिपनेकी क्रिया, इर्या, समिति, गुप्ति, पांच समिति जितना व्यवहार वीतरागकी आज्ञा का व्यवहार तपस्या आदि मुनि का है वह सभी तपश्चरणादि करता है।

'**वहाँ पुरुषार्थ को किया,...**' पुरुषार्थ किया है न? कहते हैं। '**कार्य सिद्ध नहीं हुआ;...**' आप तो कहते हैं कि पुरुषार्थ करने से कार्य सिद्ध होता है। इतना पुरुषार्थ किया फिरभी कार्यसिद्ध नहीं हुआ। शिष्य का प्रश्न है। '**इसलिये पुरुषार्थ करने से तो कुछ सिद्धि नहीं हैं?**' हमको तो ऐसा लगता है कि पुरुषार्थ करने से कुछ सिद्धि नहीं होती। वह तो काललब्धि, होनहार, कर्म-बर्म मन्द पड जाये तब होगा ऐसा लगता है। इसमें कुछ पुरुषार्थ करने से होगा नहीं।

श्रोता :- मार्ग..

पूज्य गुरुदेवश्री :- धूल में भी मार्ग दे नहीं। तुम दो मार्ग दे मार्ग तो उसमें पडा ही है।

यहाँ कहते है। शिष्यने प्रश्न किया है। उसके मुख में रखकर खुदने ही प्रश्न उठाया है। '**पुरुषार्थ करने से तो कुछ सिद्धि नहीं हैं?**' इतना इतना करे बिचारें। कितना पुरुषार्थ करता है भव्य। किसका पुरुषार्थ? उसका माना हुआ। आहाहा..! शरीर पुरा जीर्ण हो जाये, पेट मुड़ जाये, पसली मुड जाये, हड्डी जीर्ण हो जाये, छह-छह महिने के अपवास, भीक्षा लेने जाये तो तद्न निर्दोष, उसके लिये नहीं बना हुआ चोका-बोका करके नहीं बनाया हुआ। हँसते है। यह सब आपने आज तक गडबडी की है। चोका बनाये, यह बनाये बाद में कहे लो महाराज आज आहारदान दिया। पापदान दिये। समझ में आया कुछ? केसरीचन्दजी! कहते है सब किया है न गडबडी बहोत? आहार-चोका करना नहीं चाहिये सेठ! ऐसा ... शिष्य कहता हैं।

उसके लिये बनाया है ऐसी खबर पड जाये कि इनके घर पर आज दो सेर मोसंबी का पानी कैसे? वह तो दो लोग है। मोसंबी अभी? आपके लिये बनाया है। प्राण जाय तो भी न ले।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- ... भानसहित किया है। समझ में आया? पुरुषार्थ से किया है। जिसने दिया उसने करके दिया है उसको पता है कि मेरे लिये बनाया है। मालुम

है। मालुम नहीं है उसको? यह उद्देशिक है। उद्देशिक जहाँ हो वहाँ चार, छह, साधु आये। कहाँ उसके घर पर आते है? सुबर आठ बजे उठे। कूँए का पानी, ऐसा छानना, यह करना सब उसके लिये है। केसरीचन्दजी! मोसंबी लाये, इतना यह लाना, केले लाईए, यह लाईए समझे न? गरमी के दिनों में ठण्डी चीज़ थोडी बनाओ। शाक-बाक-बडी-पापड सबकुछ बनाकर देते है। उसकी खबर है उसको। उसकी तो यहाँ बात भी नहीं है।

यहाँ तो ऐसे दिगम्बर मुनि कि प्राण जाय फिरभी उसके लिये बनाया हुआ नहीं लेतें। बनाया हुआ न ले। चोका का न ले। प्रभु! इतना तो पुरुषार्थ उसने किया तो कार्यसिद्ध तो हुआ नहीं। क्या बाकी रहा अब? सेठी! सुनो। सुनो। शिष्य को कहते है कि सुनो हम क्या कहना चाहते है।

'**अन्यथा पुरुषार्थ से फल चाहे तो...**' कहते हैं ऊलटा पुरुषार्थ किया। लो! गृहस्थपना छोड़कर अठ्ठाईस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत पाले, प्राण जाय तो भी सदोष ले नहीं। ऐसी तपस्या, बारह-बारह महिने के अपवास। कहो, '**अन्यथा पुरुषार्थ से फल चाहे तो...**' उसका खुलासा करेगें हों अन्यथा क्यों? '**तो कैसे सिद्धि हो?**' अन्यथा क्यों करता है? आगे उसका खुलासा किया। यह तो सिद्धांत कहा। '**अन्यथा पुरुषार्थ से फल चाहे तो कैसे सिद्ध हो? तपश्चरणादि व्यवहार साधन में अनुरागी होकर प्रवर्ते उसका फल शास्त्र में तो शुभबन्ध कहा है।**' लो! तपश्चर्या करना अर्थात् मुनिपना। अठ्ठाईस मूलगुण पालना, पंच महाव्रत पालना, महिने-महिने के अपवास करने, ऐसा व्यवहार साधन शुभराग, उसमें अनुरागी होकर, राग का रागी होकर काम किया उसने। राग मेरा कर्तव्य है। वह मेरा साधन है, मोक्ष में पहुँचायेगा।

'**तप्श्चर्यादि व्यवहार साधन में अनुरागी होकर...**' व्यवहार साधन राग है। राग का राग करके, रागकी प्रीति करी, राग का आश्रय से धर्म मानकर। एय..! देवानुप्रिया! पंच महाव्रत और अठ्ठाईस मूलगुण भव्य ऐसे। खडे खडे आहार हो तो ठीक वरना नहीं लेते। शरीर निर्बल हो जाये तो पाणी दे। ऐसी क्रिया, परन्तु चौथे गुणस्थान से व्यवहार साधन तो राग है, पुण्यबन्ध है, पंच महाव्रत और अठ्ठाईसमूलगुण सब शुभभाव है। उसके '**अनुरागी होकर प्रवर्ते उसका फल शास्त्र में शुभबन्ध कहा है,...**' उसका फल तो पुण्यबन्ध है। ओहोहो..! कहो, केसरीचन्दजी! जुते पहने बिना चले बाद में मुनि ठहराकर कहाँ रह गये इसमें? धर्म में कुछ .. दिखता नहीं उसमें।

श्रोता :- शुभबन्ध

पूज्य गुरुदेवश्री :- शुभबन्ध भी नहीं है। ऐसा कहो न। उसका भी ठिकाना नहीं। व्यवहार जो रागकी मन्दता उसका भी ठिकाना नहीं। उसने तो सब देखा है न बहोत सारा। कहो, समझ में आया कुछ?

कहते है कि अनन्तबार दिगम्बर जैन साधु हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्तबैर ग्रैवेयक उपजायो पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' पंच महाव्रत भी ऐसे निरतिचार हों! ऐसे बराबर। वस्तु कहाँ है तो निर्विकल्पना लाये। वह तो व्यवहार है। व्यवहार साधन है। निश्चय साधन नहीं है। ऐसा कहते है। निश्चय साधन वह नहीं है। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, रागकी मन्दताकी क्रिया वह मूल साधन नहीं है। कहो, समझ में आया? क्या कहा? व्यवहार साधन, उपचार साधन सच्चा साधन नहीं और सच्चा नहीं है उसमें जूठे रागकी प्रवृत्ति में चढा। .. अहिंसा, सत्य-दत्त, ब्रह्मचर्य, महाव्रत, पंच महाव्रत उसकी भावना पंच महाव्रतकी। पच्चीस भावना आती है न? समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण।

'**उसके अनुरागी होकर प्रवर्ते उसका फल शास्त्र में तो शुभबन्ध कहा है, और यह उससे मोक्ष चाहता है,...**' लो! पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण को पच्चीस भावना पंच महाव्रतकी, उनसे मानता है कि हमारा मोक्ष होगा। उनसे हमको सम्यग्दर्शन होगा। सम्यग्दर्शन भी मिथ्यात्व से मुक्त मोक्ष है। समझ में आया कुछ? ऐसी क्रियाकाण्ड से हमें मोक्ष होगा ऐसा मानता है। मिथ्यादृष्टि ऊल्टा पुरुषार्थ करता है।

देखो! टोडरमलजी गृहस्थाश्रम में रहकर हजारो शास्त्रों का निचोड़ करके रखा है। अब तो यहाँ बहोत पुस्तक बाहर पड गये हैं। चार रुपये कि किंमत में दो-दो बीकते है यहाँ। यह नया है? नया पुस्तक है न? नया.. नया.. चार रुपये में दो। परन्तु कोई पढे, विचारे कि यह क्या है? ऐसी जरा कषायमन्दकी क्रिया हुई और राग मन्द देखे, बस हमें हो गया। मुनि, गुरु, वह धर्म धूल में धर्म नहीं। इसके फल में तो मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध का कारण है अने यह मानता है कि इनसे मोक्ष चाहता है। वह अनुराग, शुभराग से मोक्ष को चाहता है।

'**कैसे होगा?**' वह कैसे नक्की होता है? उसकी कैसे मुक्ति होगी? उसका कार्य कैसे सिद्ध होगा? '**यह तो भ्रम है।**' यह तो भ्रम है। पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण का पालन, व्यवहाररत्नत्रय व्यवहाराभास देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का पालन, बार व्रत का पालन वह तो राग है। उससे मोक्ष को चाहता है, सम्यग्दर्शन

माने वह तो भ्रमणा है। कहो, समझ में आया कुछ?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- मुख्य-गौण कहाँ था? ऐसा कहे व्यवहार गौण था यह मुख्य। ऐसा कहाँ। लकडी मारना बराबर आता है उसको। यह तो यहाँ स्वभावकी दृष्टि हो, बाद में राग मन्द हो उसको व्यवहार का आरोप देते हैं। यह क्या केवल राग का साधन, व्यवहार का साधन उनको मोक्ष मानता है। भान भी कहाँ था उसको?

आत्मा ज्ञानानन्द राग की क्रियारहित स्वभावकी दृष्टि करके पुरुषार्थ से साधन किया हो तो बाद में पंच महाव्रत के परिणाम आदि राग को व्यवहार साधन का उपचार कहे। यह तो उनसे हमारे धर्म साधन। यह कहे धर्मसाधन। धर्म साधन करते हैं। निवृत्ति लेकर बैठे हैं। स्त्री नहीं, लडके नहीं, कुटुम्ब नहीं, कुछ नहीं है बापा हमारे। हमें तो आहार-पानी हमारे लिये किया नहीं लेते। निर्दोष आहार। बहोत किया हमने। बहोत क्या किया? मिथ्यात्व किया तुने। शुभभावकी क्रिया में सम्यग्दर्शन होगा या मोक्ष का मार्ग प्रगटे ऐसा माने उसने मिथ्यादृष्टि का पुरुषार्थ किया है। सेठी!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो पक्का मिथ्यादृष्टि है मूढ। कहो, समझ में आया? निबौली को निलमणी माने तो पक्का है। निबौली... निबौली... नीलमणी है निलमणी।

कहते है कि शुभक्रिया सब व्यवहार साधन निमित्त है। स्वभाव का साधन करते हो तो उसको निमित्त कहने में आता है। यहाँ तो स्वभाव तो कुछ नहीं है, व्यवहार रागकी क्रिया पंच महाव्रत यह किया.. यह किया.. यह खाया, यह पिया, यह लिया, यह आगम की आज्ञा प्रमाण से बराबर निर्दोष आहार लिया। ऐसा अनुरागी हुआ उसका फल तो पुण्यबन्ध है। बन्ध है। उसके अबन्ध परिणाम बिलकुल नहीं।

उसके '**फल चाहे तो कैसे सिद्ध होगा?**' '**यह तो भ्रम है।**' यह तो भ्रम है। यह शब्द लिया। परन्तु महाराज! उस भ्रम का कारण भी कोई कर्म है न? क्या करे? भ्रम रहता है वह कर्म को लेकर रहता है न? कहो, दर्शनमोह हो तबतक विकार भ्रम होता है। इसलिये भ्रम का कारण तो कर्म है। ऐसा शिष्यने प्रश्न किया। '**भ्रम का भी तो कारण कर्म ही है,...**' कोई कर्म अर्थात् दर्शनमोह आदि। '**पुरुषार्थ क्या करे?**' उसमें पुरुषार्थ क्या करे? दर्शनमोह को लेकर भ्रम होता है उसमें पुरुषार्थ आत्मा कैसे करे? ऐसा शिष्य के मुख में प्रश्न रखा है।

'**उत्तर :- सच्चे उपदेश से निर्णय करने...**' देखो! सच्चे उपदेश से। केवल उपदेश

शब्द नहीं लिया। '**सच्चे उपदेश से...**' जिसको सत्य उपदेश मिला। सत्य उपदेश किसको कहे? कि पुण्य और पाप और देहादिकी क्रिया वह पर है और तेरे स्वभाव का साधन अन्तर्मुख होकर वीतराग दृष्टि ज्ञान आदि होता है, ऐसा उपदेश उसको मिला। '**सच्चे उपदेश से निर्णय करने से...**' देखो! '**भ्रम दूर होता है;...**' सच्चा उपदेश निमित्त, निर्णय करना कर्म है न? '**निर्णय करने से भ्रम दूर होता है;...**' वह कहे कि भ्रम का कर्म कारण भी सच्चा उपदेश से निर्णय कर न! निर्णय, उपदेश तो निमित्तमात्र है। वह तो ऊपर कहा था। उपदेशक तो शिक्षामात्र है। आ गया न ऊपर?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- बस, तेरे पुरुषार्थ के हाथकी बात है। '**सच्चे उपदेश से निर्णय करने से भ्रम दूर होता है; परन्तु ऐसा पुरुषार्थ नहीं करता...**' क्या कहता है? भ्रम नाश हो जाये ऐसा पुरुषार्थ नहीं करता। मिथ्या अभिप्राय नाश हो ऐसा प्रयत्न वह नहीं करता। इसलिये भ्रम रहता है। ऐसा पुरुषार्थ कैसा है? निर्णय करने का। भ्रम दूर ऐसा निर्णय करने पर। भ्रम दूर हो ऐसा निर्णय करना। देखो यह पुरुषार्थ। क्या करना है उसका तुझे?

'**परन्तु ऐसा पुरुषार्थ नहीं करता,..**' कि जिसे भ्रम दूर हो, और '**इसी से भ्रम रहता है।**' देखो अस्ति-नास्ति करी। ऐसा पुरुषार्थ निर्णय से भ्रम हो ऐसा करता नहीं। इसलिये भ्रम दूर हो ऐसा करता नहीं। इस कारण से भ्रम रहता है। भ्रम उस कारण से रहता है। दर्शनमोह के कारण से भ्रम रहता है ऐसा नहीं। समझ में आया कुछ? पुण्य में मिठास और राग की रुचि, उसके भ्रम में अपना पुरुषार्थ है। अपना पुरुषार्थ है। '**इसीसे भ्रम रहता है।**' उसका भ्रम दूर होता नहीं।

'**निर्णय करने का पुरुषार्थ करे...**' निर्णय करने का पुरुषार्थ करे। यह तो तुने क्रियानय जानी।

श्रोता :- यह क्रिया नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री :- असल क्रिया तो यह है कि ज्ञान में '**निर्णय करने का पुरुषार्थ करे - तो भ्रम का कारण जो मोहकर्म उसके भी उपशमादि हों...**' उसको भी। ऐसे। भ्रम तो नाश होता है। ऐसे। '**निर्णय करने का पुरुषार्थ करे - तो भ्रम...**' तो दूर होता है। परन्तु उसका '**कारण जो मोहकर्म उसके भी उपशमादि हों...**' ऐसे। समझ में आया कुछ? ऊपर कह गये है कि नहीं? निर्णय करने से

भ्रम दूर होता है। और वह भ्रम दूर होने से साथ में कर्म का भी उपशमादि होता है। उसको भी उपशमादि हो **'तब भ्रम दूर हो जाये; क्योंकि निर्णय करते हुए...'** एक ज्ञायक चैतन्य यह है। पुण्य-पाप का विकल्प वह विकार है। स्वभाव परिपूर्ण है, वर्तमान अवस्था अल्पज्ञ आदिकी है, ऐसे विचार का मन्थन करने से **'परिणामोंकी विशुद्धता होती है,...'** परिणामोंकी विशुद्धता होती है। **'उससे मोह के स्थिति-अनुभाग घटते हैं।'** लो! उससे मोह के स्थिति और अनुभाग घटते हैं। उपशमादि तो होता है, परन्तु दूसरी कर्मकी स्थिति और अनुभाग घटता है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कि नहीं? जितना यथार्थ निर्णयपूर्वक अन्दर रुकता है इतना भ्रम तो दूर होता है और मोह के स्थिति-अनुभाग भी घट जाते हैं। कहो, समझ में आया कुछ? यह कार्य तुझे करना है। काललब्धि और होनहार तुझे कुछ करना नहीं और कर्म का उपशमादि करना नहीं। करना तो यह है। वह तो करता नहीं और तुम कहते हो हमने बहोत पुरुषार्थ किया। ऊल्टा हो। शरीरकी क्रिया होती है न? शरीरकी क्रिया में रुकता है द्रव्यलिंगी। है न दसवैकालिक? ३२० पन्ने पर है। ३२० पन्ने पर है देखो। उसमें यह द्रव्यलिंगी की बात है। देखो! पेरेग्राफ में। **'जैसे द्रव्यलिंगी मुनि जिनवचनों से तत्त्वों की प्रतीति करे,...'** दूसरे पेरेग्राफकी चौथी पंक्ति। तीसरे से शुरु। **'द्रव्यलिंगी मुनि जिनवचनों से तत्त्वो की प्रतीति करे, परन्तु शरीराश्रित क्रियाओंमें अहंकार तथा पुण्यास्रव में उपादेयपना इत्यादि विपरीत अभिप्रया से मिथ्यादृष्टि ही रहता है।'** इसकारण से है।

शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, चलता, फिरता, बराबर हाथ जोडुं, भगवान को वन्दन, पैर छुना इस देहकी क्रिया मेरी है। और अन्दर शुभभाव होते है उस पुण्य को उपादेय मानता है। पंच महाव्रत के परिणाम आदि पुण्य छे वह तो शुभ है उसको तो यह उपादेय मानता है, उनसे लाभ होता है ऐसा मानता है। इसलिये **'मिथ्यादृष्टि ही रहता है।'** मिथ्यादृष्टि ही रहता है। देखो! मिथ्यादृष्टि ही रहता है। कहो, समझ में आया कुछ? गौणपने उसको माने तो? मुख्यपने स्वभाव को माने। गौणपने नहीं। गौण का अर्थ क्या? परन्तु मुख्यपने माना तब राग हो उसे उपचार कहते है। ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय रह गया इतनी बात है। साधन-फाधन है ही नहीं। जो नहीं है उसको कहना उसका नाम व्यवहारनय का साधन कहते है। व्यवहारनय के लक्षण ऐसे है। व्यवहारनय का लक्षण अर्थात् लक्षण ऐसा है उसका। नहीं है उसको कहे उसका नाम व्यवहार। जो है उसको कहे उसका नाम निश्चय। ऐसे पंच महाव्रत के साधन करो,

भाई! कषाय मन्द करो, कुछ निवृत्ति करो तो धीरे.. धीरे... धीरे लाभ होगा। वह मूढ है कहते हैं। शुभरागकी क्रिया में धर्म मानता है, पुण्य को उपादेय मानता है और शरीरकी क्रिया नग्न आदि हुई, देखो! यह नग्न कितना सहन करे! आहाहा..! इसमें सहन कितना करना पडे! अरे..! ऐसा तो पशु भी अनन्तबार सहन करता है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह मिलता नहीं .. राग मन्द है। उसमें दूसरा है क्या परन्तु? वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा..! सेठी!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हा। मूल पुरुषार्थ तो किया नहीं और ऊल्टे पुरुषार्थ किया उसमें मोक्षमार्ग का फल आये वह कहाँ से बने? ऐसा कहते हैं।

तब उसने प्रश्न उठाया। '**निर्णय करने में उपयोग नहीं लगाता, उसका भी तो कारण कर्म है?**' लो! परन्तु हमारा उपयोग नहीं लगता निर्णय करने में उसका कारण भी कर्म है न? सुनो। सुनो। '**एकेन्द्रियादिक के विचार करने की शक्ति नहीं है,...**' इसलिये उनको तो कर्म ही कारण। कर्मकी कहनेकी बात है। निमित्तपने है। कारकोंकी योग्यता नहीं है इसलिये कर्मकारण उसको कहने में आया है। बाकी वात तो उनके अपने भाव का कारण है। एकेन्द्रिय आदि नहीं आया? '**चिरमइति**' नहीं आया था? कलस में। अनादिकाल से पर्यायबुद्धि उसने एकेन्द्रिय से शुरु की है। स्वयं ने कर रखा है। भावकलंक प्रचुर स्वयं ने किया है। कर्म तो निमित्त, परद्रव्य तो निमित्तमात्र चीज़ है। परद्रव्य को लेकर कोई दूसरे द्रव्य में कार्य हो जाय तो वस्तु तूट जाये। वस्तु का स्वभाव स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र है नहीं। समझ में आया कुछ?

.. ऐसा कहे कि इसमें लिखा क्या है? '**एकेन्द्रियादिक के विचार करने की शक्ति नहीं है, उनके तो कर्मही का कारण है।**' अर्थात्? उनको वह पुरुषार्थ ज्ञान का, दर्शन का, वीर्य का क्षयोपशम का नहीं है, इसलिये उसको कर्म कारण है ऐसा कहने में आता है। '**उनके तो...**' ऐसे। आपको तो। ऐसा। '**ज्ञानावरणादिक के क्षयोपशम से निर्णय करने की शक्ति हुई है,...**' उसे उघाड नहीं है? दूसरे व्यापार धन्धे का निर्णय कैसे करता है? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय। उनके उघाड से निर्णय करनेकी शक्ति तुझे प्रगट है, प्रगट हुई है।

अब सिद्धान्त। '**जहाँ उपयोग लगाये उसीका निर्णय हो सकता है।**' जहाँ उपयो लगाये उसीका निर्णय हो सकता है। वह उपयोग तेरे अधिकार की बात है। संसार

के धन्धे में उपोयग कैसे लगाता है? किराये में, इसमें, घरमें ऐसा हो तो किराया दूँगा। आप बहार नीकलो। उपयोग लगाता है कि नहीं वहाँ? शान्तिभाई!

श्रोता :- लगाया है न।

पूज्य गुरुदेवश्री :- मकान खाली करवाया। अब मुझे अकेले रहना है। आप सब जाओ। हजार रुपये देकर भी खाली करवाया। वहाँ उपयोग लगता है कि नहीं कहते है।

श्रोता :- उपयोग लगे...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो भिन्न व्यक्तियों को लेकर। वह तो बाहर में होना था तो हो गया। वरना गया .. दूसरे रहे फिर।

राजकोट में ऐसा बना नहीं? बाई को मार डाली। किरायेदार को कहा निकलो। ऐसा साधारण कुछ कहा होगा। क्या नाम है? लुहाणा.. लुहाणा... बाई बिचारी अकेली जंगल जाती थी उसमें तलवार मारके मार डाला। मार डाली। मकानमालिकने। मकान मालिक ने बाई को मार डाला राजकोट में। ऐसा बनना हो वहाँ परिणाम क्या करे? ऐसा करे तो ऐसा होगा, ऐसा करे तो एसा होगा। वह तो बनने का हो तो बाहर में बने।

कहते है कि '**जहाँ उपयोग लगाये उसी का...**' ऐसा शब्द है। '**जहाँ उपयोग लगाये उसीका निर्णय हो सकता है।**' देखो! निर्णय तो हो सकता है। '**परन्तु यह अन्य निर्णय करने में उपयोग लगाता है,...**' धन्धे में, इसमें, विषय के कषाय में, पुण्य और पाप के भाव में, बाहर के सब भावों मे लगावे। '**अन्य निर्णय करने में उपयोग लगाता है,...**' कपड़े के धन्धे में, वकीलात के, किराना, और शेठ का क्या कहते है? कंताई। कंताई का बारदान बारदान। शण-शण जुट। ऐसा करेगा, यहाँ से यह लायेगा। यहाँ से यहाँ आयेगा। ऐसे उपयोग वहाँ लगाता है। यहाँ आत्मा को प्रगट करने में उपयोग लगाता नहीं है। वह दोष किसका है? तेरा हा या कर्म का? ऐसा कहते हैं।

'**जहाँ उपयोग लगाये उसीका निर्णय हो सकता है। परन्तु यह अन्य निर्णय करने में उपयोग लगाता है,...**' दो-दो, चार-चार घण्टे विकथाएँ करें, दूसरे में जुडे .. संसार के भाव कोई पसन्द करे, उसकी पसन्दगी मान दे वहाँ बस उपयोग जम जाये। अनादि का ऊल्टा अभ्यास किया है। '**अन्य निर्णय़ करने में उपयोग लगाता है, यहाँ उपयोग नहीं लगाता।**' तुं लगाता नहीं आत्मा का निर्णय करने में। यह

ज्ञान क्या चीज़ है? यह क्या बाह्य तरफ झुकता है वह भाव क्या है? यह तो कैसी कितनी चीज़ है? कि पुरा उसमें से पर्याय का प्रवाह चलता ही रहता है। ऐसे अन्तरमें अंतर्मुख होकर निर्णय करता नहीं। अन्तर होकर निर्णय करता नहीं। समझ में आया कुछ?

'**अन्य निर्णय करने में उपयोग लगाता है, यहाँ उपयोग नहीं लगाता। सो यह तो इसीका दोष है,...**' या कर्म का दोष है? '**कर्म का तो कुछ प्रयोजन नहीं है।**' लो! अकिंचित्कर कहा। वह कहते है कि अकिंचित्कर नहीं। जहाँ कर्म का कुछ प्रयोजन नहीं। किंचित् होता नहीं। कुछ कारण नहीं है इसका, है कि नहीं? देवानुप्रिया! कुछ प्रयोजन नहीं ऐसा कहा। अकिंचित्कर कर्म है, निमित्त अनकिंचित्कर है? हा, लाख बार अकिंचित्कर है लो!

कर्ता हो ऐसा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का तीनकाल में बने नहीं। तु स्वयं तेरे दोष का सेवन करता है। तत्त्व का निर्णय करता नहीं। तत्त्व निर्णयकी भूमिका तो चली जाती है। आगे आयेगा अभी। जो करना वह करता नहीं। दूसरे को देखकर उपयोग लगा दे, तेरा समय चला जायेगा। '**कर्म का तो कुछ प्रयोजन नहीं है।**' लो! कर्म का तो कुछ प्रयोजन नहीं है। जरा भी प्रयोजन नहीं। कर्म के कारण से तुझे निर्णय करने का उपयोग लगता नहीं ऐसा बिलकुल नहीं। तेरा पुरुषार्थ ही ऊल्टे में जाता है और सूलटा करता नहीं। तेरा अपराध स्वयं का है।

दूसरा प्रश्न उठाया है। '**सम्यक्त्व-चारित्र का घातक मोह है,...**' वह कहता है। सम्यक्त्व का घातक तो मोह है। सम्यग्दर्शन चारित्र का घातक तो मोह है। '**उसका अभाव हुए बिना मोक्षका उपाय कैसे बने?**' शिष्यने प्रश्न किया। क्या करे परन्तु वह दुश्मन हट जाये तब खाते है न लड्डु? तैयार बने हुए है। और वह सिर पर तलवार लेकर खडा है। ऐसे दुश्मन-कर्म सिर पर दर्शनमोह और चारित्रमोह पडा है वह सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र का घातक। उसका अभाव हुए बिना, उसके अभाव हुए बिना '**उसका अभाव हुए बिना मोक्षका उपाय कैसे बने?**' ऐसा शिष्य का प्रश्न है। मुनि, आर्जिका .. सामने रखने जैसा है। सब ऐसा कहते है। कर्म... कर्म।

'**उत्तर :- तत्त्वनिर्णय करने में उपयोग न लगाये वह तो इसी का दोष है।**' तेरा दोष है। तुम समय निकालकर, संसार में से कैसे समय निकालता है? तो तत्त्व के निर्णय में से समय निकाल कर निर्णय नहीं करता है वह तेरा दोष है। देखो यह निर्णय पर बात आई। तत्त्व निर्णय करना वह तो कोई चीज ही नहीं है। और

राग को मन्द करके व्रत पालना, दया पालना, प्रशंसा करनी वह कुछ किया ऐसा कहने में आये। यह तो कुछ नहीं। किंमत ही नहीं उसको निर्णय करने की नहीं है।

अन्तरर्मुहूर्त निकाले प्रगट हो जाये तो। परन्तु न प्रगट न हो तो तत्त्व के निर्णय के लिये जिन्दगी निकालनी। कहो क्या है? अंतर्मुहूर्त में तत्त्व का निर्णय होकर पूर्ण हो जाये तो बस है। परन्तु न हो जाये तो जावजीव तक उसका निर्णय करने का प्रयत्न करना। करना तो यह है। दूसरा करना क्या है? काल कहाँ उसका लागु होता है? काल लागु पडता होगा? परन्तु वहाँ चलता सब। तत्त्वनिर्णय हो गया अब जाओ करना क्या है?

श्रोता :- छ महिने..

पूज्य गुरुदेवश्री :- छ महिनेकी तो उत्कृष्ट बात की है। अन्तर्मुहूर्त में तत्त्व का निर्णय हो सकता है। शिष्य को लम्बा न लगे इसलिये मध्मपने से छ महिने की बात कही। छ महिने... छ महिने में अंतर। जितने प्रमाण से निर्णय के लिये प्रयत्न चाहिये इतना प्रयत्न, कारण दे और कार्य न हो ऐसा बने नहीं। समझ में आया कुछ? बराबर हम हो जाये। बराबर तत्त्व का निर्णय जितने प्रमाण से ऊल्टे जोर में वीर्य को रोका है, ऐसा ही वीर्य गुलाँट खा कर ज्ञानानन्द के निर्णय में रुका है और जितना कारण दे उतना कार्य न हो ऐसा बने नहीं। कारण देने में इतनी कार्य की कचाश दिखती है। एक ही सिद्धान्त है। समझ में आया कुछ? हितरुप जानकर उसका उद्यम न करे। ..

क्या कहा? '**पुरुषार्थ से तत्त्वनिर्णय में उपयोग लगाये तब स्वयमेव ही मोह का अभाव होनेपर...**' लो! पुरुषार्थ से जो तत्त्वनिर्णय करने में उपयोग को आत्मा तरफ लगाये तब तो स्वयमेव ही मोह का अभाव हो जाये। अपने आप अभाव हो जाता है। तुझे करना पडे नहीं। '**सम्यक्त्वतत्त्वादिरूप मोक्ष के उपाय का पुरुषार्थ बनता है।**' लो! तत्त्व निर्णय करने में उपयोग को लगाकर। परन्तु वहाँ फुरसत नहीं मिलती है। दूसरे में फुरसत। इसमें फुरसत नहीं। अब अभी ले। धमाधम... धमाधम... सुने। क्या आत्मा? क्या संवर? क्या निर्जरा? क्या शान्ति? कहाँ हो? क्या अशान्ति? कैसे है? उसका निर्णय करने में रुकता नहीं वह तेरा दोष है।

'**निर्णय करने में उपयोग लगाये तब स्वयमेव निर्णय का अभाव होनेपर सम्यक्त्वादिरूप...**' वह तीन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। '**मोक्ष के उपाय का पुरुषार्थ बनता है।**' मोक्ष के उपाय का पुरुषार्थ बनता है। '**इसलिये मुख्यता**

से तत्त्वनिर्णय में उपयोग लगने का पुरुषार्थ करना।' देखो! मुख्यपने करना। कर्म के लिये करना नहीं। कर्म अपने आप टल जायेगा। '**इसलिये मुख्यता...**' पुरुषार्थ का मुख्यपना स्थापित किया है न? '**मुख्यता से तत्त्व निर्णय में उपयोग लगने का पुरुषार्थ करना।**' लो! '**तथा उपदेश भी देते हैं, सो यही पुरुषार्थ कराने के अर्थ दिया जाता है।**' तत्त्व निर्णय और तत्त्व स्थिरता के लिये ही उपदेश देते हैं। अब वह उपदेश देता है और वह करता है और कर्म पर आरोप लगाये। .. कहते कि उपदेश तो सब सुनते है। कोई पुरुषार्थ करे और कोई नहीं करता उसका कारण? कि कारण तेरा। कर्म-बर्म कारण नहीं हैं। यह अधिकार बहोत अच्छा है।

'**उपदेश भी देते हैं, सो यही पुरुषार्थ कराने के अर्थ दिया जाता है,...**' अन्दर स्वभाव का निर्णय कर, विभाव का निर्णय कर कि विकार है वह पर है। स्वभाव है वह परिपूर्ण है। संयोग है वह पृथक् है उसका बराबर अन्तर्मुख होकर निर्णय कर। उसके लिये तो उपदेश देते हैं। '**इस पुरुषार्थ से मोक्षके उपाय का पुरुषार्थ अपनेआप सिद्ध होगा।**' जाओ। निर्णय के बाद ज्ञान और चारित्र। '**इस पुरुषार्थ से मोक्षके उपाय का...**' अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों का पुरुषार्थकी सिद्धि अपनेआप हो जाती है। कहो, समझ में आया?

आते है न उसमें? आत्मसिद्धि में। पाँचो उत्तर से समाधान सर्वांग, थाशे मोक्ष उपायनी, सहज प्रतीत ए रीत। उसके पहले है। क्या सब कुछ याद रहता है? पहली दो पंक्ति है न? सहज प्रतीति रीत ऐसा है। उसके पहले चाहिये। 'थाशे मोक्ष उपायनी सहज प्रतीत ते रीत।' मुझे वह सहज उपर लेना है। समझ में आया कुछ? उसका शब्द है। कहाँ गये भगत?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- प्रतीत। हा बस वह।

पांचे उत्तरथी थई आत्मा विषे प्रतीत,
थाशे मोक्ष उपायनी सहज प्रतीत ए रीत।

दोनों आमने सामने आ गये न प्रतीत और रीत। सहज प्रतीत वह रीत। सहज... सहज... '**पुरुषार्थ से मोक्षके उपाय का पुरुषार्थ अपनेआप सिद्ध होगा।**'

'**और तत्त्व निर्णय न करने में किसी कर्मका दोष है नहीं,...**' तत्त्वनिर्णय करना वह तेरे अधिकार की बात है। उपयोग तेरे पास है, उघाड तेरे पास है, वीर्य उघाड तेरे पास है। अब किसतरफ उसे लगाना वह तेरे अधिकार की बात है। ज्ञान

का, दर्शन का, वीर्य का विकास तो है। अब उसके कहाँ लगाना वह तो तेरा अधिकार की बात है। सेठी! उसमें '**किसी कर्मका दोष है नहीं, तेरा ही दोष है;...**' तेरा ही दोष है। देखो! उपयोग तेरा, कार्य तेरी पर्याय में और किसतरफ निर्णय करना वह तेरा कार्य है। कारण दूसरे सिर पर डाले दोष तो तेरा है। विशेष कहेंगे।

(श्रोता :- प्रमाणवचन गुरुदेव!)

शनिवार, दि.८-१२-१९६२
अधिकार - ९, प्रवचन नं.-२६

शिष्य का प्रश्न था कि '**सम्यक्त्व-चारित्रका घातक मोह है,...**' और सम्यग्दर्शन-चारित्र प्रगट करने का उपदेश आपका है। ... प्रगट करने का उपदेश है न? तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घातक तो मोह है। अर्थात् '**उसका अभाव हुए बिना मोक्षका उपाय कैसे बने?**' कर्म का अभाव हुए बिना मोक्ष का उपाय कैसे बने? ऐसा प्रश्न है। उसका उत्तर कहा। कहाँ तक आया?

उपदेश भी एक पुरुषार्थ कराने के लिये देते हैं। किसका? तत्त्व का निर्णय करने को। तत्त्व का निर्णय करना वह उपयोग के आधीन है, उसका उपदेश हम देतें हैं। ... तेरा उपयोग जो वर्तमान जानना, देखना और वीर्य का विकास जो दिखता है, उस उपयोग में स्वभाव का निर्णय करने का हमारा उपदेश है। सर्वज्ञ का वह उपदेश है। जो निर्णय तु राग और अज्ञान में अनादि से कर बैठा है, तुझे मोक्ष का हितपना लगे तो स्वभाव तरफ का पुरुषार्थ ज्ञानान्द चैतन्य है, उसका निर्णय करके पुरुषार्थ कर, ऐसा हमारा उपदेश है।

'**इस पुरुषार्थ से मोक्षके उपाय का पुरुषार्थ...**' देखो! भगवान आत्मा अपना वर्तमान उपयोग स्वभाव का निर्णय करे उसमें विभाव का अभाव का निर्णय आ जाता

है। उसके अन्दर पुरुषार्थ की सिद्धि अपनेआप होगी। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र का उपाय अन्दर तत्त्व के निर्णय से तुझे मालूम होगा कि यहाँ से आगे बढ़ने से पुरुषार्थ करने से तीनों का उपाय मैं कर सकता हूँ। समझ में आया? '**और तत्त्वनिर्णय न करने में किसी कर्म का दोष है नहीं,...**' वह पहले आया था कि कर्म का कुछ प्रयोजन है नहीं। यहाँ ऐसा आया कि कर्म का कुछ दोष है, कुछ कर्म का तो दोष है। ऐसा कहा था। 'कुछ तो' इस पर वजन है। कहो, देवानुप्रिया! कर्म का कुछ कारण है कि नहीं एक सिक्का, दो सिक्के?

श्रोता :– ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– .. आ गई। दो बात आई देखो!

तेरा आत्मा वीतरागस्वरूप है और उपदेश में वीतरागपने का निर्णय करवाना चाहते है। सब उपदेश का सार कि आत्मा अविकारी वीतरागस्वभावी अथवा वीतराग विज्ञानघन है। उस वीतराग विज्ञानघन का निर्णय कराने का उपदेश भगवान त्रिलोकनाथ का है। वह निर्णय करने से, स्वभाव सन्मुख का निर्णय करने से दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीनों का उपाय उसमें सिद्ध हो जायेगा।

'**तत्त्व निर्णय न करने में किसी कर्मका...**' करने में कुछ कर्मका '**दोष है नहीं,...**' किंचित् भी कर्म का उसमें दोष नहीं है। कहो, बराबर होगा? यह सब कहते हैं कि नहीं, कर्म भी है। कर्म के कारण होता है, कर्म के कारण होता है। हम उपयोग नहीं लगा सकते हैं वह कर्म का जोर है इसलिये। यहाँ ना कहते हैं कि भगवान ऐसा नहीं कहते हैं। भगवान ऐसा नहीं कहते। आत्मा के स्वभाव की वीतराग विज्ञान शक्ति, उसका निर्णय, उसका ज्ञान और उसमें लीनता कराने का उपदेश है और वह तु कर सकता है, उसमें कर्म का कोई दोष नहीं है, कर्म का किंचित् भी दोष उसमें नहीं है।

परन्तु '**तेरा ही दोष है;...**' अस्ति–नास्ति की। कर्म का तो कुछ दोष नहीं है और तेरा दोष पूरा है ऐसा उसका अर्थ है। '**तेरा ही...**' कर्म का कुछ दोष नहीं और '**तेरा ही दोष है;...**' यह अनेकान्त किया। थोड़ा कर्म का दोष और थोड़ा मेरा दोष ऐसा भी नहीं, वह अनेकान्त नहीं ऐसा कहा। थोड़ा कर्म का दोष, .. थोड़ा मेरा, ऐसा नहीं। '**किसी कर्म का दोष है नहीं, तेरा ही दोष है;...**' ऐसा कहा।

श्रोता :– जड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- जड़ा है परन्तु वह परद्रव्य है, उसका दोष क्या?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- अपना वैरी स्वयं ही है निश्चय से। चिद्विलास में लिखा है कि वैरी कौन? कि स्वयं अपने भाव का वैरी। आता है न भाई! .. ऐसा ही हो न। पर वैरी हो कैई वस्तु? पर वैरी तीन काल में नहीं होता। वह तो शास्त्र की भाषा से बहुत अच्छा लिखा है चिद्विलास में। निश्चय (वैरी) किसको कहना? स्वयं अपना भाव वह वैरी, उसको निश्चय कहना। ऐसा कहा है। कौन वैरी? कर्म और परद्रव्य वैरी ऐसा हो सकता नहीं। सेठी!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- दूसरे ही परेशान करते है। दूसरे अर्थात् विभाव अभाव का आश्रय और विभावभाव में अपनापन माने वही परेशान करता है। विभावभाव निश्चय से स्वभाव नहीं। और उसका आश्रय, उसका निर्णय, उसका ज्ञान, उसमें रमणता वही उसके दुश्मन है। यही उसका दोष है, दूसरा कोई दोष नहीं है।

'**परन्तु तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है...**' मुफ्त का मालिक बडा मैं कुछ नहीं करता.. मैं कुछ नहीं करता... '**परन्तु तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष...**' ऐसा है देखो! '**अपना दोष कर्मादिकको लगाता है;...**' दोष तेरा है, तु उपयोग में निर्णय करने का प्रयत्न करता नहीं, धर्म क्या है उसका निर्णय करने का पुरुषार्थ करता नहीं वह तेरा दोष है। उसको कर्मादिकको लगाता है। दोष तेरा है उसको कर्म आदि.. यह निमित्त जूठे मिले या हमने सुनने को मिले, कर्म का उदय कठीन, यह काल अडचन बन गया, पंचमकाल अडचन बन गया। उसमें दोष निकालता है। सेठी! क्या करें? हमे कोई मिले नहीं सच्चे समझानेवाले। इसलिये हमको ऊल्टा पुरुषार्थ होता है न। यह बात की है।

श्रोता :- पंचमकाल चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री :- पंचमकाल तो उसके घर पर रहा। पंचमकाल क्या आत्मा घूस गया है? हुकमचन्दजी! क्या है देखो!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- अर्थात् ऐसा। महन्त बनता है कि हम कुछ नहीं करते, आप करते होंगे। हमारे कुछ नहीं। दोष सारा कर्म का, कर्म टले तो दोष टले हमारे कुछ नहीं। देखो यह दोष बताया यह चलता है। देवानुप्रिया! यह उसको ठीक लगता है।

कहते है कि '**परन्तु तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है...**' यह तो एक समझानेकी बात है। '**और अपना दोष कर्मादिकको...**' कर्म में और काल में हमको समझानेवाले ऊल्टे मिले, हमको जूठे संग मिले, हमको सम्प्रदाय ऐसा मिला इसलिये हम क्या करे? अरे..! तुं तो महन्त रहना चाहता है जहांतहां। ऐसा नहीं कि मेरी अपनी भूल थी इसलिये में वहाँ फँस गया था। कहो, समझ में आया कुछ? '**तु स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और...**' देखो यह सिद्धांत अब जरा।

'**सो जिन आज्ञा माने...**' अरे..! जिनकी आज्ञा तो जिन होनेकी है। जिनकी आज्ञा वीतरागदृष्टि, वीतरागी विज्ञान, वीतरागी विज्ञानघन होने की आज्ञा है। समझ में आया कुछ? परमेश्वर जैन त्रिलोकनाथ वीतराग देवाधिदेव उसकी '**आज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभव नहीं है।**' तो ऐसा अन्याय दोष तु कर, दोष तुं नहीं टालता है और कर्म के उपर डाल दे और संयोग पर डाल दे। क्या करे हमारे सिर पर बोजा आ गया। बहोत काम। घर में कितने लोग। हमें सबकुछ करना पडे भाई। पराधीनता... पराधीनता... इसमें हम नहीं कर सकते। किसी और दोष डाल दे। शान्तिभाई!

'**जिन आज्ञा माने...**' वजन यहाँ पर है। जिन आज्ञा... बात तो करते हो आप कि पुरुषार्थ से, यह पुरुषार्थ करने योग्य देते है। तत्त्व का निर्णय, ज्ञान और रमणता। मूल वजन निर्णय पर दिया है। निर्णय जो यथार्थपुरुषार्थ करे स्वभाव का, तो उसके साथ ज्ञान और चारित्र का भी पुरुषार्थ आये बिना रहे नहीं ऐसी वीतरागकी आज्ञा है। वीतराग त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं। 'लक्ष्य थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुख दाय।' श्रीमद् में आता है न? 'लक्ष्य थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुख दाय।' त्रिलोकनाथकी वाणी समवसरण में इन्द्रकी उपस्थिति में, गणधरोंकी उपस्थिति में, सन्तो की भीड में यह वाणी नीकली थी कि तेरा लक्ष्य स्व पर ऊपर है उसको स्व के उपर करो। ऐसी भगवान शास्त्रकी और भगवानकी आज्ञा है।

तुने पर का लक्ष्य किया है। तुं स्व का लक्ष्य कर। समझ में आया कुछ? किसने कहा है लक्ष्य करने को? .. ऐसा है। राग और पुण्य और कर्म के निमित्त के ध्येय को छोड़कर लक्ष्य किया है। तुने किया है। कर्ता तुम हो, तेरा कार्य है। कर्ता होकर तुने परलक्ष्य किया है। उस परलक्ष्य को छुडाने के लिये, कर्ता होकर स्वका लक्ष्य कर, वह तेरा कार्य है, वह आत्मा कर सकता है ऐसा उपदेश वीतरागदेव देते हैं। सेठ! कर्म-बर्म अडचन नहीं है ऐसा कहते है। रोग भी अचडन नहीं करता ऐसा कहते हैं। आहाहा..!

'**जिन आज्ञा माने...**' देखो न सिद्धान्त उसने क्या कहा है? जिन आज्ञा यह है कि जिन आज्ञा तेरे लक्ष्य से पर में कर के बैठा है, स्व का ध्येय पकडने की भगवानकी आज्ञा है। भगवान की यह आज्ञा है। क्योंकि तुने किये हुए ऊल्टे काम उसको सूलटे करने की आज्ञा भगवानकी है। ये मोक्षमार्ग का स्वरूप है न? भव का अत्यन्त .. नाश किया है। बहोत अच्छा कहा है। ओहोहो..! थोड़ा सूक्ष्म है। सूक्ष्म है। अभी तो पीठिका बाँधी है। समझ में आया?

आत्मा खाली बैठा है उसको पर के लक्ष्य को और पर के ध्येय को तेरे उपयोग में लेकर और विकल्पो का किलबिलात करते हो वह तेरा ही दोष है। कर्म का कुछ दोष नहीं है। और भगवाकी आज्ञा को मान तो तु कर्म का दोष मिटाओ क्योंकि भगवानकी आज्ञा तेरा कर्तव्य स्वलक्ष कराने का है उसको तुम करता नहीं और दोष डालता है कर्म का कारण दूसरे पर।

'**जिना आज्ञा आने तो ऐसी अनीति संभव नहीं है।**' देखो अब न्याय। '**तुझे विषय-कषायरुप ही रहना है,...**' जिन आज्ञा का लक्ष्य, चैतन्य शुद्ध वीतराग विज्ञानघ के उपर कराने का है। उस पुरुषार्थ को तु करता नहीं और तुं विषय और कषाय अर्थात् पर के ध्येय के लक्ष्य में, पाँच इन्द्रिय विषय, क्रोध, मान, माया, लोभ, भ्रमणा उसमें तुझे रहना है। समझ में आया कुछ? '**इसलिये जूठ बोलता है।**' इसलिये कर्म का दोष निकालकर हमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान बहोत प्रगट करना है, परन्तु मोह के अभाव बिना कैसे हो? उपर उसको भ्रम कहा न? मोह का अभाव न हो तबतक हम क्या करें? क्योंकि मोह .. सिर पर बैठी है। यह .. छोडे तब हुए न? दूसरे ऐसा कहते है, उनके अन्दर में वास्तविक तत्त्व का निश्चय और वास्तविक तत्त्व का ज्ञान और वास्तविक तत्त्व के ज्ञानपूर्वककी भिन्न भिन्नता, कर्म .. दर्शन-ज्ञान-चारित्र लो! भव का अभाव होता है। जूठ बोलता है। तेरा निर्णय तुं करता नहीं, तेरे में आता नहीं वह तेरा दोष है। तुं वीतरागकी आज्ञा मानता नहीं है। जूठ बोलता है।

'**मोक्षकी सच्ची अभिलाषा हो तो...**' ऐसी बात है। तुं सुनने आया है कुछ सत्य है। तुझे छूटने कि जिज्ञासा है कि नहीं? और छूटनेकी जिज्ञासा हो तो बँधने की रुचि और पुरुषार्थ तुम करो और छूटने की रुचि का न करे ऐसा हो सकता नहीं। समझ में आया कुछ? छूटनेकी सच्ची अभिलाषा हो तो 'जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ' श्रीमद् में आता है न? 'भव स्थिति आदि नाम लई छेदो नहीं आत्मार्थ।' आत्मार्थ के प्रयोजन का छेद न करना। भवस्थिति, भाव, काल पकेगा तब

होगा। बापु! तुं मोक्ष इच्छता है। परमार्थकी इच्छा है कि नहीं? परमार्थकी इच्छा है कि नहीं? एक ही सिद्धान्त। 'जो इच्छो परमार्थ।' अरे! परमपदार्थ आत्मा क्या है उसको मुझे जानना, निर्णय करना और अनुभव करना है। ऐसी जो तेरी इच्छा परमार्थकी हो तो सत्य परुषार्थ करो। ऊल्टा पुरुषार्थ करता था वह नहीं। सच्चा पुरुषार्थ करो। एय.! देवानुप्रिया!

यहाँ पर ऐसा आरोप करने में आया है कि तुमने निमित्त से मेरे ऐसा किया, कर्म से मेरे में ऐसा करा। अरे भगवान! क्रमबद्ध कर्ता होकर यह किया, ऐसा किया। पुरुषार्थ नहीं मिले। पुरुषार्थ से आत्मा कर कम कर सके। परन्तु सबकुछ समझ तो सही। अकर्तापने का पुरुषार्थ कर्तापने का पुरुषार्थ तुम अनादि से कर रहे हो। भगवानकी आज्ञा राग और पर के अकर्तापनेकी आज्ञा है। यह जिन आज्ञा है। समझ में आया कुछ?

जिन आज्ञा.. कर्तापना इसको कहना, इसको करना.. अनंत द्रव्यकी पर्याय, उसका प्रवाह चलता है। किसको करुं? और राग का विकल्प उसके काल में उसके गुणकी दशा होती है, इसके कारण से रचना होती है। भगवान कहते हैं कि तुम अकर्ता हो। यह बुद्धि तो अनादिकी पडी ही है। जिन आज्ञा उसका अकर्तापना बताकर और आत्मा का ज्ञातादृष्टापना बताकर और जो अवस्था होती है उसका जाननेवाला बताकर उस पुरुषार्थ को सन्मुख करना चाहते है। समझ में आया कुछ?

'**इसलिये जूठ बोलता है। मोक्षकी सच्ची अभिलाषा...**' सच्ची हों! ऐसा कहे के मोक्ष चाहिये। मोक्ष चाहिये ऐसे नहीं। '**सच्ची अभिलाषा हो तो ऐसी युक्ति किसलिये बनाये?**' उसका दोष है, उसको कठिन उदय आये तब हमें ऐसा होता है। देखो नकार करता हैं। बाद में उस सिद्धान्त को रखेगा। कुछ मुझे कर्म का जोर होगा तो ... कि नहीं? समझ में आया कुछ? '**ऐसी युक्ति किसलिये बनाये?**' अरे! तुझे मोक्षकी सच्ची अभिलाषा-छूटना, बँधना अगर रुचता नहीं है, छूटना रुचे तो ऐसी युक्ति किसलिये बनाते हो? क्यों बनाते हो?

'**सांसारिक कार्यो में अपने पुरुषार्थ से सिद्ध न होती जाने,...**' देखो! व्यापार, धन्धा, आबरु, कीर्ति, लडके-लडकी की शादी, प्रसंग '**सांसारिक कार्यो में अपने पुरुषार्थ से सिद्ध न होती जाने, तथापि पुरुषार्थ से उद्यम किया करता है,...**' करता ही रहे।

श्रोता :- धीरे धीरे होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :– धीरे धीरे होता है लो! शान्तिभाई! यह करना... यह करना... यह करना... ऐसा न हो तो ऐसा होगा। पाँच हजार लगाये तो यह होगा, नहीं लगाये तो ऐसा होगा। फिरभी व्याज के रुपये लेकर भी लगाओ। वहाँ कार्यसिद्धि नहीं होती फिरभी **'पुरुषार्थ से सिद्धि न होती जाने, तथापि पुरुषार्थ से उद्यम किया करता है,...'** तुझे वहाँ रुचता है, रुचता है इसलिये। संसार के विषय, भोग, कीर्ति, आबरु, बडाई, महत्ता वह तुझे रुचता है। उसमें कार्य सिद्धि नहीं होती है फिरभी उद्यम करता ही रहता है। सिद्धि करने के लिये। फिरभी पूर्व के पुण्य हो तो होता है। वरना होता नहीं।

'पुरुषार्थ से सिद्धि न होती जाने, तथापि पुरुषार्थ से उद्यम किया करता है, यहाँ पुरुषार्थ खो बैठा;...' आत्मा का भान, शुद्ध चैतन्य हूँ उसका निर्णय करना, उसका ज्ञान करना, उसमें लीनता करनी, उसमें पुरुषार्थ को खो बैठा। तब तो तुझे पुरुषार्थ और मोक्षतत्त्व बैठा नहीं। वह तुझे हितकर लगा नहीं है। बन्ध से हितकर तुझे लगा है। क्या कहा समझ में आया? बराबर है कान्तिभाई! धन्ध .. ना कहे तो कितनी महेनत करता है? .. क्या कहे सुखे मेवे, वहाँ जाय माल उतारो, यह करो, वह करो वहाँ तो कार्य सिद्धि न होती हो फिरभी पुरुषार्थ किया करता है, यहाँ पुरुषार्थ खो बैठता है। रुचता नहीं है तुझे पसंद नहीं है।

भगवान अरे..! मैं कौन? यह आत्मा क्या चीज है? ऐसी जो तुझे रुचि हो तो ऐसे ऊल्टे पुरुषार्थ की बात करता नहीं। कर्मने मुझे रोका ऐसा जूठ बोलता नहीं। कहो, समझ में आया कुछ?

श्रोता :– ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– सब का यही अर्थ होता है। गोम्मटसार में। गोम्मटसार के किये हुए हैं। आगे कहते है। तेरे कर्म का उदय परन्तु यह तेरा उद्यम हो तो प्रगट कठिन हो। तब उसको कर्म का निमित्त कहते है। पर को लेकर तुझे क्या है? समझ में आया? गोम्मटसार में ऐसा होगा? यह गोम्मटसार के तो पढे हुए हैं। उसमें से तो यह निकालते हैं। टीका तो उसकी की है। क्या कहते उसको?

श्रोता :– ... कर नहीं सकता। ऐसी तो टीका की है गोम्मटसारकी। वह तो तीव्रबुद्धिवाले करते हैं। इतनी बुद्धि। उसको... ओहोहो..! वह ऐसा कहते है कि तुम कर्म के सिर पर दोष डालते हो, तुझे शुद्धताकी रुचि ही नहीं। तुझे शुद्धभाव की रुचि नहीं है। ऐसा कहते है।

भगवान त्रिलोकनाथकी आज्ञा शुद्धभाव करानेकी है। समझ में आया कुछ? वह आया था न पाँचवी गाथा में? हे जिनेश्वर! अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को आत्माने पहले जाना था, उसे आत्मा के साथ मिलान करके और पर्याय को गुण में मिलाकर, गुणभेद को द्रव्य में मिलाकर अभेद दृष्टि करके, और मोक्ष का मार्ग यही पद्धति से प्रगट किया है। और बाद में स्वरूप में ठहरकर राग-द्वेष को टाले। उस विधि से भगवानने उपदेश किया है। भगवानकी आज्ञा में तो यह आया। पराङ्न्मुख हो जा। अनादि के स्वभाव से पराङमुख तेरे पुरुषार्थ से है। वह विभाव और संयोग से पराङमुख हो जा। ऐसा भगवानकी आज्ञा में आया है। समझ में आया कुछ?

'यहाँ पुरुषार्थ खो बैठा;...' नहीं वहाँ तो कर्म हो तो होगा। संसार के काम में ऐसा नहीं। समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- इच्छानुसार होता नहीं, .. होता नहीं तो सब पता चले। क्यों स्वरूपचन्दभाई? संसार में ऐसा होता होगा? धूलमें भी कुछ होता नहीं।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- लडके का कुछ होता नहीं और किसी के बाप का कुछ होता नहीं। भगवानजीभाई को बहोत अनुभव है। वहाँ दुकान उसके नाम पर है। कौन करे? उसमें तेरी कहाँ है? वहाँ जाकर बैठ जाये तो हमने ऐसे किया। विदेश से माल मँगवाया, ऐसा किया, लडके को भेजा, दो महिने वहाँ अभ्यास करके आया। ... सेठी! अरे..? पुरुषार्थ तो गति करता ही रहता है। क्योंकि वहाँ रुचि है। विकारकी तुझे रुचि है। संयोगकी तुझे रुचि है। संयोग बिना का स्वभाव, उसकी रुचि नहीं अर्थात् पवित्रता के परिणाम कैसे प्रगट होते है उसकी तुझे दृष्टि नहीं है।

'यहाँ पुरुषार्थ खो बैठा; इसलिये जानता है कि मोक्षको देखादेखी उत्कृष्ट कहता है;...' तुझे मोक्ष अर्थात् छूटना वह बैठा नहीं। हितरूप बैठा नहीं है। सब मोक्ष मोक्ष कहे। मोक्ष.. मोक्ष... अच्छा मोक्ष। अच्छा मोक्ष। **'मोक्षको देखादेखी उत्कृष्ट कहता है;...'** कहो, समझ में आया? सर्वज्ञपद मोक्ष है। उसको सर्वज्ञपद, उसको देखादेखी से सर्वज्ञपद ऐसा होता है, सर्वज्ञपद ऐसा होता है, परन्तु सर्वज्ञ पद निर्मलदशा है उसतरह से उसे जो हित न बैठे, ऐसे पुरुषार्थ को गवाँ न दे। आत्मा तरफ गति हुए बिना रहे नहीं। आखरी पंक्ति है। आखरी पंक्ति। समझ में आया कुछ? बहोत भारी बात कही है। इतनी सरस बात है। देखो!

'**मोक्षको देखादेखी...**' देखादेखी अर्थात्? मोक्ष बहोत अच्छा हों मोक्ष बहोत अच्छा। परन्तु मोक्ष बहोत अच्छा है परन्तु मोक्ष छूटने का पुरुषार्थ किये बिना रहे नहीं। बन्ध अच्छा तो बन्ध का पुरुषार्थ किये बिना रहता नहीं। इधरउधर घुमता रहता है। ऐसा हुआ... ऐसा हुआ... '**उसका स्वरूप पहचानकर...**' किसका? मोक्ष सर्वज्ञ पद। देखो भाई यहाँ तो सर्वज्ञ का आया फिरसे। सर्वज्ञ कहो या मोक्ष कहो। आहाहा..! सर्वज्ञ और केवलज्ञान और मोक्ष यह ऐसा जो उसको बैठे। समझ में आया? '**स्वरूप पहचानकर उसे हितरूप नहीं जानता।**' पहचानकर उसे हितरूप नहीं जानता। दूसरे कहे की सर्वज्ञ ऐसे होते हैं, सर्वज्ञ ऐसे होते हैं। मोक्ष चाहिये। सर्वज्ञपद मोक्ष हो गया। भले ही चार कर्म बाकी हों। परन्तु केवली को भावमोक्ष हो गया, भावमोक्ष हो गया। भावमोक्ष हुआ वह तुझे बैठा है कि नहीं? वह भावमोक्ष क्या चीज है? भावमोक्ष .. जो होय तो बन्धकी रुचि और बन्ध के कार्य करने की रुचि तेरी फिर जाये और कर्म के सर पर दोष डालना नीकल जाये। ओहोहो..! बडी तकलीफ है यह।

विकार सहेतुक है। बड़ा प्रश्न ऊठा था। विकार सहेतुक है। विकार अपने हेतुरूप होता है निमित्तकी निश्चय में अपेक्षा नहीं है। एय..! देवानुप्रिया!

श्रोता :– ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– हाँ ऐसा है। वह उसका स्वभाव ही है। विभाव वही स्वभाव है। विभावरूप स्वभाव है, त्रिकाल स्वभावरूप स्वभाव नहीं है।

श्रोता ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– .. निमित्त के बिना हो तो विकार स्वभाव हो जाता है। सुना नहीं ऐसा?

श्रोता :– साधन कहाँ लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री :– साधन मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं लिखा। उसने लिखा है। उसमें लिखा है। वह स्वयं है। उसमें क्या है? कहो, समझ में आया कुछ? वह तो उपाधिभाव में निमित्त का आश्रय लेता है इतना बताया है। उपाधिभाव स्वआश्रय से होता नहीं। इसलिये राग कहते है। परन्तु विभावभाव पर को लेकर होता है ऐसा कहना। निश्चय से भी अपने स्वयं के दोष के कारण से निमित्तकी अपेक्षा बिना निश्चय से। निमित्तकी अपेक्षा कहना वह तो व्यवहार है। समझ में आया कुछ?

'**उसका स्वरूप पहचानकर उसे हितरूर नहीं जानता।**' ओहो..! आत्मा के

'ते दिव्यशक्ति मान जेथी जंजीरेथी नीकळे' ऐसा दिव्यशक्ति प्रभु परमात्मा आनन्दरस अतीन्द्रिय आनन्द का रस। विकारकी आड में रुक गया, विकार की जाल में रुक गया, वह भी विकार से छूटना तुझे ठीक लगे, ऐसा बचान न हो सके। समझ में आया कुछ? दोष तो कर्म को लेकर होता है, दोष तो कर्म को लेकर होता है, सहेतुक विकार किया है। समझे न? पर्याय विकारी हुई है। और पंचाध्याय में तो कहा है कि विभाव निमित्त बिना तो होता ही नहीं। पंचाध्याय में ऐसा कहा है देखो! विभाव है वह निमित्त के बिना होता नहीं। क्योंकि विभाव निमित्त के आश्रय से नहीं होता और स्वभाव के आश्रय से होता है तो विभाव कहते नहीं। ऐसी बात है। निमित्त है तो विभाव है। बिलकुल नहीं। विभाव है तब सामनेवाले को निमित्त कहने में आता है। ऐसे उसको बन्धन से छूटना जो ठीक लगा हो, और हितरूप जानता हो तो ऐसा बचाव हो सके नहीं। इसलिये लिये उसे हितरूप जानता नहीं। मोक्ष उसे हितरुप लगा नहीं। सर्वज्ञपद हितरूप और मोक्षपद हितरूप...

'**हित जानकर...**' उसे सर्वज्ञपद, मोक्षपद हित है ऐसा जाने। '**उसका उद्यम सो न करे यह असम्भव है।**' लो! जिसको हितरूप जाने। छूटनेकी दशा हितरूप है ऐसे सर्वज्ञदशा वही आत्मा को हितरूप है ऐसा जो जाने और उसका उद्यम बने वह न करे यह असम्भव है। समझ में आया? हितरूप लक्ष्य में हितरूप उसे लगा नहीं। मोक्ष सुखमय है वह हितरूप लगा नहीं। बन्धन हितरूप लगा है। इसलिये जहां तहां कर्म को लेकर विकार होता है, कर्म को लेकर विकार होता है हम क्या करे? ऐसा करके तु कर्म को किंचित्कर बना देता है। सर्वथा करनेवाला तुं, सर्वथा अकिंचित्कर उसका किंचित्कर करनार है। भले परिणमन उसका, परिणमन उसका, कर्ता होकर परिणमन उसका। परन्तु .. इसतरह है। यह लकडे ऐसे घूस गये है न। समझ में आया?

भाई! तुझे आनन्द स्वरूप में आना रुचता नहीं। और दुःखकी विकारी दशा प्रभु! तुझे रुचती है। इसलिये वहाँ पुरुषार्थ से कार्य न हो फिरभी किया करता है। यहाँ क्या करे? रामचन्द्रजी जैसे। दृष्टान्त देते है। लक्ष्मणजी को कँधे पर छह महिने ले गये। .. देह। तीन खण्ड के स्वामी। दो भाई का प्रेम अढी द्वीप में नहीं मिले। सम्यग्दृष्टि रामचन्द्रजी पुरुषोत्तम पुरुष उस भव में मोक्ष जानेवाले। आखरी देह। आखरी देह। चरम शरीरी, केवलज्ञान पानेवाले। उसको भी ऐसा कहे लक्ष्मणजी को छह महिने तक, बापा! चारित्रमोहका दोष है। ऐसा कहते है लोग। एय..! देवानुप्रिया! कहते है कि नहीं? .. वहाँ बडी तकलीफ पडे। .. तेरा अपना ही दोष है। उसका ही दोष है। चारित्रमोह

का दोष है नहीं। रतिभाई! क्या है? सब लोग कहते है। पत्र में भी लिखते है।

रामचन्द्रजी जैसे महापुरुष पुरुषोत्तम पुरुष जिनकी तीन खण्ड में छाप है। ... महालोकोत्तर नीति और लौकिक नीति में पूर्ण। उसको यह छ महिने तक उठाया। बापा! वह करने के कामी है? वह तो चारित्रमोह का दोष है, उसमें चारित्रमोह का धर्म है इसलिये। चारित्रमोह का बन्ध पडा तो फिर गये। ऐसा कहते है लोको। छ महिने तक कर्म का जोर रहा, और जहाँ कर्म का जोर छूटा, ओहो..! यह मेरा भाई नहीं है। मरे हुए को जिवित कैसे कहे? मारी . अस्थिरता है। वह पुरुषार्थ से किया है। कर्म को लेकर नहीं। समझ में आया कुछ?

'**हित जानकर उसका उद्यम बने सो न करे यह असम्भव है।**' जिसकी जरूरत दिखे उसका पुरुषार्थ न करे ऐसा बने नहीं। भगवानजीभाई! जिसकी जरूरत दिखे उसका पुरुषार्थ सम्भवित न करे, सम्भवित न करे। असम्भवित है। सम्भवित अर्थात् पुरुषार्थ करता हुआ। ऐसा कहा है न? '**जानकर उसका उद्यम बने सो न करे...**' ऐसे। अच्छी बात ली है। समझ में आया कुछ? आत्माकी मुक्त दशा अच्छी लगती हो, हितरूप लगती हो तो उसके प्रति पुरुषार्थ न हो वह असम्भव है। असम्भव है। सम्भवित नहीं है। कब से चला आता है। अब कर्मकी शैलीकी बात आई।

शिष्यने प्रश्न किया। '**कि तुमने कहा सो सत्य;...**' इतना तो बैठा हों! परन्तु हमें एक बडी शंका है। '**द्रव्यकर्म के उदय से भावकर्म होता है,...**' शास्त्र में तो ऐसा कहते है प्रभु! आपने जो बात कही वह सत्य है। परन्तु शास्त्र में तो ऐसा आता है कि जडकर्म का उदय आये उसमें विकार होता है। भावकर्म होता है। '**भावकर्म से द्रव्यकर्म का बन्ध होता है,...**' उसको जैसे विकार होता है वैसा उसको नया बन्धन होता है। पूराने बन्धन के उदय अनुसार विकार, विकार अनुसार बन्धन।

कहो, यह ८३ की साल में बडा प्रश्न दामनगर में उठा था। धीरुभाई सेठिया है न? २० सेठिये को लेकर आये थे। कौन सा गाँव? दाहोद से। एक व्यक्तिने प्रश्न किया था। .. चर्चा अन्दर चलती थी। कहे नहीं। द्रव्यकर्म अनुसार भावकर्म बिलकुल नहीं। इसलिये उस २० लोगों को लगा कि क्यों भाई! यह जडकर्म को लेकर द्रव्यकर्म और भावकर्म, भावकर्म, द्रव्यकर्म... यही प्रश्न था। ८३ में। संवत् १९८३। बराबर है? वह कहे बराबर है। क्या बराबर कहा? तो उसमें छूटने का काल कौन सा? द्रव्यकर्म का उदय... बाद में यह गये थे धीरुभाई तब। तब तो छोटी उम्र थी। यह तो कितने साल हो गये। ३६। ३६ साल हो गये। .. धीरुभाई वहाँ थे न। वह २० .. को

लेकर आये दाहोद के सब। दर्शन करने को आये थे दामनगर। उसने कहा। हमारे तो अन्दर चर्चा चलती थी। बिलुकल एक अंश भी कर्म का एक नया पैसा भी नहीं। वह कहे कि बहु तो आप कर्म के एक नया पैसा ४९ रक्खो, और आत्मा के ५१ एक नया पैसे रक्खो। पुरुषार्थ के। ऐसा प्रश्न। लोको तो ऐसा कहे न कि समान ही रखना चाहिये। क्योंकि दोनों समान है। ५०-५० प्रतिशत करने चाहिये। ५० कर्म का उदय और ५० पुरुषार्थ के। आप बहोत कहते हो तो ५१ रक्खो और ४९। मैंने कहा एक नया पैसा भी नहीं। सेठ!

बाद में उस सेठने ऐसा प्रश्न किया था। बाद में इसने भी प्रश्न किया था। क्यों भाई! द्रव्यकर्म को लेकर भावकर्म होता है। हा। अरे..! द्रव्यकर्म को लेकर भावकर्म हुआ करे तो आत्मा को पुरुषार्थ से मोक्ष होने का अवसर कहाँ? .. दूसरे कहे। आपने जो हाँ कही तो जडकर्म का उदय आये तो विकार होता है, विकार हो तो बन्धन होता है। अब उसमें विकार नहीं होने का अवसर, छूटने के अवसर कब आत्मा को? अगर ऐसा हो तो। कि शास्त्र में लिखा है न? वह तो जो करते रहते है उसके लिये कहा है। द्रव्यकर्म का उदय और उसके निमित्त से बाद में भावकर्म करे। करनेवाला करे तबतक। भावकर्म होता है और बन्धन होता है, परन्तु छोड़ने की तीव्र इच्छावाला है उसको कर्म के उदय अनुसार विकार हो ऐसा बिलुकल है नहीं। समझ में आया कुछ? ..लडके बिचारे .. इसतरह पोकार करे। कहो, समझ में आया?

'**द्रव्य कर्म के उदय से भावकर्म होता है,...**' भावकर्म समझ में आया? पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव। शुभ और अशुभभाव होते है वह कहते है कि द्रव्यकर्म का उदय हो तो होता है। क्योंकि निमित्त बिना हो तो निमित्त का नाश हो जाता है। इसलिये उनको लेकर होता है। दलील है उसकी। '**भावकर्म...**' जो यह पुण्य-पाप के जैसे भाव करता है उसके अनुसार नया कर्मबन्धन होता है। फिर उनके उदय से भावकर्म होता है। फिरसे जो कर्म का बन्धन जो हुआ उसका जब उदय आवे तब आत्मा में विकारी भाव होता है। भाव शब्दे शुभ-अशुभ दोनोंकी बात हो यहाँ। केवल अशुभकी बात नहीं है। शुभ और अशुभ दोनों भाव कर्म को लेकर होता है और उस भावको लेकर कर्म बन्धन होता है।

'**इसी अनादि से परम्परा है,...**' इसी अनादि से परम्परा है, '**तब मोक्षका उपाय कैसे हो?**' अब इनमें से हमे कैसे छूटे? आप कहते है कि ऐसा करो... ऐसा करना... ऐसा करना... ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन करा दे? एय..! देवानुप्रिया! देखो यह तुम्हारे दलाल है हं! आहाहा..! एक हमारे यह दलाल है पुरी सभा में। कहो, समझ में आया कुछ? ये जो कहा उसका उत्तर देते हैं। प्रश्न का रुप क्या है? कि देखो अनादि से शास्त्र में तो ऐसा आता है। वह तो सर्वविशुद्ध में भी आता है। आत्म कर्म के आश्रय से उत्पन्न होता है और कर्म आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होता है। अनादि से अज्ञान से ऐसा होता रहता है। तो शास्त्र के अनुसार तो ऐसा है। और आप कहते हैं कि भगवानकी आज्ञा ऐसे है। और तु मोक्ष से हित मान तो पुरुषार्थ किये बिना रहे नहीं। लो! सत्य तो बात है। परन्तु शास्त्र में ऐसा है न! इसलिये आपने जो कहा वह सत्य है। बात तो सत्य लगती है, परन्तु ऐसा है उसको कैसे समझे?

श्रोता :- परम्परा से...

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसे नहीं होता है। द्रव्य और भावकर्म की परम्परा में पुरुषार्थ का न होने का खण्डन। द्रव्य और भावकर्म की परम्परा में पुरुषार्थ का न होने के खण्डन। उसमें पुरुषार्थ है सुनो।

'**समाधान :- कर्मका बन्ध व उदय सदाकाल समान ही होता रहे तब तो ऐसा ही है;...**' तब तो ऐसा ही है। कि कर्म के उदय अनुसार विकार और विकार के भाव अनुसार बन्धन। कर्म का बन्धन और उसका उदय फिर से उनका ही। '**सदाकाल समान ही होता रहे तब तो ऐसा ही है; परन्तु परिणामोंके निमित्त से...**' देखो! पूर्व में बन्धे हुए कर्म का भी। पूर्व में जो कर्म बाँधा था उसका उत्कर्षण हो जाये। एक स्थिति रस बढ जाये। उसका स्थितिरस घट जाये। अच्छे परिणाम हो तो स्थितिरस घट जाये। उसका जो तत्त्वानुयोग.. समझ में आया?

ओर '**संक्रमणादि होने से...**' एक प्रकृति दूसरे में पलट जाये। तेरे परिणाम के आधीन है। परिणाम के आधीन है। '**उनकी शक्ति हिनाधिक होती है;...**' लो! संक्रमण होने से बँधे हुए कर्म उसकी शक्ति कम-अधिक परिणाम जिस अनुसार होता है उस अनुसार वह हो जाती है। वह होने के लायक हो तो। अभी यह सिद्ध नहीं करना है। वहाँ वह होनेके लायक हो क्रम में, तब यह परिणाम भी उसके क्रम में आये और उसमें भी एक होनेके लायक स्थिति कम-अधिक हो जाती है। यह कथनकी पद्धति। ऐसा न समझे .. अर्थात् जडकर्म का उदय हो तो विकार करना ही पडे। अभी तो ऐसा है कि डिग्री टु डिग्री करना पड़े। हुकमचन्दजी! सुना है? कर्म के

कारण से डिग्री टु डिग्री।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- विकारी भाव होता है। उसके लिये .. इतने प्रमाण में आये कि नहीं? प्रश्न है हं! वास्तव में आये नहीं।

यहाँ कहते है कि जैसा कर्म का उदय आये उस अनुसार विकार करे। अरे.. भगवान! यह कहाँ से निकाला तुने? भगवानने कहा नहीं और तुं सिखा उस कर्म से भगवान को मानता है। भगवान के उपदेश को मानता है। भगवानने ऐसा कहा नहीं तो यह बात लाये कहाँ से? समझ में आया कुछ? डिग्री टु डिग्री। बडा प्रश्न चला था।

और कर्मोदय के निमित्त से अर्थात् कर्म का उदय आये और यहाँ परिणाम में परिवर्तन होने से उसकी बन्ध स्थिति .. हो जाये। और कर्मोदय के निमित्त से कर्म का उदय आये। समझ में आया कुछ? अर्थात् आत्मा के .. होता है। आत्मा के भाव में तीव्र और मन्द अपनी लायकात से होता है। ज्ञान-दर्शन अन्तराय। यहाँ ज्ञान-दर्शन और उपयोग। वह कभी ज्यादा-कम होता है अपने पुरुषार्थ के अनुसार।

'**कभी रागादि मन्द होते हैं,...**' जीव में हं! '**कभी तीव्र होते हैं।**' ऐसा यहाँ। आत्मा में कभी राग, द्वेष, क्रोध, मान, मन्द होता है। अपनी योग्यता अनुसार। कभी वह तीव्र होता है। शुभाशुभभाव। '**इसप्रकार परिवर्तन होता रहता है।**' आत्मा के परिणाम में परिवर्तन होतात ही रहता है। बन्ध में भी परिवर्तन होता ही रहता है। कहो, समझ में आया?

'**वहाँ कदाचित् संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पर्याय प्राप्त की,...**' मनुष्य आदि। नारकी शरीर। कदाचित् मनवाला पंचेन्द्रिय, मन बिना के पंचेन्द्रिय होते वहाँ तो विचारशक्ति होती नहीं। मनवाले पंचेन्द्रिय और वह भी पर्याप्त और मनवाले पंचेन्द्रिय अपर्याप्त में मर जाते हैं। इसलिये '**पंचेन्द्रिय पर्याप्त...**' मनवाले '**पर्याय...**' अर्थात् ऐसा शरीर प्राप्त किया। ... '**तब मन द्वारा विचार करने की शक्ति हुई।**' देखो! तेरे में उघाड शक्ति प्रगट है ऐसा कहते हैं। '**तब मन द्वारा...**' समझ में आया? '**विचार करने की शक्ति हुई।**' ज्ञान का उघाड है, दर्शन का उघाड है और वीर्य का। मन द्वारा विचार करने की शक्ति हुई है।

'**तथा इसके कभी तीव्र रागादिक होते है, कबी मन्द होते हैं।**' अब यहाँ .. कहते है। वह कल्पना होती रहती है ऐसा कहना था। कभी तीव्र कभी मन्द।

ऐसा कहना था। अब कहते है कभी तीव्र और कभी मन्द होती है। '**वहाँ रागादिकका तीव्र उदय होने से...**' दूसरी बात करनी है। वह कल्पना की बात करनी थी। यहाँ कहा कि जब तीव्र राग होता है तब '**तो विषयकषायादिकके कार्यों में ही प्रवृत्ति होती है।**' ऐसा। समझ में आया कुछ? जीव के परिणाम में जब अशुभ रागादि तीव्र हो तब उसके परिणाममें तो विषय कषाय में रहना होता है। वहाँ प्रवृत्ति उसतरफ होती है। वह धर्म सुनने को निवृत्त होता नहीं। अशुभ परिणाम में भी कहाँ निवृत्त होता है? समझ में आया?

'**तीव्र उदय होने से तो विषयकषायादिक के कार्यों में ही प्रवृत्ति होती है।**' अपने परिणाम की और स्वयं... '**तथा रागादिकका मन्द उदय होने से...**' लो! परन्तु मन्द शुभराग कषायकी मन्दता होने से परिणाम में '**बाह्य उपदेशादिकका निमित्त बने...**' लो! बाह्य से सर्वज्ञ का उपदेश, परमेश्वर का उपदेश आदि सत्समागम बने '**और स्वयं पुरुषार्थ करके उन उपदेशादिकमें उपयोग को लगाये...**' लो! '**तो धर्म कार्य में प्रवृत्ति हो;...**' उपदेशादिक में उपयोग अर्थात् उपदेश कहने में आया, उपदेश कहने में आया कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाव सन्मुख होकर प्रगट कर। समझ में आया? उपदेश में यह कहने में आया।

'**उपदेशादिक में...**' अर्थात् उसने कहा ऐसे उपयोग को जोडे तो कर्मकाण्ड में प्रवृत्ति होती है। कहो, समझ में आया कुछ? सुनने को आया है वहाँ राग मन्द है। अब उसको उपदेश मिला, सत्समागम मिला, उपदेश में आया, सत्समागम में आकर कहा कि देखो भाई! यह आत्मा का हित कर हित। आत्मा का हित स्वभावकी दृष्टि, स्वभाव का निर्णय, ज्ञान और रमणता ऐसा कहा। उसमें '**उपयोग को लगाये तो धर्मकार्यों में प्रवृत्ति हो; और निमित्त न बने व स्वयं पुरुषार्थ न करे तो...**' निमित्त बने ऐसे का ऐसे। कोई पुरुषार्थ .. उसका ठिकाना कुछ न मिले। समझ में आता है? लो यह याद आया। समझ में आया कुछ?

तथा निमित्त तो बने। कहते है। अन्दर राग मन्द भी है। ऐसे दो बात। क्या कहा? मन्द राग है, उपदेश का निमित्त मिला दो एक हुआ। उसमें स्वयं पुरुषार्थ न करे निर्णय करने का। हो गया। राग मन्द का काल चला जायेगा। उपदेश मिला वह भी चला जाये। '**पुरुषार्थ न करे...**' देखो! तत्त्व के निर्णय का ज्ञान और रमणता का पुरुषार्थ करे नहीं। और कोई '**अन्य कार्यों में ही प्रवर्ते,...**' राग मन्द है, क्रियाकाण्ड में प्रवर्तता है। समझ में आया? किसी कि सेवा करे और किसी का यह करुँ, किसी

का यह करे पूरा काल उसमें गया, मन्दराग हुआ तेरे में। वास्तविक निर्णय करने से सम्यग्दर्शन आदि में अवसर गुमाया। कहो, समझ में आया कुछ?

परन्तु अन्य कार्यो में '**परन्तु मन्द रागादि सहित प्रवर्ते।**' क्यों कि राग मन्द है। क्रोध, मान, माया, लोभ मन्द हुए है और उपदेश मिला है, परन्तु उपदेश मिला है फिर भी पुरुषार्थ करता नहीं। तो मन्दरागादि का काल दूसरे कार्य में चला जायेगा। किसीकी प्रकृति कोमल, मृदु या क्रियाकर्म, इसका यह करना, इसका यह करना, इसका यह करना। यह करना। ऐसे के एसे चोर्यासी के अवतार में चला जायेगा। भटकने लगेगा। निर्णय करने का समय चला गया। कहो, समझ में आया?

'**मन्द रागादि सहित प्रवर्ते। – ऐसे अवसर में उपदेश कार्यकारी है।**' लो! मन्दरागादि सहित जब हो ऐसे अवसर में उसको उपदेश मिले तो वह पुरुषार्थ करने के लिये कार्यकारी है। तब उपदेश कार्यकारी है, वरना उपदेश क्या करे? उपदेश तो निमित्तमात्र है। '**विचारशक्तिरहित जो एकेन्द्रियादिक हैं, उनके तो उपदेश समझने का ज्ञान ही नहीं है;...**' एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, मिन बिना प्राणी उनको तो बिचारे को कुछ ऐसे के ऐसे अपनी ऊल्टी दशा से पड़ा है।

'**और तीव्र रागादिसहित जीवों का...**' एक बात। विचारशक्ति रहित एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय असंज्ञी पंचेन्द्रिय को '**उपदेश समझने का ज्ञान ही नहीं है;...**' एक बात। इसलिये वहाँ से निर्णय करने का उपदेश उसको होता नहीं। दूसरा '**तीव्र रागादिसहित...**' जिसका राग ही स्त्री, लडके, कुटुम्ब में तीव्र राग और ममता... ममता... ममता... लोलुपता... लोलुपता... लोलुपता... इसका हिन्दी क्या होगा? आसक्ति। ...

श्रोता :- लोलुपता।

पूज्य गुरुदेवश्री :- लोलुपता.. लोलुपता.. यह व्यवहार में यह मेरा लडका, यह मेरी लडकी। पच्चीस लोग हो तो इस लडकी को प्रसुति हुई, इस लडके की शादी की। यह .. करना, इसका यह करना। चला गया ऐसे के ऐसे। हिमन्तभाई!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसको नहीं है। उसको तो मकान है। मकान का किराया, मकान .. गाँव के चाचे, उकने चाचा और चाची है दोनों। देखने का टाईम कहाँ है? कहो, मनुभाई! थे कि नहीं?

कहते है कि एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, पशु को बिचारे को उघाड ही

नहीं है। वह तो ज्ञानरहित है क्या करें? दूसरे तीव्र रागवाले जो जीव है, उघाड है, परन्तु तीव्र राग में जुड़ गये हैं। तीव्र राग, द्वेष, मान, माया, लोभ, कमाना, बडाई यह करना, यह करना। दूसरे से अधिक, ज्यादा और नोकर में, अमलदार में, दुकान में, सेठाई में आदि आदि.. बडाई... बडाई में मोहनभाई!

'**तीव्र रागादिसहित जीवोंका उपयोग लगता नहीं है।**' हितोपदेश। भाई हमको तो कुछ पकड में नहीं आता। गोली लेकर बैठे है तीव्र राग और द्वेष की अन्दर में। आप क्या कहते है कुछ पकड में नहीं आता। कहाँ से पकड में आये? पकड गया है कोई दूसरा। उपयोग के प्रती राग, द्वेष, तृष्णा और ममता में गहरे, दुकान में धन्धे का विचार करता है लो! अन्दर में चलता है। धन्धे ऐसा... ऐसे... ऐसे... ऐसा कोई कह दे तो? ऐसा होगा। होली चलती ही रहती है। तीव्र राग, तीव्र द्वेष, तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र लोभ, तीव्र प्रशंसा और तीव्र बन्ध। विषय है। कहो, समझ में आया?

'**तीव्र रागादिसहित जीवों का उपयोग उपदेश में लगता नहीं है।**' उपदेश में लगता नहीं ऐसा कहते है। .. .. बात है उसमें। तीव्र राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभवाले का उपयोग उपदेश में लगता नहीं। ... ऐसे देखे या ऐसे देखे। सुखे... सुखे.. सुखे.. राग तीव्र है न? यह वीतरागकी बात सुखी लगे। तीव्र रागवाले उपदेश में जुड़ते नहीं। उपदेश क्या करता है उसका उपदेश ही लागु नहीं करता है। वह तो हलाहल.. हलाहल... बाहर की बात। ऐसे कमाना, ऐसा करना, बच्चे का ऐसा, स्त्री का ऐसे, किसीकी सगाई करा देना इसका यह करना सारी होली ही चलती है।

श्रोता :- बुजुर्ग का काम है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बुजुर्ग होली का नारियेल होते हैं। समझ में आया? कहीं मरकर चले जायेगा। .. कोई साथ में जायेगा? अरे..! बापा! बहोत करते थे हमारे लिये हों! तेरि लिये क्या उसके लिये भी कुछ नहीं किया उन्होंने। बहोत देखा है।

'**तीव्र रागादिसहित जीवो का उफयोग उपदेश में लगता नहीं है।**' ऐसा पहले तो कहाँ। दो बात ली है न? अब दोनों बातों को एक करते है। जिसे विचारशक्ति नहीं वह क्या करे बिचारा? और जिसको तीव्र रागवाले को उपयोग जुडता नहीं। '**इसलिये जो जीव विचारशक्तिसहित हों,...**' उघाड कुछ मिला है। ज्ञान, दर्शन और वीर्य का उघाड है। कहो, समझ में आया? '**तथा जिनके रागादि मन्द हों;...**' वर्तमान में राग-द्वेष मन्द... मन्द... मन्द... कम हो। '**उन्हें उपदेश के निमित्त से...**' उन्हें

उपदेश के निमित्त से '**धर्म की प्राप्ति हो जाये तो उनका भला हो;...**' लो! उस समय उनको जो उपदेश मिलता है और जो पुरुषार्थ करता है उन्हें धर्म की प्राप्ति हो जाये, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी तो उसका भला हो जाये। उसी समय उसका उपदेश कार्यकारी हो जाये .. और मिला परन्तु मन्द राग में समय पसार कर दे या दूसरे मन्द राग के कार्य में समय पसार करे। निर्णय तो करे नहीं। समय उसका चला जाये। इसलिये पुरुषार्थ करने के प्रसंग में पुरुषार्थ करो ऐसा कहते हैं।

(श्रोता :- प्रमाणवचन गुरुदेव!)

रविवार, दि.९-१२-१९६२
अधिकार - ९, प्रवचन नं.-२७

यह मोक्षमार्गप्रकाशक चलता है, नौंवा अध्याय। टोडरमलजी कृत है। उसका मोक्षमार्ग का स्वरूप क्या है वह चलता है। शिष्यने प्रश्न किया था कि हमें धर्म का पुरुषार्थ है, वह कोई काल आये, भवितव्य हो तो पुरुषार्थ होगा या कर्म आदि की मन्दता होने से हमें धर्म का पुरुषार्थ होगा? और हमारा धर्म का पुरुषार्थ हम से हो तो उपदेश तो सब सुनते हैं। कोई पुरुषार्थ करते नहीं, कोई पुरुषार्थ कर सकता है उसका कारण कौन? उसके उत्तर में यह बात चलती है। समझ में आया?

यह आत्मा है आत्मा, वह अनन्तकाल से मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्या राग-द्वेष उसमें परिभ्रमण करता है, तो उसमें अपना धर्म का पुरुषार्थ करने में कोई कल पक जाये, भवितव्य हो जाये, कर्म की मन्दता, अभाव हो जाये तो पुरुषार्थ होगा? या अपना पुरुषार्थ करने से धर्म होगा? और पुरुषार्थ से यदि होता हो (तो) उपदेश तो सब सुनते हैं, कोई पुरुषार्थ करता है, कोई नहीं करता है उसका कारण क्या?

यह उसका उत्तर चलता है।

देखो! '**एकेन्द्रियादिक...**' प्राणी हैं एकन्द्रिय, पृथ्वी, अग्नि, वायु, वनस्पति, हरितकाय वह '**तो धर्मकार्य करने में समर्थ ही नहीं है,...**' क्योंकि उसमें विकास--ज्ञान, दर्शन का उघाड--विकास भी नहीं है और तीव्र कषाय उसमें है। उसमें कोई साधन मन आदि तो है नहीं। तो वहाँ एकेन्द्रिय प्राणी... एकेन्द्रिय समझते हो? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति, वह '**तो धर्मकार्य करने में समर्थ ही नहीं है, कैसे पुरुषार्थ करे? और तीव्रकषायी पुरुषार्थ करे...**' मनुष्यपने में कोई प्राणी तीव्र कषायी हो, अशुभभाव हो, हिंसा, जूठ, चोरी, विषयभोग वासना, बहुत परिणाम की क्रुरता हो वह '**पुरुषार्थ करे तो पाप ही का करे,...**' वह तो पाप का पुरुषार्थ करे। जिसके परिणाम में तीव्र हिंसा, जूठ, चोरी, विषयभोग वासना है वह तो पाप का ही पुरुषार्थ करे। उसको तो धर्म का पुरुषार्थ हो सकता नहीं।

'**धर्मकार्य का पुरुषार्थ हो नहीं सकता।**' अस्ति-नास्ति की। '**इसलिये जो विचारशक्तिसहित हो...**' सेठ! है? '**विचारशक्तिसहित हो...**' जो कोई प्राणी को ज्ञान-दर्शन का आवरण मन्द है और विकास हुआ है, विचार करने की जिसमें ताकात आई है। '**और जिसके रागादिक मन्द हो...**' दो बात है। विचार करने की ताकात है। लट, चींटी, मंकोडे उसको तो है नहीं। मनुष्यपने में तो विचार करने की ताकात है। और मन्द रागादि हो। राग कुछ मन्द-मन्द अर्थात् लोभ, क्रोध, मान, माया, लोभ बहुत मन्द पुरुषार्थ से (होते) हो, शुभभाव हो। '**वह जीव पुरुषार्थ से...**' ऐसा प्राणी पुरुषार्थ करे तो '**उपदेशादिक के निमित्त से तत्त्वनिर्णयादि में उपयोग लगाये...**' जिसको ज्ञान का विकास पंचेन्द्रियपने मनुष्य में है और राग की मन्दता जिसमें परिणमती हो, उसको उपदेश मिले तो वह विचार करे और '**तत्त्वनिर्णयादिक में उपयोग लगाये...**' क्या?

मैं आत्मा क्या हूँ? मैं आत्मा राग और पुण्य के विकल्प जो शुभाशुभ भाव से मैं भिन्न हूँ। मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप चिदानन्द मूर्ति हूँ। सिद्ध समान मेरा निर्मल शुद्ध ज्ञायकभाव है और जो पुण्य-पाप के भाव उठते हैं वह विकार है, मलिन है, आस्रव है, नया बन्ध का कारण है। और अजीव, शरीर, वाणी कर्म है वह मेरे से भिन्न है। ऐसा निर्णय करने में '**उपयोग लगाये तो उसका उपयोग वहाँ लगे...**' ऐसा कहा है। क्या कहते हैं, समझ में आया?

अनादिकाल में कभी आत्मा.. मैं कोन हूँ और विकार क्या है? और शरीरादि

क्या है? उसकी भिन्नता का भेदज्ञान कभी एक सेकण्ड भी किया नहीं। और कहते हैं कि कब पुरुषार्थ काम कर सके? विचारशक्ति है, राग की मन्दता है, सुनने को आया है तो राग मन्द है, शुभभाव आदि, उसमें उपदेश मिले कि तुम्हारा आत्मा अहो..! ज्ञाता-दृष्टा आनन्द है, आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत् नाम शाश्वत ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। और शुभ और अशुभभाव दया, दान, व्रतादि का भाव है वह पुण्य है और हिंसा, जूठ, चोरी, विषयभोग वासना वह भाव पाप है। वह दोनों ही पुण्य-पाप से मेरी चीज भिन्न है ऐसा तत्त्व का निर्णय करे तो निर्णय में उपयोग लगावे तो उपयोग लग जाये। ऐसा। नवनीतभाई! समझ में आया? परन्तु ऐसा उपयोग लगाने का कभी पुरुषार्थ किया नहीं।

‘**तत्त्वनिर्णयादि में उपयोग...**’ उपयोग समझे? ज्ञान का भाव मैं आत्मा हूँ, रागादि विकार भिन्न है, कर्म, शरीर तो मिट्टी भिन्न है, अजीवतत्त्व भिन्न है, ऐसा अंतर में निर्णय सम्यग्दर्शन प्रगट करने को करे तो उसका उपयोग लग जाये। परन्तु विचारशक्ति जिसको नहीं (है) और जिसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, अशुभ तीव्र परिणाम वर्तते हैं उसको तत्त्व निर्णय करने का प्रसंग--अवसर है नहीं। सेठी! ‘**तब उसका भला हो।**’ अनन्तकाल से सम्यग्दर्शन का प्रयत्न उसने किया नहीं। समझ में आया? आता है न, वह छह ढाला में आता है।

मुनिव्रतधार अनन्तबैर ग्रीवक उपजायो,
पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।

आता है वह छह ढाला में। दौलतराय, दौलतराम कहते हैं कि अरे..! प्राणी! तु जैन दिगम्बर मुनि भी अठ्ठाईस मूलगुण पालनेवाला, पंच महाव्रत पालनेवाला अनन्त बार हो गया, अनन्त बार हुआ। और मुनिव्रत धार अन्तिम ग्रैवेयक तक, स्वर्ग का ग्रैवयक है नौंवी वहाँ अनन्त बार ऊत्पन्न हुआ। परन्तु आत्मा का सम्यग्दर्शन क्या चीज है उसको पहचाना नहीं। आत्मज्ञान किया नहीं और आत्मज्ञान बिना उसके जन्म-मरण का अंत कभी आता नहीं। तो कहते हैं कि आत्मज्ञान करने को मन्द कषायवंत प्राणी, सत् समागम का उपदेश मिले और निर्णय करे तो निर्णय में उपयोग लग जाय। नवनीतभाई!

‘**यदि इस अवसर में भी तत्त्वनिर्णय करने का पुरुषार्थ न करे,...**’ अहो..! मनुष्यपना मिला, ज्ञान का उघाड़--विकास, विचार करने की ताकात मिली और राग की मन्दता का भी पुण्य परिणाम का शुभभाव हुआ, उसमें भी आत्मा क्या? विकार क्या? जड़ क्या? उसका निर्णय करने में उपयोग न लगावे। ‘**यदि इस अवसर में**

भी तत्त्वनिर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गँवाये...' अनादि काल प्रमाद... प्रमाद... प्रमाद... आलस... आलस... आलस। आलस का अर्थ? संसार में आलसी होकर पड़ा है ऐसा नहीं। संसार के सब काम में होशियार, अपने स्वरूप का पुरुषार्थ करने में प्रमादी।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- संसार काम में कितने ही हुशियार दिखते हैं न। ऐसा करो, वैसा करो, पांच-पचास लाख मिला, ऐसी धूल मिले, धूल है कि नहीं? कागज़ मिले। कागज़, क्या कहते हैं? तुम्हारी नोट। वह तो पूर्व का पुण्य हो तो मिलती है, परन्तु पुरुषार्थ कितना करते हैं। वहाँ पुरुषार्थ लगाते हैं, उसको यहाँ प्रमाद कहने में आता है। करते हैं पर में पुरुषार्थ उसका नाम प्रमाद। आत्मा राग रहित, पुण्य रहित सच्चिदानन्द मूर्ति आत्मा क्या है? उसका निर्णय करने का अवसर मिले फिर भी पुरुषार्थ करते नहीं।

'**प्रमाद से काल गँवायें - या तो मन्दरागादि सहित...**' थोड़ी दूसरी बात करते हैं। मन्द रागादि--कषाय मन्द हुआ, पतला हुआ कुछ। '**विषयकषायोंके कार्य में ही प्रवर्तें,...**' संसार के विषय कषाय, कमाना, भोग आदि में मन्द राग से प्रवर्ते। '**या व्यवहारधर्म कार्यों में प्रवर्तें,...**' दो बात ली। कौन-सी बात लैते हैं? ज्ञान का विकास, क्षयोपशम तो है विचार करने की ताकात और राग की मन्दता भी हुई है, मन्दता भी हुई है। और उस मन्दता में मन्द कषाय में विषयकषाय में प्रवर्ते या मन्द राग में '**व्यवहारधर्म कार्यों में प्रवर्तें,...**' दो बात क्या कही? मन्द राग हो, विचारशक्ति हो तो मन्द राग में या मन्द कषाय, विषय कषाय में प्रवर्ते अथवा मन्द राग, पुण्यभाव से धर्म कार्य--ये दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, तप उसमें प्रवर्ते, तो वह व्यवहारकार्य है तो पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया? '**व्यवहारधर्मकार्यों में प्रवर्तें; तब अवसर तो चला जायेगा...**' क्या कहा? एय..! देवानुप्रिया! शान्तिभाई! क्या कहते हैं इसमें?

श्रोता :- व्यवहार धर्मकार्य साधन है न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- साधन-फाधन है तो अनन्त बैर हुआ। अन्तिम ग्रैवेयक तक पंच महाव्रत पाले, नौंवी ग्रैवेयक अनन्त बार गया और राग की मन्दता इतनी थी कि जिसके साथ में शुक्ललेश्या थी। फिर भी सम्यग्दर्शन पाये बिना जन्म-मरण का अन्त आता नहीं। वह तो पुण्यबन्ध की क्रिया है। राग मन्द में धर्मकार्य, धर्मकार्य का अर्थ?

दया पालना, व्रत पालना, भक्ति करना, पूजा करना, यात्रा करना, सेवा करना ऐसा कोई भाव शुभ में प्रवर्ते, पुण्यबन्ध हो। पर तत्त्व का निर्णय करने में उपयोग लगावे नहीं तो सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना ही अवसर चला जाये। समझ में आया? एय... देवानुप्रिया! कहाँ तक तत्त्व का निर्णय करना? ऐसा कहते है यहाँ। यह करना। शुभभाव, उसमें रुके, अवसर तो चला जाये। राग की मन्दता हुई और यहाँ ज्ञान का क्षयोपशम है विकास, विचार करने की ताकात, अपना तत्त्व क्या है? सम्यग्दर्शन प्रगट करने का प्रयत्न करे नहीं और शुभकार्य में प्रवर्ते (तो) अवसर चला जायेगा। जन्म-मरण की लाठी सर पर जन्म-मरण खड़े रहे। अनन्तकाल अनन्त बैर ऐसे शुभभाव की क्रिया अनन्तबार करी। देखो!

'**व्यवहाधर्मकार्योंमें प्रवर्ते;...**' सेठी! नवनीतभाई! बस! या तो अपने दान करना या पूजा करना या भक्ति करना या व्रत पालना। वह सब तो शुभभाव है, वह धर्म नहीं। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। तो मन्द रागादि के काल में ऐसे मन्द राग की, धर्मकार्य की प्रवृत्ति में जुड़ जाये, व्यवहार धर्म, (तो) परमार्थ धर्म आत्मा चिदानन्द मूर्ति क्या है उसका अनुभव करने का प्रयत्न करे नहीं तो अवसर चला जाये। समझ में आया?

पहले तो कहा था कि विचारशक्ति न हो वह प्राणी बेचारे क्या करे? एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय। और विचारशक्तिवाला प्राणी मनुष्य है, परन्तु उसको तीव्र राग, लोभ, कमाना, खाना-पीना, विषय भोगना ऐसा तीव्र कषाय, तीव्र लोभ, उसको तो सुनने का भी अवसर मिलता नहीं। और जब राग मन्द हुआ और सुनने का अवसर मिला, उसमें उपदेश सुना कि तेरा आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से, राग से भिन्न है। स्वभाव, स्वभाव केवल शुद्ध चैतन्य है उसका तुम निर्णय करके अनुभव करो। राग, पुण्य, पाप, दया, दान भाग है वह विकृत विभाव बन्ध का कारण है, भगवान आत्मा अबन्धस्वरूपी चिदानन्द मूर्ति है। उसका विवेक करो, भेदज्ञान करो, उपयोग वहाँ लगाओ। ऐसा उपदेश दिया, परन्तु उपयोग करे नहीं और '**व्यवहारधर्मकार्यों में प्रवर्ते;...**' काम शुभभाव का, '**तब अवसर तो चला जायेगा...**' कहो, बराबर है वजुभाई? या .. में लगे और निवृत्ति में शुभभाव में लगे ऐसा कहते हैं।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- क्या कहा दस मिनिट का?

श्रोता :- धर्म का काम तो दस मिनिट का है... कर लेना चाहिये न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा..! ऐसा कहे कि मृत्युकाल में जरी भगवान-भगवान कर ले। परन्तु भगवान-भगवान करे वह शुभभाव है, धर्म नहीं, सुन तो सही। धर्म अनन्त काल में एक सेकण्डमात्र भी किया नहीं। एक सेकण्डमात्र भी धर्म हो और जन्म-मरण सर पर रहे ऐसा कभी बनता नहीं। जन्म-मरण का नाश करनेवाले आत्मा का सम्यग्दर्शन,... सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा शुद्ध चिदानन्द मूर्ति दृष्टि में लेकर, विकार से पराङमुख होकर, स्वभाव के सन्मुख होकर कभी सम्यग्दर्शन का निर्णय अनादि अज्ञानी अनन्त काल में किया नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं, '**मन्दरागादि सहित विषयकषायों के...**' ऐसे होते हैं न प्राणी? बहुत लोलुपता नहीं होती, बहु लोलुपता न हो विषयकषाय में। मन्दराग हो और विषय-कषाय का सेवन करे। और मन्द राग हो तो पुण्य, दया, दान के धर्म में जुड़े। नवनीतभाई! '**तब अवसर तो चला जायेगा और संसार में ही भ्रमण होगा।**' चार गति में भ्रमण रहे। पुण्य हो, पुण्य से स्वर्ग मिले, स्वर्ग में से निकलकर बाद में मनुष्य और पशु योनिमें चला जाये। मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दर्शन बिना उसका एक भी भव घटता नहीं। समझ में आया?

'बहुरी' ढुंढारी भाषा है। '**तथा इस अवसर में जो जीव पुरुषार्थ से तत्त्वनिर्णय करने में उपयोग लगाने का अभ्यास करे।**' देखो! कहते हैं कि ज्ञान का विकास मिला, रागकी मन्दता (हुई), लोभ मन्द हुआ और उपदेश सत्य सुनने में आया। '**इस अवसर में जो जीव पुरुषार्थ से तत्त्वनिर्णय करने में उपयोग लगाने का अभ्यास करे।**' देखो, यह अभ्यास। यह अभ्यास है कि नहीं? ज्ञान के उपयोग में यह चीज क्या है? यह वस्तु क्या है? परमार्थ सारी चीज़ कहते हैं, क्या है आत्मा? और यह विकृतभाव उठते हैं पर तरफ का लक्ष्य होकर अथवा मन का संग होकर विकल्प उठते हैं, यह स्वभाव क्या? यह क्या? उसका अन्तर में निर्णय करने का उपयोग लगावे '**उनके विशुद्धता बढेगी;...**' उसका परिणाम निर्मल हो। तत्त्व निर्णय करने का अभ्यास में परिणाम निर्मल हो, निर्मल परिणाम हो।

'**उससे कर्मोंकी शक्ति हीन होगी,...**' परिणाम निर्मल होने से पूर्व का कर्म पड़ा हो उसकी भी हीन शक्ति हो जाये। '**कुछ काल में अपने आप दर्शनमोह का उपशम होगा;...**' परन्तु वह निर्णय करने का उपयोग लगाये तो। ऐसे के ऐसे सम्यग्दर्शन हो जाये पुरुषार्थ बिना, ऐसी बात है नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं कि परिणाम की विशुद्धता विचार करने से होती है, कर्म की शक्ति हीन हो जाये,

‘**कुछ काल में अपने आप दर्शनमोह का उपशम...**’ दर्शनमोह कर्म है (उसका) उपशम हो जाये। ‘**तब तत्त्वोंकी यथावत् प्रीतित आयेगी...**’ तब जाकर तत्त्व के विषय में मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, यह रागादि मुझे करने लायक चीज नहीं, अजीव तो मेरी चीज में शरीर, कर्म तो है ही नहीं, ऐसी तत्त्व प्रतीति सम्यग्दर्शन में आ जाये तब उसको धर्म सम्येग्दर्शन कहते हैं। कहो, भगवानजीभाई!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहाँ आया? किसने कहा यहाँ?

श्रोता :- रागादि मन्द हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री :- रागादि मन्द के काल में, तत्त्वनिर्णय करे तो अभ्यास लगावे तो निर्णय करे ऐसा कहा है। उसके काल में। उसके द्वारा ऐसा नहीं कहा है।

श्रोता :- उसके काल में व्यवहारधर्म में रुक जाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री :- तब तो हो गया। कहाँ न यहाँ। वह तो पहले आ गया है। शुभराग के काल में शुभराग के आचरण में रुक जाये और अपना रागरहित निर्णय न करे (तो) कभी उसको आत्मधर्म होता नहीं, सम्यग्दर्शन होता नहीं। सम्यग्दर्शन बिना उसके राग की मन्दता की सब क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, जात्रा सब पुण्यबन्ध का कारण है। स्वर्ग और धूल मिलेगी। धूल समझे? यह पैसे। पाँच-पच्चीस लाख मिले वह धूल मिलेगी। आत्मा की शान्ति उसमें है नहीं। ओहोहो..!

‘**अपने आप दर्शनमोहका उपशम होगा; तब तत्त्वोंकी यथावत् प्रतीति आयेगी...**’ देखो! ‘**तब तत्त्वोंकी...**’ आत्मा के ज्ञान में और राग में, स्वभाव में, स्वभाव की प्रतीति होने से विभाव मेरे से पृथक् उसकी भी प्रतीति हुई। स्वभाव चैतन्य ज्ञानन्द हूँ ऐसी प्रतीत होने से स्वभाव से भिन्न (है) उसका मिलान नहीं है, ऐसी वृत्ति उठती है उसकी भी श्रद्धा हुई, वह विकार है, स्वभाव में बेकार है। स्वभाव में वह विकार है नहीं। ऐसी सम्यग्दर्शन में प्रतीति हुए ‘**सो इसका तो कर्तव्य तत्त्वनिर्णय का अभ्यास ही है,...**’ ऐ देवानुप्रिया! जरा हँसे अन्दर में।

‘**सो इसका तो कर्तव्य...**’ उसको करने (योग्य) काम ‘**तत्त्व निर्णयका अभ्यास ही है,...**’ वह तो करता नहीं। तत्त्व क्या है (उसका) निर्णय नहीं है, चला जाये ऐसा अन्धे अन्धा। अनादिकाल से शुभभाव किये, अशुभ हो तो पाप बन्ध जाये, शुभ हो तो पुण्य बन्ध जाये, परन्तु बन्ध रहित आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रगट किये बिना, धर्म की पहली शुरुआत भी उसको होती नहीं। समझ में आया?

क्या कहा? शुभभाव के काल में शुभभाव का आचरण करते-करते काल गँवाये और शुभ परिणाम के काल में तत्त्वनिर्णय का अभ्यास काल में कहते हैं। उस भाव से होता है ऐसा नहीं। कठिन कहाँ है? इसमें तो मक्खन जैसी बात है। समझ में आया? कषाय मन्द है, सुनने का भाव है, क्या चीज है ऐसा सुनने का भाव है तो वह राग मन्द है, शुभभाव है, पुण्य है। उस काल में पुण्यभाव में पुण्यभाव के आचरण में रुक जाये और पुण्यभाव से रहित मेरी चीज भिन्न है, ऐसा अनुभव में निर्णय करे नहीं तो अवसर चला जाये। चार गति मिले, उसमें कोई गति का अभाव होता नहीं। कहो, समझ में आता है कि नहीं भाई? यह तुम्हारी हिन्दी चलती है थोड़ी-थोड़ी, बहुत हिन्दी नहीं चलती है। कहो, समझ में आया? यह टोडरमलजी का मोक्षमार्ग है, मोक्षमार्ग प्रकाशक है न? नौंवा अध्याय है। बहुत अच्छा उन्होंने हज़ारों शास्त्र का निचोड़ करके बनाया है। मोक्षमार्गप्रकाशक।

'**सो इसका तो कर्तव्य...**' आत्मा का कर्तव्य, विचारशक्ति के काल में और राग मन्द, लोभ मन्द के काल में तत्त्व निर्णय का अभ्यास वही इसका कर्तव्य है। एय..! देवानुप्रिया! काम यह है उसका। वह तो मानों कुछ काम ही नहीं है। आत्मा का कोई निश्चय करना अनुभव में, यह राग कौन है? पुण्य कौन है? देह कौन है? मैं चिदानन्दज्योत अंतर में पड़ी हूँ वह कौन चीज़ है? ओहो..! उसके स्वभाव सन्मुख होकर विभाव से विमुख होकर निर्णय करने का अभ्यास वह उसका कर्तव्य है, वह आत्मा का कार्य है।

वह पहले से कहा था न? कि तेरा यह कार्य है वह तुझे कहते हैं। कर्म को घटाना वह तेरी शक्ति नहीं। वह तो कर्म उसके कारण से घट जाये। वह तो जड़ है, जड़ का कर्ता-हर्ता आत्मा है नहीं, वह तो मिट्टी-धूल है, जैसी यह मिट्टी है ऐसा आठ कर्म अजीव, मिट्टी--धूल है। वह घटना-बढ़ना उसके कारण से है, तेरी शक्ति का उसको आधार नहीं है। तेरा कर्तव्य तो पुण्य कषाय के मन्द के काल में, विचार शक्तिके योग में भिन्न भेदज्ञान का अभ्यास करना वह तेरा कर्तव्य है। वह कर्तव्य तो अनन्तकाल में किया नहीं। दिगम्बर जैन साधु हुआ, पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले, फिर भी राग वह धर्म है, उसको मैं पालता हूँ, धर्म करता हूँ। ऐसा मान रखा तो मिथ्यादृष्टिपना छूटा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, तत्त्वनिर्णय का अभ्यास ही उसका कर्तव्य है। '**इसीसे...**' '**इसीसे तत्त्वनिर्णय का अभ्यास ही है, इसीसे दर्शनमोह का उपशम तो स्वयमेव होता है;...**'

कर्म का उपशम कर्म के कारण से होता है, तुझे उसका काम करना (नहीं है)। तेरा काम तो अंतर ज्ञान उपयोग में आत्मा कौन? विकार कौन? उसका उपयोग लगाकर निर्णय करना वह तेरा काम और तेरा अभ्यास है। उस अभ्यास में लोगों को मजा नहीं (आती है कि क्या है? मजा नहीं आती है। कहते हैं कि बाहर में वाँचन करना हो, सुनना हो, बाह्य प्रवृत्ति करनी हो तो शुभोपयोग उसमें लग जाये, परन्तु यह निर्णय करने में? अरे.. बापु! निर्णय करने का तुझे अवसर मिला है। आगे कहेंगे, सब अवसर मिला है। कोई अवसर बाकी नहीं है। मनुष्यपना मिला, पाँच इन्द्रिय, निरोग शरीर, सत् समागम, श्रवण का काल श्रवण में मिला और अभी निर्णय करना वह तेरा काम है, वह तुने कभी अनन्तकाल में किया नहीं।

'**तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्**' उमास्वामी महाराज का दूसरा सूत्र। पहला सूत्र '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणी मोक्षमार्गः...**' दूसरा सूत्र '**तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्**' वह निश्चय अन्तर अनुभव में (होता है)। अनन्तकाल में पुण्य की क्रिया में रुक गया। बस! दया, दान, तप, व्रत, भक्ति, पूजा किये, दान पाँच-पचास हजार, लाख, दो लाख खर्च कर दिये, हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं है। वह तो राग की मन्दता की क्रिया, पुण्य की क्रिया है, धर्म नहीं। ओहोहो...! समझ में आया? धर्म की क्या चीज़ है, ... समय वर्ते सावधान ऐसा बोले ब्राह्मण। यानी अब कन्या लाने की तैयारी। समय हो गया है। समय तो धूल में गया अनन्त बैर।

यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आता है न वह? बनारसीदास में आता है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' मेरी चीज तो सिद्ध सर्वज्ञ जैसे ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा ही मैं सर्वज्ञ ज्ञाता-दृष्टा शक्तिरुप से हूँ। ऐसा अंतर में निश्चय करने का पुरुषार्थ किया नहीं (तो) दर्शनमोह नाश नहीं हुआ। पुरुषार्थ करे तो दर्शनमोह का नाश स्वयमेव हो जाये।

'**उसमें जीव का कर्तव्य कुछ नहीं है।**' '**उसमें...**' उसमें अर्थात्? कर्म का नाश करने में जीव का कुछ कार्य नहीं है। उसका कार्य तो अपना स्वभाव का निर्णय और अनुभव करना वह तेरा कार्य है। दर्शनमोह तो उसके कारण से नाश--गल जायेगा। '**तथा उसके होने पर जीवके स्वयमेव सम्यग्दर्शन होता है।**' अर्थात् दर्शमनोह का नाश और तत्त्व का निर्णय '**उसके होने पर जीवके स्वयमेव सम्यग्दर्शन होता है।**' सहज होता है।

'**और सम्यग्दर्शन होने पर...**' देखो! सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा कैसी हो जाती है?

'तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्'। श्रावक और मुनि होने से पहले ऐसा सम्यग्दर्शन होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन के बिना श्रावक भी हो सकता नहीं, सच्चे मुनि भी हो सकता नहीं। द्रव्यलिंगी हो, अनन्तबार द्रव्यलिंग धारण किया, परन्तु ऐसा आत्मा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति बिना उसका सब निष्फल गया। **'और सम्यग्दर्शन होने पर श्रद्धान तो यह हुआ...'** क्या श्रद्धान हुआ? देखो!

'मैं आत्मा हूँ,...' मैं आत्मा हूँ। शरीर, वाणी, कर्म आदि मैं नहीं। और मेरे में जो पर्याय में पुण्य-पाप की झलक शुभाशुभभाव उठते हैं, वह मैं नहीं। मैं तो आत्मा हूँ। समझ में आया? **'मैं आत्मा हूँ, मुझे रागादिक नहीं करना।'** देखो! रागादि मेरा है नहीं। इसका अर्थ ऐसा लिया कि रागादि मुझे करने लायक नहीं। रागादि मुझे नहीं करने। शुभ और अशुभभाव मुझे नहीं करना है ऐसी श्रद्धा होती है। ओहो..! सम्यग्दर्शन में मैं आत्मा हूँ। शुभ और अशुभभाव नहीं करना... नहीं करना है। क्योंकि मैं कहाँ रागवाला हूँ? मैं तो ज्ञाता-दृष्टा शुद्ध चैतन्य हूँ। सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा कैसी होती है उसका भी साथ में लक्षण कहते हैं। नवनीतभाई!

सम्यग्दर्शन हुआ तो ऐसी प्रतीत होती है कि मैं आत्मा हूँ, मैं विकार नहीं, मैं शरीर नहीं, मैं कर्म नहीं, जड़ की और पर की क्रिया मेरे में नहीं, मैं उसका करनेवाला नहीं, मैं तो आत्मा हूँ। **'मुझे रागादि नहीं करना...'** मुझे राग और विकार (नहीं करने हैं)। ये क्या कहते हैं? पर का न करना वह तो उसमें आ गया कि पर का कर्तव्य मेरा नहीं, परन्तु अपनी पर्याय में राग रहता है तो वह मुझे नहीं करना है ऐसी श्रद्धा हो जाती है। समझ में आया? रागादि नहीं करने की श्रद्धा है। मैं ज्ञायक चैतन्य हूँ। राग विकल्प उठते हैं उसको नहीं करने का भाव होता है। पर का तो कर्ता है ही नहीं। शरीर, वाणी, मन, जड़ उसकी क्रिया तो जड़ की जड़ से होती है, आत्मा उसका करनेवाला नहीं (है)। परन्तु सम्यग्दर्शन में ऐसी श्रद्धा हुई (कि) मैं तो आत्मा हूँ, अर्थात् मैं शुद्ध चिदानन्द, ज्ञाता-दृष्टा घन (हूँ), मुझे पुण्य और पाप का भाव नहीं करना है। लो! ठीक! सेठी! नहीं करना है, ऐसा आया। रागादि नहीं करना, शुभाशुभभाव नहीं करना।

'मुझे रागादिक नहीं करना, परन्तु चारित्रमोह के उदय से...' अर्थात् अपनी कमजोरी से, अपनी कमजोरी से **'रागादिक होते हैं।'** रागादिक होते हैं। परन्तु करने लायक है ऐसा नहीं। समझ में आया? बड़ा कठिन धर्म, भाई! धर्म तो उसने एक सेकण्ड भी धर्म की संभाल की नहीं। कहते हैं कि सम्यग्दर्शन धर्म हुआ तो क्या

हुआ उसमें? क्या आया? कि मैं तो आत्मा हूँ जानने-देखनेवाला। जैसे सिद्ध भगवान जानते-देखते हैं, मैं भी एक जानने-देखनेवाली चीज आत्मा हूँ। मुझे विकार नहीं करना है, मुझे शुभ-अशुभभाव नहीं करने हैं, शुभभाव भी मुझे नहीं करने हैं। ओहो..! कहा न? **'मुझे रागादिक नहीं करना,...'** उसमें यह आया कि शुभभाव भी मुझे नहीं करना है। परन्तु कमजोरी से रागादि हुए बिना रहता नहीं। कहो, देवानुप्रिया! रागादि नहीं करने की श्रद्धा हुई। शुभभाव न करने की श्रद्धा है। पढ़ो, क्या लिखा है पढ़ो। **'मुझे रागादिक नहीं करना,...'** राग, द्वेष, पुण्य, पाप, शुभभाव, अशुभ नहीं करनै हैं। मैं ज्ञायक हूँ, राग करने की बात मेरे ज्ञायक में है ही नहीं। मैं तो चैतन्य हूँ, ज्ञानपूँज हूँ, ज्ञान में राग करना स्वभाव में है ही नहीं। परन्तु चारित्रमोह कर्म का निमित्त और अपनी कमजोरी। उसका अर्थ यह। रागादिक होते हैं। शुभ-अशुभ राग होते हैं। सम्यग्दृष्टि को शुभराग, अशुभराग होते हैं। और अशुभराग जब न हो तब दया, दान, पूजा, यात्रा का शुभराग होता है, होता है।

'वहाँ तीव्र उदय हो...' जब अशुभभाव हो, पर्याय में कमजोरी से पापभाव हो **'तबतो विषयादि में प्रवर्तता है।'** तब तो विषय में कमाना और उसमें जुड जाता है। नहीं करना ऐसा दृष्टि में है। सम्यग्दृष्टि को दृष्टि में है कि नहीं करना है, ऐसा दृष्टि में है। परन्तु कमजोरी से पाप का भाव आता है तो विषय कषाय में जुड़ जाता है। दृष्टि में है कि मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। राग मुझे करने लायक नहीं। जड़ का काम मैं करता नहीं ऐसा सम्यग्दृष्टि, चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि की ऐसी श्रद्धा होती है। समझ में आया?

जब तीव्र विषयकषाय का भाव, तीव्र कषाय हो, विषयादि में, कषाय में, मान आदि में वृत्ति चली जाये **'और मन्द उदय हो...'** शुभभाव **'तो अपने पुरुषार्थ से धर्मकार्यों में...'** मन्द उदय के काल में शुभभाव में अथवा शुद्ध भाव में **'वैराग्यादि भावना में उपयोग को लगाता है;...'** राग से हटकर अपनी वैराग्यदशा का उपयोग लगाता है। **'उसके निमित्त से चारित्रमोह मन्द हो जाता है;...'** लो! इससे चारित्रमोह का बन्ध है न? वह मन्द होता जाता है।

'ऐसा होने पर देशचारित्र व सकलचारित्र अंगीकार करनेका पुरुषार्थ प्रगट होता है...' बाद में। सम्यग्दर्शन हुआ, राग करना मेरा काम नहीं, राग मेरे में आता है, तीव्र राग के समय तो विषयकषाय में लक्ष्य है, मन्द राग के समय में धर्मकार्य के शुभ में और वैराग्य सहित है तो शुभराग से रहित भी प्रयत्न चलता है। **'ऐसा**

होने पर...' ऐसी अंतर अनुभवदृष्टि में आगे बढ़ते-बढ़ते देशचारित्र श्रावक होता है। तब श्रावक होता है।

श्रोता :- काल ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- सब आ गया। क्या बाकी रहा?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- सब आ गया। किसने ना कहा? परन्तु इस तरह आया है। सिर्फ कहनेमात्र नहीं। स्वभाव और विभाव का भेद हुआ, सम्यग्दर्शन में भेदज्ञान हुआ और विभाव करने लायक नहीं है ऐसा भान, ज्ञान, श्रद्धान हुई, परन्तु विभाव हुए बिना रहते नहीं। कमज़ोरी का काल है। तो कमज़ोरी में दो प्रकार। जब तीव्र कषाय का अशुभभाव हो, तब तो विषय कषाय में जुड जायेगा व्यापार धन्धे में। दृष्टि में है कि करनेलायक नहीं है, आया है। उसमें उपयोग में जुड जायेगा। और मन्द राग हो तो शुभराग का कर्तव्य धर्म, देव, दया, पूजा, भक्ति में हो और वैराग्य, उससे भी रहित भावना करता है। सब राग मन्द करते-करते चारित्रमोह मन्द होने से, ऐसी जागृत दशा में रहते हुए देशचारित्र नाम श्रावकपद प्रगट होता है। बाड़े के श्रावक की बात नहीं है। अंतर की दशा की बात है। समझ में आया? सेठी! सेठ कहते हैं, लो सेठ, सेठी और सेठाई। क्या कहते हैं उसको? दीपचदन्जी सेठाई, सेठिया। एक बार तीनों थे यहाँ। सेठ, सेठी और सेठिया। दीपचन्दजी सेठिया। सेठिया। .. सेठिया है दीपचन्दजी, सरदार शहर।

कहते हैं कि भगवान आत्मा..! मैं आत्मा, आत्मा हूँ। देखो! मैं विभाव पुण्य-पाप नहीं। मैं आत्मा हूँ, मैं शुभ-अशुभभाव नहीं, मैं कर्म, शरीर, वाणी नहीं। मैं कुटुम्ब, परिवार, देश नहीं। मैं तो आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ। ऐसी सम्यग्दर्शन में श्रद्धा हुई। उसके साथ श्रद्धा आई कि राग शुभ हो या अशुभ हो, मुझे नहीं करना है, मुझे नहीं करना है, मुझे तो वीतरागभाव करना है। परन्तु कमजोरी से मन्द राग जब आया, तीव्र राग में तो विषयकषाय है, मन्द राग हुआ तो दया, पूजा, भक्ति, यात्रा उसमें भी लक्ष्य जाता है। और उस काल में राग से रहित की वैराग्य भावना भी होती है। वैराग्य भावना बढ़ते-बढ़ते राग घटनेपर देशचारित्र श्रावक के बारह व्रत लेने का विकल्प आता है और स्वरूप की स्थिरता का अंश बढ़ता है। समझ में आया? ओहोहो..!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- परन्तु कमजोरी किसके साथ मिलाता है? मिलान किसके साथ?

स्वभाव आत्मा अनन्त-अनन्त बल का पिण्ड आत्मा है, ऐसा मैं आत्मा हूँ। मैं आत्मा कमज़ोरी और रागवाला नहीं हूँ। मैं आत्मा अनन्तवीर्य, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनन्द चतुष्टय जो प्रगट भगवान को होते हैं, ऐसा अनन्त चतुष्टय संपन्न मैं हूँ। यह मैं आत्मा हूँ। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में ऐसे आत्मा की प्रतीत आती है। कमजोरी और राग-बाग मैं नहीं। मैं आत्मा हूँ। शुद्ध चिदानन्द मूर्ति ज्ञायकभाव, वीतराग विज्ञानघन, वीतराग विज्ञानघन मैं आत्मा हूँ। ऐसा अविरती सम्यग्दृष्टि के काल में ऐसी प्रतीत हो जाती है। ओहोहो...!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- बाद में कहा न? यह राग कम होते.. होते.. होते... देशचारित्र प्रगट होगा ऐसा कहा। यहाँ तो देशचारित्र कहा है। राग कम होते.. होते.. आंशिक स्थिरता होगी। व्रत का विकल्प आये उसकी बात भी नहीं ली है। क्योंकि वह तो मन्द राग में जाता है। समझ में आया? ओहो..! चारित्र की बात ली समकित के साथ, आंशिक स्थिरता।

स्वभाव सन्मुख में वैराग्य करते-करते जब चारित्र का अंश विशेष पंचम गुणस्थान की दशा उठती है तो देशचारित्र होता है। और सकलचारित्र आगे राग कम होते... होते.. होते... होते... कम होते.. सम्यग्दर्शन भूमिका में मैं आत्मा हूँ, राग करने लायक नहीं, मन्द राग आया, उसमें भी वैराग्य करके आगे बढ़ गया, देशचारित्र हुआ, बाद में भी राग को कम करते-करते (आगे बढ़ता है) तब मुनिपना अन्दर में प्रगट होता है। ऐसा नहीं कि बाहर ले लिया नग्नपना और ... आया। ऐसा तो अनन्त बार किया है। समझ में आया? आहाहा..! ऐसा मुनिपना नहीं।

मुनिपना तो पंचपरमेष्टि में परमेष्ठी पद है। जिसको गणधरदेव नमस्कार करते हैं। ओहो..! नमो लोए सव्व साहुणं। पंच परमेष्ठी का गणधर भी जब बारह अंग की रचना करते हैं, गणधर... सीमंधर भगवान बिराजते हैं महाविदेह क्षेत्र में, वर्तमान तीर्थंकर केवलज्ञानपने मौजूद है, महाविदेह क्षेत्र में। उसका वजीर धर्म प्रधान गणधर जब बारह अंग की रचना करते हैं तो (उच्चारण करते हैं), नमो लोए सव्व साहुणं। अहो..! सन्त! आप के चरण में हमारा नमस्कार! गणधर का नमस्कार पहुँचे वह मुनिपना कैसा होगा? समझ में आया? आहाहा..! राग इतना मन्द पड़ जाये और इतनी स्थिरता स्वरूप के आनन्द में उछाला--बाढ आ जाये। भरती क्या कहते हैं? भरती कहते हैं न दरिया में? बाढ आती है न दरिया में? किनारे पर बाढ--भरती आती है। ऐसा

आत्मा के मध्यबिन्दु में आनन्द पड़ा है। इस आनन्द में दृष्टि लगा दी है और उस में लीनता हो गई है तो अपनी वर्तमान पर्याय--दशा में, दशा में आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव विशेष हो गया। अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा जो अंतर था उसमें राग घटाकर स्वरूप में लीन होकर अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वाद आना, प्रचुर स्वसंवेदन (होना)। पाँचवी (गाथा) में है। समझ में आया? पाँचवी गाथा में है न।

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि सन्त संवत ४९ में दो हजार साल पहले संवत् ४९ में हुए भरतक्षेत्र में। महासन्त मुनि। जिसको इतनी लब्धि थी कि भगवान के पास गये। वर्तमान सीमंधर भगवान बिराजते हैं। उस समय भी वही भगवान थे। क्योंकि वहाँ करोड़ पूर्व का आयुष्य है। यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य नग्न मुनि दिगम्बर थे। संवत् ४९ (में) अकेले भगवान के पास गये, आठ दिन सुना, आठ दिन रहे। आकर शास्त्र बनाये। समयसार, प्रचवनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय। उसमें से दोहन करके मोक्षमार्गप्रकाशक टोडरमलने बनाया है। समझ में आया?

तत्त्व का अभ्यास क्या है उसकी खबर नहीं। बही तपासनी हो तो सारा दिन खोजता रहे। धूल और धाणी उसमें से। बोले। बाद में बोले कि पन्ना फिरे और सोना झरे। ऐसा बोलते हैं कि नहीं? बनिये बोलते हैं व्यापार में। अपन पन्ने पलटाओ, सोना झरेगा। धूल में भी सोना नहीं है। वह तो पुण्य हो तो मिले। उसमें तेरे पन्ने फिरने से कहाँ पैसे मिले ऐसा है। यह तो अन्दर अभ्यास का पन्ना जहाँ फिरे, वैसे-वैसे शुद्धि बढ़े। समझ में आया?

कहते हैं.. बड़ा सुन्दर अधिकार लिखा है, तोल तोल कर लिखा है। ओहो..! दोखो! '**देशचारित्र व सकलचारित्र अंगीकार करने का पुरुषार्थ प्रगट होता है...**' तब पुरुषार्थ प्रगट होता है। ऐसे ही सम्यग्दर्शन बिना राग को घटाकर, वैराग्य दशा बिना ऐसे ही देशचारित्र, श्रावकपना, मुनिपना आ जाता है वह तो द्रव्यलिंगी है। अनन्त बार की ऐसी जात है।

'**तथा चारित्र को धारण करके...**' देखो! बाद में चरित्र नाम स्वरूप आनन्द, उसका भान हुआ, बाद में लीन हुआ उसमें। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में, आनन्द के अनुभव में लीन हुआ। ऐसा '**चारित्र को धारण करके अपने पुरुषार्थ से...**' उस समय में भी ऐसा पुरुषार्थ चलता है। '**धर्म में परिणति को बढ़ाये...**' स्वभाव सन्मुख होकर अपनी निर्मल अवस्था को बढ़ाये। चारित्रदशा हो अंतर तो भी अभी कचास बाकी है न? शुक्लध्यान और केवलज्ञान बाकी है। '**अपने पुरुषार्थ से धर्म**

में परिणति को बढ़ाये...' देखो! अपना स्वभाव जो शुद्ध प्रगट हुआ, उसमें परिणति निर्मल हो ऐसा पुरुषार्थ करे।

'**वह विशुद्धता से कर्म की...**' ऐसे निर्मल परिणाम, चारित्र में भी निर्मल परिणाम बढ़ता जाता है तो '**कर्म की हीन शक्ति होती है,...**' चारित्रमोह की शक्ति घटती जाय। '**उससे विशुद्धता बढ़ती है,...**' पहले यहाँ से लिया है। '**विशुद्धता से कर्म की हीन शक्ति होती है,...**' ऐसे। इस ओर से यह लिया है। '**उससे विशुद्धता बढ़ती है, और उससे कर्म की शक्ति अधिक हीन होती है।**' यहाँ परिणाम जैसे शुद्धता होते जाये, शुद्ध आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... उस तरफ झुकाव की धारा में परिणाम की जैसे निर्मलता हो '**कर्मकी शक्ति अधिक हीन होती है।**'

'**इसप्रकार क्रम से मोह का नाश करे...**' देखो! ऐसे क्रम से मोह का नाश करे। आखिर तक लिया, दर्शनमोह के नाश से सर्व कर्म का नाश तक लिया। '**तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होते हैं,...**' जब मोह का नाश होता है तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होते हैं। '**उनके द्वारा ज्ञानावरणादिका नाश हो तब...**' उनके द्वारा ज्ञानावरणादिक नाश होता है, ऐसा कहा। विशुद्ध परिणाम, वीतराग परिणाम हुए उसके द्वारा ज्ञानावरणी अन्तराय का नाश हो, तब केवलज्ञान प्रगट होता है। अर्थात् सम्यग्दर्शन से लेकर श्रावक, चारित्र, निर्मल परिणाम करते... करते... करते... करते... शुक्लध्यान और केवलज्ञान (पर्यंत ले लिया)। समझ में आया?

अपने परिणाम के आधार से सब बात है। पर का कोई आधार नहीं है। कर्म-फर्म पर है, जड़ है। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' आता है कि नहीं वह? पूजा में आता है, भक्ति में। सुना है कि नहीं भाई? पूजा में आता है। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' उसमें आता है। परन्तु विचार कहाँ है? अर्थ-बर्थ करने की खबर नहीं, वह तो जय भगवान जाओ। यात्रा कर ली, भक्ति (करी)। केसरीचन्दजी! अर्थ की विचारणा नहीं। उसमें तो कहते हैं, हे नाथ! परमात्मा की स्तुति करते-करते, 'कर्म बिचारे कौन?' वह तो जड़, मिट्टी, धूल है। 'भूल मेरी अधिकाई।' मेरे पुरुषार्थ की विपरीतता वही मेरी भूल है। 'अग्नि सहे घनघात...' केवल अग्नि उसको घन नहीं पडता, परन्तु अग्नि लोहे का संग करती है तो घन पड़ते हैं। ऐसा भगवान चैतन्य अग्नि जड़ कर्म के संग में विकार उत्पन्न करता है तो चार गति का दुःख का घन सहन करना पडता है। ओहोहो..!

लेकिन ये तो कहे, भाई कर्म है... कर्म है... क्या करे? हमें कर्म बीच में आते

हैं भाई! मूढ है? कर्म कहाँ बीच में आते हैं? समझ में आया? भाई! हमें बहुत धर्म करने की इच्छा है, परन्तु कर्म इतने बीच में आते हैं। कौन कहता है ऐसा तुझे? कहा किसने तुझे? भगवान तो ना कहते हैं, कर्म जड़ है, वह तो परद्रव्य है। क्या परद्रव्य तुझे नुकसान करता है? समझ में आया? परद्रव्य ने तो कभी तुझे स्पर्श भी नहीं करता। वह जानता भी नहीं कि मैं कौन हूँ? वह तुझे नुकसान करता है? तेरा अपना ऊल्टा भाव करके तुम नुकसान करते हो। तब कर्म को निमित्त कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

'**तब केवलज्ञान प्रगट होता है।**' कहाँ से ले गये? एय..! देवानुप्रिया! तत्त्वज्ञान के निर्णय का अभ्यास करते करते करते कर्म मन्द हो, पुरुषार्थ उग्र हो, सम्यग्दर्शन हो, उसमें मन्द राग के काल में शुभभाव में जुड़े और उसमें वैराग्य भावना साथ में लेकर चले तो विशुद्ध परिणाम हो। विशुद्ध परिणाम से ... है। '**पश्चात् वहाँ बिना उपाय अघाति कर्म का नाश करके...**' भगवान अरिहन्त बिराजते हैं अभी। महावीर परमात्मा अरिहन्तपने बिराजते थे पहले। अभी तो सिद्ध हो गये, अभी तो सिद्ध भगवान हो गये, नमो सिद्धाणं है। सीमंधर भगवान महाविदेह क्षेत्र में बिराजते हैं वह नमो अरिहंताणं में है। अभी तो अरिहन्तपद में बिराजते हैं। उनको चार अघाति कर्म बाकी है। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र, चार बाकी है। चार का नाश हुआ है भगवान को। महाविदेह क्षेत्र में बिराजते हैं जमीन से ऊपर समवसरण में। उस भगवान को अघाति कर्म बाकी है, उसका '**नाश करके शुद्ध सिद्धपद को प्राप्त करता है।**' अरिहन्द के बाद सिद्ध, आखिर तक ले गये।

'**इसप्रकार उपदेश का तो निमित्त बने...**' देखो! '**और अपना पुरुाषार्थ करे तो कर्म का नाश होता है।**' आहा..! उपदेश का तो निमित्त बने। उसने पूछा था न? उपदेश तो सब सुनते हैं। पुरुषार्थ कोई करे, न करे उसका यहाँ टोटल लाये। उपदेश तो बने, निमित्त बने। अपना पुरुषार्थ करे तत्त्व निर्णय का, शुद्धता परिणाम का तो कर्म का नाश हो। '**तथा जब कर्म का उदय तीव्र हो तब पुरुषार्थ नहीं हो सकता;...**' अशुभ परिणाम में हो तब तो धर्म का पुरुषार्थ हो सकता नहीं। अशुभ परिणाम में जब लग जाये, संकल्प-विकल्प, संकल्प-विकल्प तीव्र... तीव्र... तीव्र... तीव्र... उसमें तो धर्म पुरुषार्थ करने का अवसर है नहीं। समझ में आया? '**कर्म का उदय तीव्र हो तब पुरुषार्थ नहीं हो सकता; ऊपर के गुणस्थानों से भी गिर जाता है;...**' पुरुषार्थ की कमी हो तो ऊपर के गुणस्थान से भी (गिर

जाता है)। कर्म से गिर जाये ऐसा कहा, लेकिन उसकी शक्ति मन्द है तो गिर जाता है ऐसा समझना।

'**अपना पुरुषार्थ...**' मगनभाई! एक बार लिखा था न? इसमें एक-दो बोल ऐसा हैं .. एक बार आया था, आप की बात। बहुत साल पहलें। एक-दो बोल खटकते है। इसमें धर्म का ... होगा और फलाना (होता है), मालूम है? एक बार आया था। यह भाषा बराबर बैठती नहीं। बहुरी... बहुरी... और यह दो बातें आई। और यह आया था कि कर्म का होनहार, होनहार वह तो अपने ऊपर से ले तब, उसमें तो ऐसा आता है। होनहार का अर्थ तेरी पर्याय का होनहार। तेरी पर्याय का होनहार पुरुषार्थ ... हो तो कर्म को निमित्त कहने में आता है। जब ऐसा भाव हो, तो तो तुम्हारा हीन पर्याय की लायकात हो तो ऊपर से भी गीर जायेगा। उसमें तो पुरुषार्थ काम करेगा नहीं। इसलिये पहले पुरुषार्थ करने का टाईम है तब पुरुषार्थ करने का अभ्यास करके सम्यग्दर्शन प्रगट करना। बाद में पुरुषार्थ करके चारित्र प्रगट करना वह यहाँ बात कहने में आयी है।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

सोमवार, दि.१०-१२-१९६२
अधिकार - ९, प्रवचन नं.-२८

मोक्षमार्ग के स्वरूप का नौंवा अधिकार। यहाँ तक पहले क्या आया? कि जहाँ जीव को तीव्र पाप के उदय का भाव होता है उस समय तो उसको उपदेश का निमित्त मिलता नहीं। क्योंकि उस समय उसको अशुभभाव में ही, विषय काषय में ही उसका जुड़ान होता है। जब मन्द राग हो शुभभाव, उस समय पुरुषार्थ का निमित्त मिले और राग रहित आत्मस्वभाव का निर्णय--ज्ञान करे तो उस समय हो सकता है। समझ में आया? मोक्षमार्ग का अधिकार है। तो मोक्षमार्ग हो सके। ऐसे।

विषयकषाय के तीव्र परिणाम अशुभ जहाँ वर्तते हो, वह तो सुनने को भी निवृत्त नहीं होता। वह तो विषय कषाय धंधा आदि में मशगुल होता है। जिसे राग मन्द हो उसको कुछ उपदेश का निमित्त मिले तो उपदेश में मोक्षमार्ग का स्वरूप आये, तो उस समय राग से भिन्न चैतन्य क्या है उसका निर्णय, ज्ञान और स्थिरता करना चाहे तो हो सकती है। इस बात को पूरा करके अब लेते हैं यह तकरारी बोल।

'**तथा जब कर्मका उदय तीव्र हो...**' चौदवाँ। क्या कहा? अर्थात् जहाँ तीव्र उदय अर्थात् यहाँ पुरुषार्थ की विपरीतता हो। ऐसे। ऐसा उसका अर्थ लेना।

श्रोता :- ऐसा लिखा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह लिखा नहीं है, उसमें पहले आ गया। ३०८ पन्ने आ गया देखो। है न? ३०८ पन्ना पर आ गया। '**किसी द्रव्य का परिणमन...**' उसमें ही आ गया। आगे की बात नहीं, आगे तो बहुत हो गई। यह तो इसी अध्याय में। '**किसी द्रव्य का परिणमन कोई द्रव्य के आधीन नहीं परन्तु अपने रागादिभाव दूर होने से निराकुल होता है और वह कार्य हो सकता है। कोई द्रव्य का परिणमन किसी द्रव्य के आधीन नहीं है।**' यह इसमें आ गया है। आगे की बात बादमें रखो। यह तो नौंवे अध्याय में भी ऐसा कहा। यहाँ निमित्तप्रधान से कथन है। इसलिये पण्डित बोले थे, बैठो, यहाँ पर यह ही है। यह मगनभाई का प्रश्न था बहुत समय का।

ऐसा कहते हैं कि जब कर्म का तीव्र उदय यानी कि वहाँ निमित्त से कथन किया है। उसके पुरुषार्थ में जहाँ तीव्र अशुभ और अशुभ मिथ्यात्व रस पड़ता हो-भाव में, वहाँ तो पुरुषार्थ हो सके नहीं। पुरुषार्थ न हो सके अर्थात्? पुरुषार्थ तो होता है। सुल्टा न हो सके ऐसा कहना है। मगनभाई! जहाँ पर कर्म का तीव्र उदय अर्थात्? वहाँ तीव्र उदय के काल में निमित्त ऐसा बताता है कि उसके पुरुषार्थ की विपरीतता है। आत्मा के पर्याय में पुरुषार्थ की विपरीतता है। ऐसे काल में पुरुषार्थ हो सकता नहीं। अर्थात् विपरीत पुरुषार्थ के काल में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का पुरुषार्थ हो सकता नहीं। ऐसा उसका अर्थ है। कहो, समझ में आया? नवनीतभाई! देखो शब्द आया है। ऐय..! केसरीचन्दजी! उसके वहाँ सब सामने प्रश्न करते हैं।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- पुरुषार्थ तो लेते ही नहीं वहाँ। वहाँ तो कर्म का जोर आया ऐसा लेते हैं। ऐसा पहले कहा।

श्रोता :- लिखा ही ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- निमित्त की प्रधानता से कथन लिखा है कि जहाँ तीव्र उदय हम कहते हैं .. सिद्धान्त देखने पर वहाँ उसका विपरीत पुरुषार्थ ही चलता है ऐसा उसका अर्थ लेना। वह पीछे बैठते थे। मैंने कहा कि भाई आगे बैठो, आज आप का है। कहो, समझ में आया? एय..! वजुभाई!

'**ऊपर के गुणस्थानों से भी गिर जाता है;...**' जहाँ पुरुषार्थ की कमजोरी है, आत्मा के पर्याय में वीर्य की कमजोरी है, वहाँ तो '**ऊपर के गुणस्थानों से भी गिर जाता है;...**' ऐसा कर्म के तीव्र उदय के निमित्त से कथन करने में आया है। नवनीतभाई! '**वहाँ तो जैसी होनहार हो वैसा होता है।**' जहाँ पर्याय की पुरुषार्थ की कमजोरी है वहाँ तो जिस समय जो पर्याय हो उस कारण से होती है। उसमें दूसरे की मदद या असर प्रभावना की जरूरत पड़ती नहीं है।

'**परन्तु जहाँ मन्द उदय हो...**' पहले आ गया है। पहले पेरेग्राफ में ही आ गया इसके पीछे कि भाई! अशुभ राग-द्वेषादि हो तब विषय कषाय में प्रवर्तता है और मन्द राग हो तब बाहर से उपदेश का निमित्त बने। और पुरुषार्थ उपदेश .. उपयोग को जोडे तो धर्मकार्य की प्रवृत्ति होती है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह मन्द उदय कर्म का इतना बताया कि उसमें शुभभाव मन्द है यहाँ। उसमें जैसे ... बताया था कि यहाँ तीव्र पुरुषार्थ ऊल्टा है। यहाँ मन्द है तो यहाँ पुरुषार्थ शुभभाव का मन्द है। कहो, केसरीचन्दजी! ऐसा है। है न परन्तु देखो यह ... पहले कह गया है। '**एक द्रव्य का परिणामन दूसरे द्रव्य के आधीन हो सके नहीं।**' वरना कर्ता होने से, ईश्वर कर्ता मानते हैं ऐसे यह कर्म आत्मा की पर्याय को रोके तो दोनों की कर्ताबुद्धि में कुछ फ़र्क़ पड़ता नहीं है। कहो, समझ में आया?

'**परन्तु जहाँ मन्द उदय हो...**' निमित्त से बात है, परन्तु अन्दर मन्द उदय हो अर्थात् पुरुषार्थ में शुभभाव राग की मन्दता हो, शुभभाव प्रगट हो और पुरुषार्थ बन सके, आत्मा राग से, निमित्त से भिन्न है ऐसा पुरुषार्थ करना चाहे तो '**वहाँ प्रमादी नहीं होना;...**' वहाँ तो उसको प्रमादी होना नहीं। '**सावधान होकर...**' देखो! सावधान होकर शुभराग के मन्द काल में उपदेश का निमित्त मिले, अरे..! आत्मा तु परमात्म स्वरूप हो, शुद्ध आनन्द हो, ऐसा उपदेश मिले और सावधान होकर उसका पुरुषार्थ

करना। सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का पुरुषार्थ करना, प्रमादी होना नहीं। '**सावधान होकर अपना कार्य करना।**' लो! अपना कार्य करना। वह तो पहले से बात कह गये हैं कि तेरा काम है वह तो तेरे आधीन है। कर्म का कारण,... कर्म तेरा कार्य करे और तु कर्म का कार्य कर वह वस्तु में नहीं है। यह बात तो पहले कह गये हैं। वह तो संक्षेप में गोम्मटसार की शैली से बात कही है।

श्रोता :- गोम्मटसार में ऐसा कहे...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वहाँ ऐसा निमित्त से कथन आता है। ऐसा हो तो ऐसा हो, ऐसा हो तो ऐसा हो। ज्ञानावरणीय का ऐसा उदय हो तो ऐसा होता है, ऐसा हो तो ऐसा होता है। निमित्त से सब कथन है। यहाँ क्षयोपशम हो पुरुषार्थ से ज्ञान से वहाँ क्षयोपशम कर्म में होता ही है। कहो, समझ में आया? वह तो बात का कथन है।

'**सावधान होकर अपना कार्य करना।**' कहो, मगनभाई! बराबर इस प्रश्न के समय आप आये हो। उनका प्रश्न था, भाई। कि हम ऐसे लेते हैं परन्तु इसमें एक-दो बोल ऐसे खटकते हैं...

श्रोता :- .. पूरा निकाल दे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन निकाले? ऐसे एक-दो बोल हैं। वह तो निमित्त से कथन किया है संक्षिप्त भाषा में, संक्षिप्त शैली से। बाकी स्वयं इसमें दो बार कह गये हैं, तीन बार कह गये हैं। आठवे में कह गये और बारहवे में कह गये कि '**कर्म का तो कुछ प्रयोजन नहीं है।**' कर्म का कोई दोष नहीं है ऐसी बात तो पहले बारहवे में कह गये, तेरहवे में कह गये, दसवें में कह गये। समझ में आया? सेठी! यह अर्थ करने में दिक्कत उत्पन्न हुई है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- जो लिखा है उस अपेक्षा से वही अर्थ होता है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हो गया। आगे-पीछे देखने की तकलीफ न करे तो तो हो गया। आगे-पीछे में उलझन में आ जाये।

अब नदी का दृष्टान्त भी इस प्रकार आता है। '**जैसे – कोई पुरुष नदी के प्रवाह में पड़ा बह रहा है।**' प्रवाह में पड़ा बह रहा है। प्रवाह में पड़ा। उसकी शक्ति मन्द है ऐसा कहना है वहाँ। '**पुरुष नदी के प्रवाह में पड़ा बह रहा है।**' पड़ा बह रहा है अर्थात् उसकी शक्ति ही मन्द है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, अपनी शक्ति मन्द है, निकलने की शक्ति नहीं।

'**वहाँ पानी का जोर हो...**' बाद में वहाँ पर से बात कही। '**तब तो उसका पुरुषार्थ कुछ नहीं,...**' किसमें कुछ न चले? निकलने की शक्ति मन्द है। निकलने की शक्ति उसमें नहीं है तो बाहर निकलने का पुरुषार्थ चले नहीं। '**उपदेश भी कार्यकारी नहीं।**' जहाँ बहा जा रहा है, वहाँ शक्ति ही ऐसी है। दूसरा कहे कि नीकल। परन्तु उसमें स्वयं में शक्ति ही कहाँ है? निकलने की शक्ति नहीं है। '**और पानी जोर थोड़ा हो...**' अर्थात् पानी का जोर मन्द हो, उस समय स्वयं की भी निकलने की शक्ति हो, '**तब यदि पुरुषार्थ करके निकले तो निकल आयेगा।**' लो! इतनी बात गड़बड़वाली थी, परन्तु इसका अर्थ ऐसा है। नवनीतभाई!

श्रोता :- उसके आधार से ही सब काम लिया जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसके आधारे से सब काम लिया जाता है। वह तो हमारे भाई भी कहते थे, केसरीचन्दजी कहते थे। ये सब इसका अर्थ ऐसा बोलते हैं। कहा कि, आज सुनना। क्यों? पण्डित लोग ऐसा अर्थ करते हैं। लोग कारण देकर दिखाते हैं, देखो भाई, कर्म का तीव्र उदय हो तब पुरुषार्थ हो सकता नहीं। पहले ही बात हुई।

श्रोता :- कर्म पर डालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कर्म पर डाल देते हैं। परन्तु 'कर्म बिचारे कौन?' वह तो जड़ है। एकेन्द्रिय से लेकर उस प्रवाह में स्वयं चला है ऊल्टे प्रवाह में। अनादि काल से उसके पुरुषार्थ की गति ऊल्टी है। स्वभाव आत्मा शुद्ध चिदानन्द उसकी गति में पुरुषार्थ करता नहीं। उसकी स्वयं की भूल है। कर्म-बर्म का जड़ का कोई दोष नहीं है। कहो, समझ में आया?

'**उसी को निकलने की शिक्षा देते हैं।**' ऊपर ३१३ में आया था न? कि जिसे मन्द राग है उसको उपदेश निमित्त मिले और पुरुषार्थ करे, उस बात की यहाँ संधि है। यहाँ तो निमित्तप्रधान कथन से किया है वह बात जूठी नहीं है। समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- परन्तु .. ऐसा लिखा है। पहले लिखावट आ गई है उसमें ही नौंवे अध्याय में आ गया है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ करे नहीं। अट्ठाईस

पहले–पहले आ गया है उसको बाद में रखो। नौंवे अध्याय में भी ऐसा ३०८ पन्ने कहा न? कोई द्रव्य का परिणमन कोई द्रव्य के आधीन नहीं है––यह महा सिद्धान्त है। तो कर्म द्रव्य का उदय आये इसलिये उसके आधीन होकर आत्मा को विकार करना पड़े ऐसा वस्तु में नहीं है। स्वयं अपनी विपरीतता के कारण विकार स्वयं करता है। देवानुप्रिया याद आ गये अब। यह तकरारी प्रश्न है, देवानुप्रिया!

श्रोता :– शुभभाव में...

पूज्य गुरुदेवश्री :– शुभभाव में, शुभभाव के काल में। पुरुषार्थ शुभभाव को लेकर नहीं। यह तो बात पहले आ गई है।

श्रोता :– कल आ गई।

पूज्य गुरुदेवश्री :– आई थी। शुभभाव हो तब, शुभभाव के काल में, शुभभाव के कारण से नहीं, उस काल में पुरुषार्थ (करे कि) 'रागरहित मैं चैतन्य हूँ' ऐसा पुरुषार्थ कर तो उस काल में हो सकता है। कहो, समझ में आया? दो तरफ की दलीलवालें हो तो ज्यादा स्पष्ट होता है कि नहीं? एक भी प्रतिशत देने जैसा नहीं है।

यह तो निमित्तप्रधान से संक्षिप्त बात की है। जो बात पहले स्पष्ट कर चूके हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर सके नहीं। यदि कुछ करे ऐसा माने तो, ईश्वर जगत का कर्ता और जैन में रहकर एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का करे, दो कर्ता की मान्यता के वर्ग में कुछ फेर नहीं है। दोनों एक कर्ता माननेवालें हैं। कहो, समझ में आया? ऐसे तो बहुत बोल हैं अन्दर। ये तो इस ही में था वह बताया। इसमें ही बताया इतना। बाकी बहुत बोल हैं। वहाँ लिखा है। बहुत पन्ने लिखे हैं––२९७, ३०८, २८, ३०, ३३, २, २६८ बहुत जगह है। उन दिनों में तो यह रुचता था न? कहो, समझ में आया?

अर्थात् जब राग मन्द हो तब उसको पुरुषार्थ की शिक्षा देने में आती है। सुनने की फुरसद कम मिले? तीव्र पाप के परिणाम मिथ्यात्व के या तीव्र अशुभ के हो वहाँ सुनने की फुरसद मिलती नहीं।

'**और न निकले तो धीरे–धीरे बहेगा...**' देखो! शक्ति है, पाणी को जोर थोड़ा, उसमें समय चला जाये और पुरुषार्थ से निकले नहीं। '**फिर पानी का जोर होने पर बहता चला जायेगा।**' पाणी का जोर बढ़े और यहाँ शक्ति भी मन्द होती है, इसलिये बह जाये। '**उसी प्रकार जीव संसार में भ्रमण करता है,...**' उसी प्रकार यह जीव संसार में भ्रमण करता है। कहो, मगनभाई! है कुछ? उसमें–से कुछ प्रश्न

हो तो निकालो। तो स्पष्ट हो, उसमें क्या तकलीफ है? कोई तकलीफ नहीं है।

श्रोता :- शक्ति मन्द होती है...

पूज्य गुरुदेवश्री :- शक्ति मन्द थी तब पानी का ज़ोर था ऐसा कहने में आया है। और जब निकलने की शक्ति बढी तब पानी का जोर कम है ऐसा कहने में आया है। यहाँ-से बात ली है।

श्रोता :- ..

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, ली न। कहा न, वहाँ पानी से ली है, यहाँ कर्म से ली है। पानी से बात ली है। समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसी गड़बड़ीवाला क्यों लिखा? ऐसा पुस्तक लिखा। वह तो हमारे भाईने भी लिखा था। मगनभाई ने भी एकबार कहा था। एक-दो बोल ऐसा है... ऐसा आया था बराबर, कि उसमें खटकता है। वह तो अपन को जो दृष्टि बैठी है उस दृष्टि से बिठाते हैं, परन्तु उसमें बराबर खटकता है।

तीनों काल आत्मा अपने पुरुषार्थ से तीव्र, मन्द और शुद्धता प्रगट कर सकता है। बस, एक ही बात है। पाप के भाव करे तो भी अपने पुरुषार्थ से, शुभभाव करे तो भी अपने पुरुषार्थ से और शुभाशुभ रहित आत्मा शुद्ध चिदानन्द है उसकी दृष्टि और अनुभव करे वह पुरुषार्थ से।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह ... हो तब कहने में आये। मनुष्य पहुँच न सके तब उसको कहे कि भाई! बहुत जोर है तेरा! ऐसा कहने में आये। ऐसा है। सामने पहुँच न सके तब कहे बहुत जोर भाई तेरा! ऐसा कहे। पहुँच सके तब ऐसा कहे अरे.. चलो.. चलो... कमजोर कौन है? ... कहो, समझ में आया? छगनभाई!

यह तो बात हो गई न कितनी। पहले ही कहा है कि तीव्र राग हो अपने में अपने कारण से। देखो! तेरहवे में कहा न? रागादि का तीव्र उदय। रागादि का तीव्र उदय। वहाँ कर्म का उदय नहीं कहा है। देखो ३१३ बीच में। '**रागादि का तीव्र उदय होने से विषय कषायादि कार्य में प्रवर्ते; रागादि का मन्द उदय होने से व्यवहार से उपदेश निमित्त बने। स्वयं पुरुषार्थ से उपदेशमें उपयोग को जोडे तो धर्मकार्य हो।**'

श्रोता :- तीव्र-मन्द हो कब?

पूज्य गुरुदेवश्री :- परन्तु राग मन्द अपने से होता है। ऐसा कहते है यहाँ तो। अपने से मन्द हो, अपने से तीव्र होता है और अपने से शुद्ध होता है। दूसरे की बात भी नहीं है। वह तो निमित्तमात्र के कथन हैं। कहो, जयंतिभाई! कौन जाने... तेरा दोष है, ऐसा कहा था उसने? महन्त रहना इच्छता है। अपना दोष तो कर्मादि में लगाता है। परन्तु जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भवे नहीं।

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ का फरमान, जैन परमेश्वर का है कि तेरी विपरीतता से तु संसार में भटक रहा है। तेरे सूल्टे पुरुषार्थ की क्षति है वह तेरा दोष है, कर्म का दोष नहीं है। कर्म तो बिचारे जड़, मिट्टी, धूल, अजीव उसको तो मालूम भी नहीं है कि हम जगत के तत्त्व हैं कि नहीं? जानननेवाला तो चैतन्य है, ज्ञानमूर्ति जानता है कि जगत में एक जड़ है, विकार मैं करुं तो उसे निमित्त कहने में आये। न करुँ तो वह निमित्त छूट जाये। उसके आधीन मैं नहीं और मेरे आधीन वह नहीं। मैं विकार करुँ इसलिये उसको बन्धना पड़े ऐसा नहीं। उसकी बन्धने की योग्यता से बन्धता है। उसका उदय तो मुझे विकार करना पड़े उसके कारण से, ऐसा नहीं। मेरी योग्यता अनुसार विकार होता है। वस्तु की स्थिति तीन काल तीन लोक में यही है। समझ में आया? देखो! हमारे पण्डितजी भी हाजिर है इस लिखावट में। मुम्बई में सब प्रश्न करते हैं न? रतिभाई! ठीक दोनों इकट्ठे हो गये। कुछ प्रश्न करते हैं कोई। तब आपके सामन नजर गई। हो, हो, प्रश्न ऐसे हैं न अन्दर, लेखनी ऐसी शैली का है। हरिभाई!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो तरने का यदि पुरुषार्थ हो तो पानी-फानी अवरोध नहीं करता, बड़ा समुद्र पार उतर जाये, समुद्र पार कर जाये। हमारे यहाँ पानी है न। उमराळा में बहुत बड़ी नदी है। हम छोटी उम्र के थे १०-१२ साल के। एक ब्राह्मण उसमें गीर गया था। समुद्र जैसी नदी। दोनों किनारे पर पानी आया था। वहाँ गीरा तो दूसरी जगह निकला। सीधा न नीकल सके। पानी का जोर बहुत होता है न। और उतनी शक्ति। परन्तु बाहर निकल गया। समझ में आया? वह तो अपनी शक्ति। यहाँ तो दृष्टान्त है हाँ, वहाँ कोई शक्ति काम नहीं आती। वहाँ तो परमाणु की पर्याय होनेवाली हो तब होती है। वहाँ कोई वीर्य स्फूरे इसलिये जड़ की शक्ति प्रगट हो और परिणमे ऐसा नहीं है।

श्रोता :- ..

पूज्य गुरुदेवश्री :- किसमें? इसमें सब आत्मा का काम है। आत्मा की ताकात ऐसी है कि अपने पुरुषार्थ की गति में बहे तो बाहर का कोई उसको रोक न सके। तीन काल तीन लोक में ऐसी कोई चीज नहीं कि उसको कोई रोक सके। सब भरत चक्रवर्ती जैसे पुरुषार्थी हैं। नवनीतभाई! भरत चक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि, संसार में रहे ऐसा किया यह सब कहा। समझ में आया?

भगवान आत्मा अनन्तबल का स्वामी है। अनन्त-अनन्त जिसमें वीर्य पड़ा है। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनन्द का कन्द है उसका उसे पता नहीं। उसके वीर्य की वर्तमान पुरुषार्थ की गति जैसी अपनी लायकात हो उस अनुसार गति करता है। उसको कोई कर्म-बर्म आडे आये ऐसी कोई वस्तु है नहीं। रतिभाई! यह निर्णय करना पड़ेगा। आप के बुजुर्ग को बैठ गया है बराबर।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। आपके जमाई है? पुत्र है? उसको यह विरासत लेनी होगी, मानना पड़ेगा यह जैसा है वैसा। कहो, समझ में आया? बातो तो ऐसी है, बापा!

आत्मा स्वयं ऊल्टा पुरुषार्थ करे तो वह स्वयं की विपरीतता है। सूल्टा मन्द करे वह भी उसकी स्वयं की है और शुद्धता प्रगट करे वह भी अपने ही कारण से। दूसरी चीज तो निमित्तमात्र है। निमित्त होकर उसको कर्ता बना देना वह तेरा अपराध है। निमित्त को कर्ता बना देना वह तेरा अपराध है। कहो, समझ में आया? क्यों धीरुभाई!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ..। कहो, समझ में आया? ३१३ पृष्ठ पर है रतिभाई! देखो ३१३ पृष्ठ दूसरी पंक्ति। ३१३ पहली पंक्ति।

'**परन्तु तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है...**' पहली पंक्ति ३१३। '**और अपना दोष कर्मादिकको लगाता है;...**' है? '**सो जिनआज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभव नही है।**' वीतराग कहते हैं कि तेरे ऊल्टे पुरुषार्थ के कारण से होता है। सूलटा पुरुषार्थ भी तू कर सकता है। '**जिनआज्ञा माने तो...**' कर्म को दोष लगाये '**ऐसी अनीति संभव नहीं है।**' '**तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है।**' हमें तो कुछ नहीं है, देखो! कर्म को लेकर हुआ.. कर्म को लेकर हुआ। बिलकुल झूठ है। वीतराग की आज्ञा मानता नहीं है। कहो, जयंतीभाई! बराबर है? बात तो भाई जैसी हो वैसी उसे माननी चाहिये न? ऊल्टा पुरुषार्थ करे तो वह, सूल्टा करे

तो भी वह। कर्म बिचारे क्या करे? उह तो निमित्त है। समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कर्म में कुछ नहीं करना है। कर्म उसके कारण से (है), यहाँ अपने में करने की बात है। तकरार कुछ नहीं है। पुरुषार्थ अपने में करे तो कर्म स्वयं खिर जाये। किसीके साथ तकरार करनी नहीं है। कर्म आत्मा को तकरार कराता नहीं और आत्मा भी कर्म के साथ तकरार करता नहीं। वह तो अपने आप हट जाता है। कहो, समझ में आया? दृष्टान्त दिया था न? कोई मिलने आया हो और आप दो भाई बातें करते हो। उसको लगता है, ये तो सामने भी नहीं देखता। चलो भागो। ऐसे आत्मा अपने पुरुषार्थ में रहे तो कर्म का उदय खिरकर चला जाये, सामने भी न देखे। सामने देखे तो फिर कहाँ-से हटे? लोग नहीं कहते कि चहेरा भी नहीं देखा। क्या कहते हैं?

श्रोता :- मन भी दिया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- मन भी दिया नहीं। हम गये थे पर मन भी दिया नहीं। दोनों बात करते थे, दो घण्डे बैठा पर सामने भी नहीं देखा। बाद में उठकर चले गये।

ऐसे आत्मा स्वयं अपने में पर तरफ देखे नहीं और अपना पुरुषार्थ करे तो कर्म का उदय उसके कारण से खिर जाये। कहो, समझ में आया? बहुत जगह लिखा है। यह तो नौंवे अधिकार का दृष्टान्त दिया। पहले दूसरी जगह ऐसा लिखे और बाद में इस पन्ने पर ऊल्टा लिखे ऐसा हो सकता है? स्पष्ट बात है। पहले पन्ने पर ऐसा लिखे और दूसरे पन्ने पर ऐसा लिखे, तो वहाँ समझने कि निमित्त की प्रधानता से उसके ऊल्टे पुरुषार्थ की गति बताते हैं। बस! इतनी बात है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- किसके साथ करे तो? उसको सत्य मानकर इसका अर्थ करे तो मिलान हो। वरना तो मेल नहीं होता। पहले कहा उसको उडाकर दूसरी बात हो सकती है?

'**वहाँ कर्म का तीव्र उदय हो...**' कहो, कहाँ गये महासुखभाई? नहीं है? ... लेने गये होंगे। कहो, समझ में आया? जाते हैं न, कभीकभार जाते हैं। '**कर्म का मन्द उदय हो तब पुरुषार्थ करके मोक्षमार्ग में प्रवर्तन करे तो मोक्ष प्राप्त कर ले। उसी को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। और मोक्षमार्ग में प्रवर्तन नहीं करे...**' देखो! '**किंचित् विशुद्धता पाकर...**' देखो यहाँ फिर से क्या कहा?

यदि वह मोक्षमार्ग में न प्रवर्तन करे और मन्द राग है, किंचित् विशुद्धता हुई। ऐसे। मन्द राग है, शुभभाव है, कुछ विशुद्धात हुई। परन्तु ऐसे शुभभाव के काल में पुरुषार्थ न करे कि मैं रागरहित आत्मा कौन हूँ? ऐसा निश्चय न करे, बाद में तीव्र उदय आने से निगोदादि पर्याय में चला जाये। बाद में तीव्र वीतराग भाव से विरुद्ध विकारभाव उत्पन्न होने से निगोद... निगोद... आलु, शक्करकन्द, काई में चला जाता है, फिर कोई ठिकाना नहीं रहता।

'**इसलिये अवसर चूकना योग्य नहीं है।**' देखो! अब ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सुनने आया, राग की तुझे मन्दता है, उसके बिना सुनने कैसे आया? तीव्र हो तो दुकान से ही निकले नहीं। अब तुझे राग का निश्चय करना है कि राग एक विकार है और निश्चय करना कि आत्मा विकाररहित है। ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मा है। राग आत्मा के स्वभाव में नहीं है। वह स्वभाव से पृथक् है। उसकी स्वभाव में नास्ति है। ऐसा निर्णय करना वह आत्मा के आधीन बात है। कहो, समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन-से परिणाम से हुआ? अंतः क्रोडाक्रोडी हो तब परिणाम अच्छे होते हैं। वह परिणाम किसने कियेय जिस कारण से अंतः क्रोडाक्रोडी निमित्तरूप से हुआ? ऐसे परिणाम जीव के हुए कि कर्म में अंतः क्रोडाक्रोडी स्थिति का ही नाप रहे उसके कारण से, ऐसा यहाँ निमित्त स्वयं हुआ। समझ में आया? ये सब बातें तो (संवत) १९७१की साल से चलती है। ७१ की साल से चलती है यह बात।

एक बार वह आये थे भाई अमरेलीवाले, १९८१ में गढड़ा। देखो! इसमें लिखा है भगवती में, ... को भी होता है। कर्म का ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो तो ज्ञान होता है। परन्तु क्षयोपशम के पुरुषार्थ की यहाँ जागृति हुए बिना वहाँ क्षयोपशम हुआ कहाँ से? कहाँ से हुआ? पुरुषार्थ के परिणाम ज्ञान के उघाड के स्वयं ने नहीं किये हो और कर्म में उघाड हो... ...? बड़ा प्रश्न था। बहुत चर्चा चलती थी। समझ में आया? भाई! तुझे मालूम नहीं है। तेरे दोष के कारण से कर्म को आरोप देने में आता है। कर्म का बिलकुल दोष नहीं है।

रात को नहीं कहा था? पहले भी कहा था न कि ऐसी युक्ति क्यों बनाये तुझे पुरुषार्थ की सिद्धि? संसार में पुरुषार्थ की सिद्धि न हो तो किया करता है, किया करता है और मोक्षमार्ग में आये तब कहता है कि कर्म मार्ग करे तब होगा। हम

जानते हैं कि तु मोक्ष को देखादेखी हित जानता है, समझकर जानता नहीं है। 'जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ।' श्रीमद् में आता है न? आत्मसिद्धि में। 'भवस्थिति आदि नाम लई, छेदो नहि आत्मार्थ।' इस भव की ऐसी स्थिति... अरे..! आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति उसका श्रद्धान-ज्ञान करने का तेरे पास समय है। तु ... सिद्ध न करे। आता है न भाई आत्मसिद्धि में? कहो, समझ में आया?

'**इसलिये अवसर चूकने योग्य नहीं है।**' सम्यग्दर्शन प्रगट करने का पुरुषार्थ करो। शरीर, वाणी, कर्म सब जड़, मिट्टी, धूल है। यह मेरे में नहीं है और उसकी दशा करने का मैं अधिकारी नहीं है। मुझमें जो पर्याय की कमजोरी को लेकर पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह भी विकार और आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाव है। उस विरुद्ध भाव से, उससे विरुद्ध ऐसा मेरा स्वभाव ज्ञान शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, ऐसा सम्यक् निर्णय पुरुषार्थ करे तो सम्यग्दर्शन हो, वरना सम्यग्दर्शन होगा नहीं। कहो, समझ में आया? परन्तु दरकार ही नहीं है, यूँ ही यूँ ही (चलता है)। जब कहते हैं तो कर्म का दोष निकालता है। या तो हमें फुरसत नहीं, मरने की फुरसत नहीं। फलाना नहीं है। भाई! अभी तो नहीं बनेगा। समझे न? बाद में होगा। वृद्धावस्था होगी तब। सब झूठे बहाने देता है। नवनीतभाई!

'**अब सर्व प्रकार से अवसर आया है,...**' देखो! पहले सामान्य अवसर चूकना योग्य नहीं है ऐसा कहा। अब (कहते हैं), '**सर्व प्रकार से अवसर आया है,...**' ऐसा तो कहते हैं। समझ में आया? यह अवसर... अवसर... ऐसे शब्द बहुत है भाई उसमें। यह सातवाँ बोल मैंने लिखा है। समझ में आया? है न वहाँ उत्तर देखो न? ३१३ पृष्ठ पर है। '**ऐसे अवसर में उपदेश कार्यकारी है...**' काल-काल लिया है। ३१३ पृष्ठ पर पहला। दूसरा, '**ऐसे अवसर में पुरुषार्थ कार्यकारी है।**' समझे न? उसमें पुरुषार्थ लिया है। वहाँ भी लिया है, ३१४। '**यदि इस अवसर में भी तत्त्वनिर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमादसे काल गँवाये...**' वहाँ भी अवसर लिया है। समझ में आया? चार। बाद में '**व्यवहारधर्मकार्यों में प्रवर्ते, तब अवसर तो चला जायेगा...**' बाद में, इस अवसर में, ३१४ पृष्ठ पर दूसरे पेरेग्राफ की प्रथम पंक्ति। '**तथा इस अवसरमें जो जीव पुरुषार्थ...**' देखो, अवसर-अवसर की हर जगह पुकार की है। समझ में आया?

'**इसलिये अवसर चूकना योग्य नहीं है।**' छठ्ठा बोल आया। '**अब सर्व प्रकार से अवसर आया है।**' सातवाँ बोल आया। '**ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन**

है।' वह आठवाँ आया। मगनभाई! है? अवसर-अवसर। बापा! अवसर है भाई! तु आत्मा के श्रद्धा, ज्ञान की पीछान कर, उसकी पहिचान अनन्त काल में की नहीं, बाकी पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप अनन्त बार कर चुका है। पुण्यबन्धन हुआ, मिथ्यादृष्टि हुई, चार गति में भटका है। परन्तु पुण्य-पाप के भावरहित, शुभाशुभ भावरहित मेरी चीज भिन्न है, वह शुभ के आधीन भी प्रगट नहीं होती, ऐसा पुरुषार्थ उसने कभी किया नहीं। कहो, रतिभाई! बराबर है? यह तो समझ में आये ऐसा है, नहीं समझ में आये ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है कि हमें (कैसे समझ में आये)। अरे..! सब में बुद्धि है, नहीं हो ऐसा है? क्षयोपशम है न? उघाड़ नहीं है? कहो, समझ में आया? अवसर आया, अवसर आया, अवसर आया.. आठ बार लिखा है।

श्रोता :- पानी में तैर सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- पानी में तैर सकता है शक्ति से। वह शक्ति उस समय नहीं है इसलिये तैर नहीं सकता है, अपनी शक्ति के कारण से है। बाद में कहे कि पानी का जोर हो तब नहीं तैर सकता। पानी का जोर हो तब उसकी शक्ति नहीं है इसलिये नहीं तैर सकता। पानी के जोर के कारण से नहीं। कहो, समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वही तैरे, वही अन्दर स्थिर हो। हमने तो छोटी उम्र में देखा है न। कालुभार (नदी)। दस साल की उम्र में दो किनारे पानी आता है न, तो देखने जाते थे। बहुत जोर से आये, बहुत पानी, (मानों) बडा समुद्र, कालुभार नदी उमराला की बड़ी नदी। वह तो मानो समुद्र आया। गाँव में पानी घुस जाये यहाँ तक। बाद में हम देखने को जाते थे। बहुत पानी। ब्राह्मण गिर गया था। दो गिरे थे उसमें-से एक निकला सीधा स्मशान में, सामने स्मशान जहाँ था वहाँ जैसे-तैसे निकला। बहुत साल पहले की बात है। ६०-६२ साल पहले की। समझ में आया?

'**अब सर्व प्रकार से अवसर आया है,...**' लो! जो सुनने बैठे हों, उसे कहते हैं। किसको कहते हैं? घर पर सुनाने जाते हैं? '**ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है। इसलिये श्रीगुरु दयालु होकर...**' देखो! '**मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं,...**' मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। भाई! तु मोक्षमार्ग प्रगट कर भाई! तैरने के रास्ते पर जा अब। डूबने के रास्ते पर तो अन्तकाल से गया है। अब करो, बापु! आत्मा का पहले निर्णय कर। मैं आत्मा ज्ञानमूर्ति चैतन्य हूँ, राग भी मेरी चीज में नहीं है। पुण्य-

पाप का भाव वह भी पृथक् भाव करने से होता नहीं, परन्तु कमजोरी के कारण अन्दर आता है ऐसी चीज है, मेरी चीज में वह है नहीं। ऐसा निर्णय कर, ऐसा ज्ञान और ऐसा अनुभव कर, वह तेरे अधिकार की बात है, किसी और के अधिकार की बात नहीं है।

श्रोता :– ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– हो गया। यही तो कहते हैं न कि, ऐसा उपदेश मिले और जो न सुने, न समझे उसके अभाग्य की बात क्या करनी? वह बात पहले हो गई। ऐसा पुस्तक सादी भाषा में लिखा गया और न पढे, दरिद्री को चिन्तामणी रत्न देखने मिले और न देखे और कुष्ठ को अमृतपान मिले और न पीए, उसके अभाग्य की बात क्या करनी? उसके अभाग्य की बात क्या करनी? ऐसा। पहले आ गया है न, पहले अध्याय में आ गया है। ऐसे जिसको ऐसी सुगम सादी सरल सीधी बात शास्त्र में लिखी हुई सुनने मिले और सुने नहीं, पढ़े नहि और विचार करे नहीं उसके अभाग्य का क्या कहना? उसके अभाग्य का क्या कहना? भाग्यवान की तो भाग्य..

श्रोता :– ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– वही कहते हैं न। देखो! आया है न, पहले आ गया है। २३ पृष्ठ पर, पृष्ठ--२३, दूसरा पेरेग्राफ। दूसरा पद, गुजराती में ऊपर दूसरा पेरेग्राफ।

‘**जिस प्रकार बड़े दरिद्री को अवलोकनमात्र चिन्तामणि की प्राप्ति हो और वह अवलोकन न करे, तथा जैसे कोढ़ी को अमृत–पान कराये और वह न करे; उसी प्रकार संसार पीडित जीव को...**’ यह संसार कोढ़ी है, दरीद्रि है। संसार पीड़ित प्राणी कोढ़ी और दरिद्री है। भले करोड़पति, अबजपति राजा हो तो भी भीखारी, दरिद्री है। आत्मा क्या चीज है उसकी खबर नहीं। संसार पीडित प्राणी यह ‘**जीव को सुगम मोक्षमार्ग के उपदेश का निमित्त बने और वह अभ्यास न करे उसके अभाग्य की महिमा...**’ कौन कर सके? उस ओर पंक्ति है। ‘**तो उसके अभाग्य की महिमा हमसे तो नहीं हो सकती। उसकी होनहार ही का विचार करने पर अपने को समता आती है।**’ रतिभाई! है?

कोई आठ साल के बच्चे को कहे कि तेरे पिता करोड़ रुपये छोड़कर गये हैं। तेरा बही खाता लाओ। वह बही खाता जाँचने को न दे, उसके अभाग्य की क्या बात करनी? ऐसे यह चिन्तामणी रत्न जैसे पुस्तक, यह मिले, उसको सुने नहीं, विचारे नहीं, सुनने को तैयार नहीं। अभी फुरसत नहीं है। बहुत अच्छा। चार गति में भटकने

का अवसर है। कहो, अरे..! यह देह छूटेगा, बापु! यह ... अटक जायेगा इतना याद रखना। आहाहा..! यह नहीं चलेगा। भिन्न दृष्टि किये बिना एकत्व में पील जायेगा। समझ में आया? भिन्न दृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन वह भिन्न दृष्टि है। सम्यग्दर्शन है। मोक्ष का मार्ग भिन्न है। भिन्न ही है राग से, पर से। ऐसी दृष्टि को प्रगट किये बिना... ... एकत्वबुद्धि .. बारीश में ... मरे ऐसे मरकर चला जायेगा। बाहर में कोई शरण नहीं है। कहो, समझ में आया?

'**मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं, उसमें भव्य जीवों को प्रवृत्ति करना।**' अपना चलता विषय।

'**अब, मोक्षमार्ग का स्वरूप कहते हैं।**' देखो! इतना तो उपोद्घात किया। अब मोक्षमार्ग स्वरूप बताते हैं।

मोक्षमार्ग का स्वरूप

परमानन्दरूपी पूर्ण शुद्ध दशा ऐसा मोक्ष उसका मार्ग अर्थात् कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसके स्वरूप की बात अब कहते हैं। '**जिनके निमित्त से आत्मा अशुद्ध दशाको धारण करके दुःखी हुआ...**' देखो! फिर से वह बात आयी। मोहादि कर्म तो निमित्त है ऐसा स्पष्ट कर दिया। '**निमित्त से आत्मा अशुद्ध दशा धारण करके दुःखी हुआ...**' है। अशुद्ध दशा में, शुभ और अशुभ दोनों भाव आ जाते हैं। अनन्त बार जो नवमी ग्रैवेयक के पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले वह भी अशुद्ध दशा है। समझ में आया? वर्तमान से अनन्त काल पर्यंत के भूतकाल में जिसके निमित्त से आत्मा अशुद्ध दशा धारण करे। देखो! नैमित्तिक अशुद्ध दशा उसने धारण की है। मोहकर्म तो निमित्त है। नैमित्तिक उसने अशुद्ध दशा धारण करी। यह अशुद्ध दशा में नौंवी ग्रवैयक जैन दिगम्बर साधु होकर गया अट्ठाईस मूलगुण पालकर मिथ्यादृष्टि और अशुद्ध दशा है ऐसा कहा है। निगोद की भी अशुद्ध दशा, ग्रैवेयक में गया वह अशुद्ध दशा। कहो, समझ में आया? पंच महाव्रत पाले वह अशुद्ध दशा और पाप के भाव हुए वह भी अशुद्ध दशा।

'**जिनके निमित्त से...**' मोक्षमार्ग बताना है न? तो अशुद्ध दशा है सो संसार है, शुद्धता प्रगट करे उसको मोक्षमार्ग कहते हैं, इसलिये बताते हैं। समझ में आया कुछ? '**जिनके निमित्त से आत्मा अशुद्ध दशाको धारण करके दुःखी हुआ है...**' अपने ऊल्टे पुरुषार्थ से निमित्त के लक्ष्य से, निमित्त के आश्रये अशुद्ध नाम शुभ और अशुभ भाव और मिथ्या भ्रमणा (किये)। शुभभाव से हित होगा, अशुभ

भाव में सुख है ऐसी बुद्धि, वह सब अशुद्ध दशा धारण की है आत्माने। कर्म ने धारण नहीं की। समझ में आया? अशुद्ध दशा को धारण करके। आत्मा की पर्याय की अवस्था में अस्तित्व में अशुद्ध दशा है, कहीं कर्म के अस्तित्व में अशुद्ध दशा नहीं है। समझ में आया?

'**अशुद्ध दशा को धारण करके दुःखी हुआ है...**' आहाहा..! भाषा देखो! समझ में आया? शुभभाव में धर्म, अशुभभाव में मझा, अनुकूल निमित्त प्राप्त करना, प्रतिकूलता को दूर करनी, ऐसी तेरी मान्यता का भाव वह सब अशुद्ध दशा है। समझ में आया? पंच महाव्रत और बारह व्रत के विकल्प अनन्त बार किये, अट्ठाईस मूलगुण पाले 'मुनिव्रत धार अनन्त बैर ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' 'मुनिव्रत धार अनन्तबैर ग्रैवेयक उपजायो,' नौंवी ग्रैवेयक अनन्त बार गया आत्मा, दिगम्बर जैन साधु होकर, परन्तु दृष्टि मिथ्यात्व। पँच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण पाले और उसको धर्म माना, उसको धर्म स्वीकार किया। हम धर्म करते हैं, बारह व्रत पालते हैं। अरे..! बारह व्रत हो तो राग मन्द है, बारह व्रत है वह तो। वह व्रत धर्म कहाँ है? समझ में आया? ऐसे सम्यग्दर्शन बिना मिथ्यादृष्टि शुभाशुभभाव अनन्त बार करके अशुद्ध दशा धारण करके दुःखी हो रहा है, दुःखी हुआ है। यह गुजराती भाषा है। हिन्दी पहले कहा। थोड़ी-थोड़ी हिन्दी... गुजराती समझना चाहिये। हिन्दी तो दररोज हिन्दी आती है।

'**ऐसे जो मोहादिक कर्म...**' देखो! अशुद्ध दशा आत्माने धारण की है। आत्मा में अशुद्ध दशा है, निमित्त कर्म है। नैमित्तिक अपनी अशुद्ध दशा है, इन दोनों को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं। कर्म कर्ता और अशुद्धदशा कार्य ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा..! '**ऐसे जो मोहादिक कर्म उनका सर्वथा नाश होने पर...**' देखो! आठ कर्म के निमित्त का, यहाँ अशुद्धदशा होने से, अशुद्धता का नाश होने पर निमित्त का भी नाश (होता है)। '**सर्वथा नाश होने पर केवल आत्माकी...**' मोक्षदशा का वर्णन करते हैं। '**केवल आत्मा की सर्व प्रकार शुद्ध अवस्था का होना - वह मोक्ष है।**' अशुद्ध दशा थी वह संसार है। शुभ और अशुभ भाव किये वही संसार है। समझ में आया?

नौंवी ग्रैवेयक अनन्त बार गया, शुक्ललेश्या होकर गया। शुक्ललेश्या द्रव्यिलंगी जैन दिगम्बर साधु। शुक्ललेश्या संसारदशा, शुक्ललेश्या संसारदशा है। हाय.. हाय...! क्योंकि शुक्ललेश्या बन्ध का कारण है। छहों लेश्या श्लेष है श्लेष. लकड़े को कागज़ ...

करना हो तो श्लेष होता है न? गम। ऐसे आत्मा को कर्म चीपकाये वह श्लेष है। छह लेश्या बाद में कृष्ण, नील, कपोत या तेजो, पद्म, शुक्ल हो। पंच महाव्रत के परिणाम वह शुक्ललेश्या है, धर्म नहीं। आहाहा..! समझ में आया?

ऐसी '**अशुद्ध दशा को धारण करके दुःखी हुआ – ऐसे जो मोहादिक कर्म उनका सर्वथा नाश होने पर केवल आत्मा की सर्व प्रकार...**' दो बात ली है न? सर्वथा नाश होनेपर और सर्व प्रकार से शुद्ध, सर्व प्रकार से शुद्ध। '**वह मोक्ष है।**' देखो! सर्व प्रकार से शुद्ध अवस्था हुई। उसमें लिया है न कि अशुद्ध दशा धारण कर रखी है। वह निमित्त, उस निमित्त का नाश और यहाँ सर्वथा अशुद्ध दशा का नाश और सर्वथा अशुद्धदशा का नाश और सर्व प्रकार से शुद्ध अवस्था की उत्पत्ति। अशुद्ध अवस्था का नाश--व्यय और सर्वथा शुद्ध दशा की उत्पत्ति, उसका नाम भगवान मोक्ष कहते हैं। समझ में आया? मोक्षदशा अंतर शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अन्तर रमणता द्वारा प्राप्त हो उस मार्ग को मोक्ष का उपाय कहने में आता है। समझ में आया कुछ?

'**उसका जो उपाय...**' देखो! शुद्ध अवस्था का। उसका जो '**कारण; उसे मोक्षमार्ग जानना।**' उसे मोक्षमार्ग कहने में आता है। अब देखो! यह मोक्षमार्ग, मार्ग है न मार्ग? इसलिये कारण से शुरू किया। मार्ग कहो, उपाय कहो या कारण कहो। '**वहाँ कारण तो अनेक प्रकार के होते हैं।**' मोक्षमार्ग वह कारण है। किसका? मोक्ष की पर्याय का, पूर्ण मोक्ष पर्याय का कारण। अब उस कारण के साथ दूसरा कारण भी अनेक होते हैं। परन्तु कहते हैं कि '**कारण तो अनेक प्रकार के होते हैं।**' यह कारण मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट करे, जरुर मोक्ष मिले। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

'**कारण तो अनेक प्रकार के होते हैं। कोई कारण तो ऐसे होते हैं जिनके हुए बिना तो कार्य नहीं होता,...**' जिनके हुए बिना कार्य नहीं होता, '**और जिनके होने पर कार्य हो या न भी हो।**' एक कारण। क्यों? '**मुनिलिंग धारण किये बिना तो मोक्ष नहीं होता।**' द्रव्यलिंग नग्न दशा विना केवलज्ञान तीन काल में नहीं होता। जहाँ आत्मा का सम्यग्दर्शन, चिदानन्द मूर्ति ज्ञातादृष्टा का भान हुआ और उसमें लीन... लीन... आनन्द की मौज, अतीन्द्रिय आनन्द की भरती आये अन्दर में, उसको तो वस्त्र लेने का विकल्प ही होता नहीं। और शरीर नग्नदशा हुए बिना रहती नहीं। समझ में आया? भारी गड़बड़।

वह कहता है कि वस्त्र और शरीर नग्न न हो तो केवल पामे। तीन काल में नहीं होता। दूसरा कहता है, हम नग्न हो गये इसलिये मुनि हो गये। तीन काल में नहीं। बाहर की दशाएँ तो निमित्त हैं। अंतर में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र प्रगट किये बिना तेरी नग्न दशा में अट्ठाईस मूलगुण कोई कार्यकारी नहीं है। समझ में आया? यहाँ मार्ग है न मार्ग? मार्ग अर्थात् उपाय और कारण। उस कारण में कौन-सा कारण हो तो अवश्य मोक्ष हो और कुछ कारण हो और न हो वह कौन-सा, ऐसा यहाँ बताते हैं। समझ में आया?

अपना स्वरूप शुद्ध तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यक् अनुभव। राग, पुण्य और निमित्त से पर। ऐसा अपने आत्मा का अनुभव हुआ तो वह आत्मा सम्यग्दृष्टि एक राग की क्रिया का कर्ता नहीं। परमाणु ऐसे हिले-डुले वह मेरी क्रिया नहीं, वह जड़ की है। ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ, बाद में स्वरूप में लीनता हुई। आनन्द... आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द में लीनता हुई। तब चारित्र दशा होती है। वह चारित्रदशा हो तब मुनिलिंग द्रव्यलिंग होता, होता और होता ही है। समझ में आया? परन्तु द्रव्यलिंगी मुनिपना हुआ और अट्ठाईस मूलगुण पालते है तो वह मुनि है ऐसा नहीं। धर्मचन्दजी! समझ में आया?

'मुनिलिंग धारण किये बिना तो मोक्ष नहीं होता। परन्तु मुनिलिंग धारण करने पर मोक्ष होता भी है और नहीं भी होता।' क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए बिना मुनिलिंग और अट्ठाईस मूलगुण से भी मोक्ष होता नहीं। कहो, बराबर है? रतिभाई! इसमें मुनिलिंग अट्ठाईस मूलगुण से मोक्ष नहीं होता ऐसा कहते हैं।

श्रोता :- ....

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो पहले कहा नहीं? दौलतराम। 'मुनिव्रत धार अनन्त बैर ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन बिना तेरे पँच महाव्रत किस तराजु पर तौलना? अट्ठाईस मूलगुण तो राग, आस्रव, पुण्य है, धर्म-बर्म नहीं। आहाहा..! समझ में आया? परन्तु जब आत्मा का दर्शन, ज्ञान और चारित्र होता है, अंतर अनुभव की दृष्टि, छठवाँ गुणस्थान, मुनि की चारित्रदशा छठवाँ गुणस्थान नग्न दशा और वस्त्र रहित दशा हुए बिना होती नहीं। वह दशा तो ऐसी होती है। समझ में आया?

कोई ऐसा कहे कि हमें तो केवलज्ञान हो गया है। वस्त्र-पात्र है, मुनिपना हो गया है। मूढ है। धर्म को समझता नहीं। धर्म क्या चीज़ है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो सकता

है। राजपाट हो, स्त्री, कुटुम्ब हो तो भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो सकता है। परन्तु चारित्र-स्वरूप की रमणता करने में जब आया, तब तो शरीर की नग्न दशा हुए बिना रहती नहीं। करनी नहीं पड़ती। वह तो जड़ की अवस्था है मिट्टी की। जड़ की अवस्था हो जाती है, हो जाती है। उसको धारण करना ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा..! ... समझ में आया?

'मुख्यतः तो जिनके होने पर कार्य होता है, परन्तु किसी को बिना हुए भी कार्यसिद्धि होती है।' दूसरी बात करते है हाँ! वह बात वहाँ पूरी हो गई। अब **'मुख्यतः तो जिनके होने पर कार्य होता है, परन्तु किसी को बिना हुए भी कार्यसिद्धि होती है। जैसे - अनशनादि बाह्यतप का साधन करने पर मुख्यतः मोक्ष प्राप्त करते हैं;...'** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अन्दर हो, बाह्य तप का साधन भी निमित्तरुप से होता है।

'परन्तु भरतादिकके बाह्यतप किये बिना ही मोक्ष की प्राप्ति हुई।' अंतर के अनुभव की उग्रता से। तप का तो अनशन निमित्तपना, तप का कुछ था नहीं। अन्दर आत्मा के आनन्द में उतरकर, आनन्द की खान में अंतर में प्रवेश करके सहज ... एकदम केवल प्राप्त हो जाये। अंतर्मुहूर्त में केवल। मुनिपना लेकर अंतर्मुहूर्त में केवल। तपस्या-बपस्या हुई नहीं। अन्दर हो गई। किसीको बाह्य में निमित्तपने अनशनादि होता है। परन्तु साधन तो अन्दर में निश्चय का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र करता हो वह, तब इस बाह्य निमित्त को निमित्त साधन कहने में आता है। परन्तु वह निमित्त साधन किसी को नहीं भी होता है और किसी को होता है। वह बात करते हैं। समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- अच्छा कौन कहता है अच्छा? अच्छा नहीं है। धारण किया हो तो मालूम पड़े। हैरान हो जाये हैरान मुफ्त में। एय..! केसरीचन्दजी! सेठ को कौन कहे? आपके जैसे मित्र कहे। उठाकर खींचकर लाये। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है मूलाचार में। अरे..! भावलिंग बिना मात्र द्रव्यलिंग मेरे शत्रु को भी न हो। मूलाचार में गाथा है। नवनीतभाई! भाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बिना केवल द्रव्यलिंग मेरे दुश्मन को भी न हो।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- भाव शुभ, धर्मभाव नहीं। ऐसा कहते हैं कि भाव हुए तब

मुनि हुए न। शुभभाव होता है राग की मन्दता। धर्म-बर्म नहीं। देखो! यह तुम्हारा उत्तर दिया। मुलाचार में है। विशेष आयेगा...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

बुधवार, दि.१२-१२-१९६२
अधिकार - ९, प्रवचन नं.-२९

यह मोक्षमार्ग प्रकाशक टोडरमलकृत है, वह चलता है। नाम सुना है? मोक्षमार्गप्रकाशक। डामरा में नहीं है? वह टोडरमल है न, टोडरमलजी हुए हैं, (उन्होंने) मोक्षमार्ग प्रकाशक शास्त्र बनाया है उसकी बात (चलती है)। मोक्षमार्ग का स्वरूप। डामरा के है। उसमें मोक्षमार्ग का स्वरूप दिखाते हैं कि आत्मा जो अनादि काल से कर्म का निमित्त है और अपनी दशा में मलिन दशा, अशुद्ध दशा जो हो रही है, पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव दोनों अशुद्ध दशा आत्मा की अवस्था में है उससे वह दुःखी हो रहा है। कहो सेठ! बराबर है? अशुद्ध दशा से दुःखी हो रहा है। आत्मा तो ज्ञानानन्द शुद्ध चिदानन्द मूर्ति है उसका स्वरूप। परन्तु अनादि काल से अपनी पर्याय नाम दशा में शुभ पुण्य और पाप भाव दोनों मलिन भाव से अनादि से दुःखी हो रहा है। उससे छूटने का उपाय भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर ने उसका मोक्ष का मार्ग बताया। तो मोक्ष का मार्ग क्या है वह बात चलती है। देखो!

मोक्ष तो आत्मा की पूर्ण पवित्र दशा होना उसका नाम मोक्ष। आत्मा की पूर्ण अरागी, अविकारी, वीतरागी दशा पूर्ण होना उसका नाम मोक्ष (है)। उसका मार्ग... यहाँ गड़बड़ नहीं चले, कथा-वार्ता नहीं है। उसमें तो शान्ति हो तो कथा चले ऐसी बात है न? यह आत्मा देह से तो भिन्न है। यह आत्मा है वह देह से तो भिन्न है, परन्तु उसकी अपनी पर्याय नाम अवस्था-दशा में अनादि काल से पुण्य और पाप, पापभाव होता है हिंसा, जूठ, चोरी, विषयभोग वासना उसमें उसकी रुचि है वह मिथ्यारुचि

है। और उसमें जो दया, दान, व्रत, तप, पूजा, भक्ति, यात्रा का शुभभाव होता है उसमें धर्मबुद्धि है वह भी मिथ्याबुद्धि है। समझ में आया? क्योंकि दोनों पुण्य और पाप भाव दोनों अशुद्ध मलिन भाव है। वह पहले से चला है। '**जिनके निमित्त से आत्मा अशुद्ध दशाको धारण करके दुःखी हुआ।**' पहली पंक्ति है। वह चल गया है।

आत्मा में शुभ और अशुभ दोनों भाव मलिन है। समझ में आता है? हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, काम, क्रोध वह पाप भाव है और दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, यात्रा वह शुभभाव, पुण्यभाव है। दोनों भाव है वह बन्ध का कारण है। वह अशुद्ध है। उससे छूटने का उपाय क्या वह बताते हैं। समझ में आया? समजाय छे अर्थात् कुछ समझ में आता है?

आत्मतत्त्व थोड़ी सूक्ष्म बात है। ऐसे अनादि काल से परिभ्रमण करते हुए अनन्त अवतार स्वर्ग में भी अनन्त बार हुए। पुण्य करके तो अनन्त बार स्वर्ग में गया। पाप किया तो नरक और पशुयोनि में गया। वह दोनों चार गति का कारण जो भाव, दोनों को यहाँ भगवान अशुद्ध कहते हैं। अशुद्ध कहो कि सराग कहो। सरागी भाव वह अशुद्ध भाव है, उससे दुःखी हो रहा है चौरासी के अवतार में। वह सरागी भाव से रहित मोक्ष का मार्ग वीतरागी भाव है। सेठी! वीतरागी भाव मोक्षमार्ग है। केसरीचन्दजी! राग तो कहते हैं न, पहले अशुद्ध दशा की तो बात कही।

अनादि काल, शुभ और अशुभ शुक्ललेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या वह शुभभाव। कृष्ण, नील, कापोत वह अशुभभाव। दोनों रागभाव, पंच महाव्रत का भाव भी रागभाव, अव्रत का भाव भी रागभाव। अव्रत का पाप राग, व्रत का पुण्य राग। परन्तु दोनों राग है। समझ में आया? उस राग को यहाँ अशुद्ध दशा कहने में आती है। ओहो..! वीतराग मार्ग..! राग है उसकी रुचि छोड़कर अपना शुद्ध चिदानन्द ज्ञानानन्द स्वरूप है उसका वीतराग स्वभाव आत्मा का है, उसमें वीतरागी दृष्टि करना और राग की रुचि छोड़ना उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन वीतराग की पर्याय मोक्ष का मार्ग है। नवनीतभाई! आहाहा..! खबर नहीं, खबर नहीं कि क्या राग है और क्या आत्मा? यहाँ मोक्षमार्ग चलता है। तो मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव है। मोक्षमार्ग का अर्थ ही वीतरागभाव है और बन्ध मार्ग का अर्थ ही रागभाव है। आहाहा..! कहो, देवानुप्रिया!

श्रोता :- अब कुछ करना पड़ेगा। अब करना क्या यह कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह क्या चलता है? कि यथार्थ वीतराग स्वभाव आत्मा का है। वीतराग विज्ञानघन आत्मा है। उसको भूलकर वर्तमान दशा में जो रागभाव, राग

के दो प्रकार--शुभ-अशुभ दोनों। रागभाग है उसको हित मानना, उसको लाभकारक मानना वह मिथ्यादृष्टि विकारी राग भाव की दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। और वह राग भाव है शुभ या अशुभ दोनों, उससे उदासीन होकर, मैं ज्ञानस्वरूप शुद्ध चिदानन्द ज्ञाता हूँ। मेरी चीज में राग नहीं। राग की रुचि हटकर स्वभाव राग रहित त्रिकाली चैतन्य भगवान अपना स्वरूप रखते हैं, उसकी अन्तर स्वभाव की दृष्टि करना वह वीतरागी दृष्टि हुई। राग से तो दुःखी होता है। अब दुःख से मुक्त होने का उपाय क्या? पूर्ण दुःख से मुक्त होना वह मोक्ष है। तो मोक्ष का कारण क्या? कि राग से मुक्त होना। पुण्य-पाप का विकल्प जो है, वृत्ति उठती है भाव, उसको हटाकर, उसकी रुचि छोड़कर राग से रहित मेरी चीज़ ज्ञान, आनन्द और शुद्ध है, ऐसी प्रथम दृष्टि वीतरागदृष्टि उसको कहते हैं। वह वीतरागदृष्टि कहो या सम्यग्दृष्टि कहो। सम्यग्दृष्टि कहो कि सत्यदृष्टि कहो कि मोक्ष का मार्ग का एक भाग कहो। समझ में आता है? बात बहुत (सूक्ष्म है)।

अनन्त काल से 'मुनिव्रत धार अनन्तबैर ग्रैवेयक उपजायो' वह आता है? वह दौलतराम, दौलतराम है न दौलतराम? उनकी छह ढाला आती है। छह ढाला चलती है कि तुम्हारे डामरा में? उसमें वह आता है कि 'मुनिव्रत धार अनन्तबैर ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' अनन्त बार मुनिव्रत धारण किये, अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत (पाले) परन्तु वह तो राग है। और अव्रत, हिंसा, झूठ, विषय भोग, भाव वह पापराग है। दोनों राग की रुचि रखना वह मिथ्यादृष्टि का बन्धमार्ग है। और दोनों पुण्य-पाप राग की रुचि छोड़कर ज्ञायक चिदानन्द मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हूँ, ऐसी रागकी रुचि छोड़कर। तो राग की रुचि छूटी, वह तो व्यय हुआ। तो वीतराग विज्ञानघन चैतन्य अपना स्वरूप शुद्ध है उसकी दृष्टि का होना उस दृष्टि का नाम सम्यग्दृष्टि, सम्यग्दर्शन अथवा वीतराग मार्ग की दृष्टि (है)। समझ में आया? तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन उसको कहते हैं।

तो कहते हैं कि बहुरी। बहुरी वह ढुँढारी भाषा है जयपुर की। बहुरी नाम और '**कई कारण ऐसे हैं जिनके होनेपर कार्यसिद्धि होती ही होती है,...**' है सेठी? मोक्षमार्ग कारण प्रगट हो तो मोक्ष हो ही हो। मोक्षमार्ग अंतर में प्रगट करने से मोक्ष होता ही है। '**जिनके होने पर कार्यसिद्धि होती ही होती है, और जिनके न होनेपर सर्वथा कार्यसिद्धि नहीं होती।**' अपना आत्मा पूर्ण परमात्मा आनन्ददशा को प्राप्त हो उसका नाम मोक्ष। और उसका कारण जो कारण प्रगट हो, कार्य आये बिना रहता ही नहीं। उस कारण को यहाँ मोक्षमार्ग कहते हैं। तो वह मोक्षमार्ग वीतरागी

दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, अनन्त काल से रुचि नहीं हुई।

अनन्त काल हुआ, मुनि भी अनन्त बार दिगम्बर हुआ, वस्त्र-पात्र छोड़कर अट्ठाईस मूलगुण धारे, जंगल में रहा, तो भी 'मैं पर को न मारुँ और पर को दुःखी न करुँ, पर को सुखी करुँ, मेरे से दुनिया धर्म प्राप्त करे' ऐसा जो राग उठता है वह विकार है। और उस राग में धर्म मानना वह दृष्टि रागवाली दृष्टि है तो वह मिथ्यादृष्टि है। ओहोहो..! परन्तु रागरहित मैं आत्मा ओहो..! जिसको पहले क्षण में शुभ और अशुभ भाव से उदास होकर अपना चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव से शुद्ध भरा है, उसमें एकाकार होकर सम्यग्दर्शन प्रगट करना वह सम्यग्दर्शन वीतरागमार्ग का एक अवयव है। वीतरागभाव कहो या मोक्षमार्ग कहो। उसका एक भाग है तो उसमें वीतरागदृष्टि आती है। नवनीतभाई! समझ में आता है कि नहीं? यह तो हिन्दी भाषा चलती है तुम्हारी। आहाहा..!

देखो! '**जैसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता होनेपर...**' सम्यग्दर्शन। अपना शुद्ध चैतन्य स्वरूप, जो पुण्य-पाप का राग से रहित अपना चैतन्य आनन्दकन्द केवलज्ञान का पिण्ड प्रभु आत्मा है। उसकी अन्तर में राग की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि वीतरागी करना उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? यह तुम्हारी हिन्दी भाषा चलती है न।

और सम्यग्ज्ञान। सम्यग्ज्ञान का अर्थ? अपना आत्मा पुण्य-पाप के राग से रहित है, ऐसा आत्मा का ज्ञान, वीतरागी स्वभाव उसका ज्ञान, उसका ज्ञान वह वीतरागी मार्ग का एक अवयव है वह वीतरागी विज्ञान हुआ। वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान।

और चारित्र। चारित्र भी वीतरागभाव है अन्दर। आत्मा शुद्ध चिदानन्द मूर्ति, उसकी वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी परिणति--लीनता। पंच महाव्रतादि विकल्प वह राग है, उससे रहित अपनी परिणति वीतरागी होना उसका नाम भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा चारित्र कहते हैं। कहो, शुकनचन्दजी! ये तुम्हारे आसपास का आये हैं। पहचानते हो? सागर के आसपास से है, आसपास है। ओहो..! मार्ग तो.. या राग मार्ग, या शुद्ध मार्ग, या अशुद्ध मार्ग या शुद्ध मार्ग--दो प्रकार। सेठिया। पहले अशुद्ध से शुरू किया है न? न्याय से बात ली है।

ओहो..! प्रभु आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु, उसमें तो पुण्य-पाप का राग अंतर में है ही नहीं वस्तु में। नयी पर्याय में--अवस्था में--हालत में शुद्ध को भूलकर और अशुद्ध दशा पुण्य-पाप की उत्पन्न करता है और वह मुझे

हितकर है (ऐसा मानना) उसका नाम मिथ्यात्वभाव (है)। उस तरफ का अकेला ज्ञान करना वह ठीक है वह मिथ्याज्ञान (है) और राग-द्वेष में एकाकार होकर मानना कि ठीक मेरा वर्तन है, उसका नाम मिथ्याचारित्र (है)। नवनीतभाई! कहो, सेठी! समझ में आया? कहाँ गया परन्तु व्रत और यह? केसरीचन्दजी!

भगवान! तेरी चीज तो शुद्ध ज्ञानानन्द मूर्ति है। वह ज्ञानप्रकाश का तेज, प्रकाश का तेज तेरी चीज है। उसमें तो राग का कण नहीं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव भी स्वरूप में नहीं है, वह तो राग है। आहाहा..! षोडशकारण भावना आती है न भाई! वह आस्रव है न, आस्रव है तो बन्ध पडता है। धर्म से बन्ध नहीं होता। प्रकृति का बन्ध पड़ता है वह पुण्यभाव से पड़ता है। तो षोडश कारणभावना भी राग भाग है तो उससे बन्ध पड़ता है। तो आत्मा राग को छोड़कर जब वीतराग होगा तब केवलज्ञान पायेगा। राग को रखकर केवलज्ञान पाता है तीर्थंकरगोत्र बाँधनेवाला वह भी होता नहीं। समझ में आया? आहाहा..! यह वस्तु कोई ऐसी नहीं है कि केवल जानपना कर ले या केवल बात करे या राग का आचरण कर दे।

वस्तु पूर्णानन्द वीतराग विज्ञानघन से भरी है। दूसरी भाषा से कहें तो समरस ज्ञान है। आत्मा का अन्दर स्वभाव समरस ज्ञान है। उसकी रुचि छोड़कर अनादि रागरस की रुचि की है वह मिथ्याश्रद्धा है। फिर शुभ हो या अशुभ हो। पुण्य शुभ हो या अशुभ को ज्ञेय बनाया, स्वे ज्ञेय समरस ज्ञान का ज्ञेय छोड़ दिया और पुण्य-पाप रागादिक को ज्ञेय बनाया (वह) मिथ्याज्ञान है। नवनीतभाई! और समरस स्वरूप अपना चैतन्य स्वरूप है उसमें लिनता छोड़कर शुभाशुभभाव में लीनता हुई वह मिथ्याचारित्र है, वह बन्ध का कारण है। तो बन्ध के कारण से रहित मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (की) एकता भये, तीनों की एकता अंतर में (हुई वह मोक्षमार्ग है)।अहो..! शास्त्र का ज्ञान थोड़ा हो, विशेष हो उसके साथ सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? देवानुप्रिया! परन्तु वीतरागी आत्मा स्वभाव और अंतर स्वभाव वीतराग न हो तो जब वीतराग होगा वह वीतराग दशा आयेगी कहाँ-से? कोई बाहर से आती है? समझ में आता है? जब वीतराग दशा होगी, अरिहन्त परमात्मा होता है वीतराग, तो वीतराग वह दशा है--अवस्था है वह कहाँ से आयी है? क्या रागमें से आयी है? शरीरमें से आयी है? आत्मा में वह वीतरागशक्ति पड़ी है। समझ में आया? जैसे हम पीपर का दृष्टान्त देते हैं न? छोटीपीपर नहीं होती है? लींडीपीपर कहते हैं, क्या कहते हैं आप लोग? छोटीपीपर नहीं कहते? छोटीपीपर कहते हैं न? उसे घिसते हैं तो चौसठ पहोर होती

है न, चौसठ पहोर। चरपरायई नहीं होती? बहुत सरदी होनेपर देते हैं। तो वह चोसठ पहोरी चरपराई प्रगट हुई वह कहाँ से हुई? क्या पत्थर से हुई है?

श्रोता :- उसीमें से हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसमें से हुई है, उसमें है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। एक सेठ थे न वहाँ? कहाँ गये थे? कौन-सा गाँव? नहीं, नहीं, उनके दामाद, सेठ के दामाद। परतवाड़ा। परतवाड़ा में एक सेठ सर हुकमीचंदजी थे या कौन? दामाद थे। परतवाड़ा है। मुक्तागिरी है न यात्रा? मुक्तागिरी पाँच कोस है मुक्तागिरी। वहाँ हम यात्रा करने गये थे तो वहाँ परतवाड़ा आया था, पहले परतवाड़ा (आता है)। व्याख्यान हुआ, दामाद बैठे थे, गृहस्थ है, बड़ा मकान है परतवाडा में। मैंने कहा, यह कहाँ से आई चौसठ पहोरी चरपराई? बात तो सच्ची है, अन्दर में थी तो आई, अन्दर में है तो आई।

ऐसे अपने आत्मा में वीतराग केवलज्ञान दशा प्राप्त हो, कहाँ से आती है? अन्दर में है। खबर नहीं। वह तो (मानता है कि) 'राग की क्रिया मैं करुँ, निमित्त को मैं जुटाउँ, तो उसमें से मेरी वीतराग का झरना होता है, वीतराग की उत्पत्ति होती है', दृष्टि में विपर्यास है। अपने स्वभाव में वीतराग विज्ञानघन है ज्ञान वीतराग अकषाय रसघन है। ओहो..! ऐसा वीतराग विज्ञान, वीतराग कहो या अकषाय ज्ञान कहो, स्वभाव ही वीतराग विज्ञान है। उसकी दशा में वीतराग विज्ञानघन की दृष्टि करना उसका नाम सम्यग्दर्शन है और उसका ज्ञान करना उसका नाम सम्यग्ज्ञान है, उसमें लीनता होने का नाम चारित्र है। और वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के कारण से पूर्ण वीतराग विज्ञानघन कार्य आत्मदशा प्रगट होगी। दूसरे कोई उपाय से होगी नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं कि '**जैसे - सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता होनेपर तो मोक्ष होता ही होता है,...**' पहले तो आ गया था कि मुनिव्रत का द्रव्यलिंग धारण करे, मोक्ष जब अपना हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा (हो) तब तो द्रव्यलिंग नग्न होती ही होती है, द्रव्यलिंगी हो नग्न। परन्तु द्रव्यलिंग धारण किया, मोक्षमार्ग अन्दर प्रगट किया नहीं तो उससे मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? वह पहले बात आ गई है कारण में।

और भरत चक्रवर्ती आदि को तप करना ही नहीं पड़ा, बाह्य तप। अंतर के आत्मा के ध्यान में आनन्दकन्द वीतराग विज्ञानघन। ओहो..! सब से उदास। राग से उदास,

संयोग से उदास। उद्-आसन--उससे उदास, स्वभाव में आसन लगाया। स्वभाव ज्ञायकमूर्ति में दृष्टि का आसन लगाया। लीनता हुई अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान (हो गया)। अन्तर्मुहूर्त। समझे अंतर्मुहूर्त? थोड़ा काल, दो घड़ी के अन्दर। दो घड़ी के अन्दर केवलज्ञान। तो किसी को बाह्य तप न भी हो, किसी को हो भी। परन्तु द्रव्यलिंगी तो जब केवलज्ञान पाने की चारित्रदशा प्रगट करे तब तो द्रव्यलिंग नग्न होता ही है। दूसरा कोई लिंग हो और केवलज्ञान पाते हैं या चारित्र होता है ऐसा बनता नहीं। समझ में आया?

परन्तु द्रव्यलिंग धारण करे वह तो अनन्त बार किया। पर अंतर में वीतराग स्वभाव रुचा नहीं। राग का विकल्प उठता है उसकी रुचि, उसमें जच गया, उसमें दृष्टि लग गई। अपना भगवान आत्मा राग के कण से भिन्न चैतन्यकन्द है, राग के कण से भिन्न चैतन्यकन्द है ऐसी दृष्टि की नहीं, नौंवी ग्रैवेयक मुनिव्रत धार अनन्त बैर गये, परन्तु जन्म-मरण का अन्त आया नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं कि आत्म सम्यग्दर्शन। आत्मा का दर्शन--प्रतीत, आत्मा का ज्ञान। यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान लेंगे।

'**चारित्रकी एकता होने पर तो मोक्ष होता ही होता है, और उनके न होने पर सर्वथा मोक्ष नहीं होता।**' लाख द्रव्यलिंग धारण करे, अठ्ठाईस मूलगुण भी पाले, पुण्य होगा। अंतर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान की प्रगट दशा किये बिना उससे कभी मोक्ष होता नहीं। '**ऐसे यह कारण कहे, उनमें अतिशयपूर्वक नियम से मोक्ष का साधक जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का एकीभाव...**' बहुत कारण कहे थे न, तप आदि? '**अतिशयपूर्वक नियम से मोक्षका साधन जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का एकीभाव...**' दर्शन-ज्ञान-चारित्र अंतर में एकरूप हो तब उसको एक क्षण में मोक्ष होगा। '**सो मोक्षमार्ग जानना। इन सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र में एक भी न हो तो मोक्षमार्ग नहीं होता।**' एक भी न हो अर्थात्? राग की मन्दता की क्रिया करे। परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान न हो तो भी मुक्ति नहीं (होती)। और सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट करे, परन्तु राग का अभाव करे नहीं तब भी मुक्ति नहीं (होती)। सेठी! वीतरागभाव तीनों की एकता ऐसा कहते हैं।

'**वही सूत्र में कहा है :-**' देखो! तत्त्वार्थसूत्र दसलक्षणी पर्व में बहुत पढ़ते हैं। पढ़ते हैं न वह उमास्वामी का तत्त्वार्थसूत्र। '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणी मोक्षमार्गः।।**' पहला सूत्र लिया तत्त्वार्थसूत्र का। जो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मुनि दिगम्बर हुए, जंगल में बसनेवाले दो हज़ार वर्ष पहले, उनके शिष्य उमास्वामी थे उसने तत्त्वार्थसूत्र बनाया, जो दसलक्षणी पर्व में पढ़ने में आता है। वह पहला सूत्र कहा, देखो! '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणी**

मोक्षमार्गः।।' '**इस सूत्र की टीका में कहा है कि यहाँ 'मोक्षमार्गः' ऐसा एकवचन कहा,...**' मोक्षमार्ग एक है ऐसा। मोक्षमार्ग तीन नहीं। '**उसका यह अर्थ है कि तीनों मिलने पर एक मोक्षमार्ग है,...**' सम्यक् आत्मा की अनुभव में प्रतीत, सम्यक् आत्मा का ज्ञान और आत्मा में वीतरागी चारित्र की रमणता। तीनों होकर एक मार्ग है। '**अलग-अलग तीन मार्ग नहीं हैं।**'

'**यहाँ प्रश्न है कि असंयत सम्यग्दृष्टि के तो चारित्र नहीं है,...**' क्या प्रश्न किया? देखो! श्रेणिक राजा भगवान के काल में थे, सम्यग्दृष्टि थे, परन्तु चारित्र नहीं था। भगवान महावीर परमात्मा त्रिलोकनाथ भगवान के समवसरण में राजगृही में जब परमात्मा बिराजते थे, तब श्रेणिक राजा बारंबार सुनने को जाते थे। वह श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती थे और उसने तीर्थंकर गोत्र बाँधा है। श्रेणिक राजा कि जो आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होंगे नर्कमें से निकलकर। तो कहते हैं कि उसको मोक्षमार्गी कहना कि नहीं? '**असंयत सम्यग्दृष्टि के तो चारित्र नहीं है,...**' यह तो दृष्टान्त कहा। श्रेणिका राजा सम्यग्दृष्टि थे, क्षायिक समकित था, चारित्र नहीं था, व्रत नहीं था, तप नहीं था, त्याग नहीं था। '**उसको मोक्षमार्ग हुआ है या नहीं हुआ?**' उसको मोक्षमार्ग हुआ है कि नहीं? यह प्रश्न किया। समझ में आया?

उसका '**समाधान :- मोक्षमार्ग उसके होगा, यह तो नियम हुआ;...**' जिसको आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ, मैं शुद्ध चिदानन्द आनन्द हूँ, मेरे में आनन्द मेरा है, मेरा आनन्द पुण्य-पाप के भाव में, निमित्त में तीन काल में नहीं, मेरा आनन्द मेरी आत्मदशा में वस्तु में है। मेरा आनन्द नहीं पुण्य-पाप के भाव में, नहीं निमित्त में। निमित्त तो पर रहा, परन्तु अपनी रागदशा में भी मेरा आनन्द नहीं। ऐसे आनन्द की अन्तर दृष्टि हुई तो कहते हैं कि उसको मोक्षमार्ग है कि नहीं? कि उसे मोक्षमार्ग है। सम्यग्दर्शन हुआ है तो चारित्र आयेगा, आयेगा और आयेगा। भविष्य में केवलज्ञान में चारित्र आयेगा। अभी तो पहली नर्क में है। यहाँ से पहले तीर्थंकर होंगे, आगामी चौबीसी में, तब चारित्र अंतर में चारित्र अंगीकार करेंगे तब केवलज्ञान होगा। चारित्र बिना केवलज्ञान नहीं। परन्तु चारित्र कौन? बाह्य द्रव्यलिंग और अट्ठाईस मूलगुण वह चारित्र नहीं। अंतर के शुद्ध स्वभाव में वीतरागी वीतरागी--राग की उपेक्षा और स्वभाव की अपेक्षा ऐसी चारित्र की दशा जब होगी तब केवलज्ञान होगा, जरुर केवलज्ञान होगा।

उस अपेक्षा से '**इसलिये उपचार से इसके मोक्षमार्ग हुआ भी कहते हैं;...**'

देखो! सम्यक् आत्मा का भान हुआ। भले चारित्र न हो, व्रत, तप न हो। वह तो अपने छह ढाला में आया नहीं? 'लेश संयम नहीं पण सुर जजे हैं' छह ढाला में। 'चारित्रमोहवश लेश संयम न हो,...' फिर भी जिनको देवलोक स्वर्ग के देव भी पूजते हैं सम्यग्दृष्टि को। कहो, समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि कैसी चीज है? बिलकुल एक राग का अंश जिसको रुचता नहीं। ओहो..! और कोई भी निमित्त में सुख है वह रुचता नहीं, सुख है वह रुचता नहीं अन्दर में। क्रोड़ मान, सम्मान हो, भरतच क्रवर्ती का राज हो, अंश भी पर में सुख है ऐसी दृष्टि उठ गई है। कहाँ मेरा सुख पर में है नहीं। मेरा सुख तो मेरी चीज में है। ऐसी दृष्टि का करना तो कहते हैं कि उसमें चारित्र उसको आयेगा ही। तो उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं। यथार्थ में तो चारित्र जब आयेगा तब होगा। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दर्शन क्या चीज है उसकी क़िमत नहीं।

राग का माहात्म्य करना, निमित्त का माहात्म्य करना, बहुत अधिकाई निमित्त और राग को देना, वह तो मिथ्यादृष्टि की दृष्टि है। सेठी! संयोग चीज है सब उसको अधिकाई देना श्रद्धा में और विकल्प उठता है राग, उसको अधिकाई देना वह, भगवान वीतराग विज्ञानघन की निंदा है। अपना स्वभाव ज्ञानमूर्ति में आनन्द है, मेरा आनन्द दया, दान का विकल्प में नहीं है मेरा आनन्द। ओहोहो..! शुभभाव उठते हैं उसमें मेरा आनन्द नहीं, वह आनन्द का कारण नहीं, उसमें आनन्द नहीं। उसके अवलम्बन से आनन्द प्रगट होता नहीं। मेरा आनन्द मेरी चीज में है। मैं शुद्ध आनन्द से भरा हूँ। राग की अधिकता छोड़कर राग से भिन्न अपना शुद्ध चैतन्य उसकी अधिकता दृष्टि में हो गई, तो उसको अल्प काल में चारित्र आयेगा। उस अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि को उपचार से-व्यवहार से मोक्षमार्गी कहने में आया है। नवनीतभाई! समझ में आया? यह सब समझना होगा। ऐसे एक-दो शब्द पकड़ने से नहीं चलेगा। वहाँ जाकर बैठे, शुभभाव ऐसा है, यह ऐसा है। तब वह कहे, यह कुछ समझते नहीं। कहाँ गये मगनलालजी! शुभभाव है नहीं, शुभभाव का जड़ का है। ऐसे नहीं चलता जड़ का, जड़ का। वह तो सामनेवाला कहे कि, ऐसा सोनगढ़ से ऊल्टा पकड़कर आये हैं? शुभ और अशुभभाव है तो चैतन्य की दशा में, परन्तु है वह रागदशा। इसलिये राग हितकर नहीं है, आत्मा राग से आत्मा उपादेय नहीं होता, आत्मा को उसमें कल्याण नहीं है ऐसी मान्यता करना। समझ में आया? कहाँ समझ में आये?

एक तो बाहर में पैसे, आबरू, कीर्ति, धूल में घूस गया। कुछ धूल मिले पाँच-

पच्चीस लाख की वहाँ। भगवानजीभाई! और यहाँ थोड़ी बाहर की क्रिया करे तो थोडीबहुत राग की मन्दता (करे तो) उसमें घूस गया और ऐसे में दूसरे कहे कि बहुत अच्छा किया। बहुत करते हैं, भैया! बहुत करते हैं, उपवास करते हैं, ऐसा करते हैं, शरीर जीर्ण हो गया है, शरीर जीर्ण हो गया है। शरीर जीर्ण हो गया उसमें क्या आया? उसमें राग की जीर्णता न हुई और वीतराग विज्ञान की पुष्टि नहीं हुई। क्या जीर्ण में पड़ा है? शरीर जीर्ण हो या न हो। यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन भया.. एय..! देवानुप्रिया! बाहर में दिखे कपड़े छोड़कर बैठा हो, एक कपड़ा औढकर बैठा हो तो। दूसरे कहे भी, यह ठीक लगता है।

श्रोता :- ..

पूज्य गुरुदेवश्री :- क्या करनेपर छूटकारा है? नव तत्त्व जैसे हैं वैसे विकल्प से श्रद्धा में लेना। नय, निक्षेप, प्रमाण से वस्तु है ऐसा नक्की करना, यह पात्र होने का पहला मार्ग है, दूसरा मार्ग नहीं है। कहो, क्या सूना १३वीं गाथा में? सेठी! क्षेत्र विशुद्धि। बीज बोते हैं न बीज? बीज बोते हैं तो ज़मीन साफ करते हैं कि नहीं? काँटे निकाल देते हैं। इतना-इतना खोदकर बोरडी का मूल निकाल देते हैं।

ऐसे भगवान आत्मा उसको नय, प्रमाण और निक्षेप से बराबर नक्की करना। और नव तत्त्व के विकल्प के भेद से नक्की करना पहले। अजीव अजीव है, पुण्य पुण्य से है, आस्रव आस्रव से है, संवर संवर से है, निर्जरा निर्जरा से है, बन्ध बन्ध से है, मोक्ष मोक्ष से है ऐसा पहले नक्की करना उसका नाम पात्रता, यदि आगे बढ़े तो पात्रता कहने में आता है। बीज बोने की अंतर दृष्टि करे तो। नवनीतभाई! जमीन साफ करता है, परन्तु बीज न बोये नहीं तो?

श्रोता :- महेनत बेकार गई।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बेकार गई उसकी। घास होगा। खड कहते है न? घासपुस होगा। परन्तु जब बीज बोना है तो क्षेत्रविशुद्धि होती है। कंकर, काँटे पहले निकालना पडेगा। ऐसे पहले नव तत्त्व क्या है? सर्वज्ञ भगवान किसको नव पृथक् पृथक् नव का भिन्न भिन्न कार्य क्या है और किस नय से आत्मा शुद्ध है? किस नय से आत्मा अशुद्ध है? प्रमाण से शुद्धाशुद्ध कैसा है ऐसा उसको नक्की करना उसका नाम यह पात्रता आगे बढ़े तो कहने में आता है। उत्तर भी ठीक आना चाहिये न उसमें। क्या कहा? यह तेरहवीं (गाथा में) क्या सुना?

श्रोता :- कपड़ा बदलना ऐसा आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कपड़ा बदलना ऐसा नहीं आया उसमें।

श्रोता :- क्यों नहीं आया? अजीव आया उसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री :- क्या अजीव आया? अजीव जहाँ है वहीं का वहीं रहे, उसको जानना उसका नाम अजीव का ज्ञान। अजीव को ऐसे करूँ, ऐसे करूँ वह अजीव का ज्ञान नहीं है। कहो, समझ में आया? सेठी! वह तो प्रश्न ऐसा करते हैं, ऐसे उकसाते हैं।

यहाँ कहते हैं कि '**मोक्षमार्ग उसको होगा,...**' श्रेणिक राजा सम्यग्दृष्टि हुए, तो भविष्य में केवलज्ञान पायेगा, चारित्र लेगा। परन्तु मिथ्यादृष्टि बाहर में पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण धारण किया है, नीचे उतर जायेगा। शुभ में धर्म माननेवाला मिथ्यादृष्टि क्रम से निगोद में चला जायेगा। समझ में आया? एक वस्त्र का धागा रखकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है और मुनिपना मानता है तो कहते हैं आचार्य महाराज कि निगोद गच्छई--निगोद में जायेगा। जब मुनिपना आत्मा की सम्यग्दर्शन-ज्ञान वीतरागी दशा हो, तब तो मुनिपना की नग्न दशा हुए बिना रहती नहीं। ऐसी दशा न हो और दूसरी दशा में मुनिपना मान ले तो निगोद गच्छई ऐसा कहा। तो फिर बाह्य क्रिया के शुभराग में धर्म है ऐसा माननेवाला तो निगोद गच्छई (है ही)।

श्रोता :- उसके बाद कुछ नहीं है न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसे कहते हैं कि निगोद के बाद नीचे और कुछ तो नहीं है न? ठीक प्रश्न करते हैं। उसका अर्थ? उसका अर्थ क्या है? कि जो राग है न राग? शुभ हो या अशुभ हो, उसकी रुचि, उसके ज्ञान की दशा को हीन कर देगी। राग की रुचि, राग का विश्वास है कि इससे धर्म होगा, वह उसकी ज्ञान की दशा हीन कर के निगोद में जायेगा। हेतु तो ऐसा है। और राग की रुचि छोड़कर मात्र ज्ञायक की रुचि का ज्ञान किया, वह क्रम से ज्ञान बढ़कर केवल हो जायेगा। उसको निगोददशा होगी, इसको केवल होगा। वस्तु ऐसी है। समझ में आया?

राग की रुचिवाले को तो विकार की रुचि है और विकार की रुचि की पुष्टि होते-होते, निर्विकारी शक्ति तो ऐसी रहेगी, पर्याय में हीन दशा होते.. होते... होते... होते... निगोद--एक शरीर में अनन्त आत्मा है, वहाँ चला जायेगा। और राग और पुण्य की, पाप की वृत्ति होनेपर भी रुचि छोड़कर शुद्धता वीतरागी दृष्टि, वीतराग स्वभाव रुचा तो वीतरागभाव की पुष्टि करके चारित्र लेकर वीतराग की पुष्टि करके केवल वीतरागी विज्ञान केवलज्ञान हो जायेगा। नवनीतभाई! दो और दो चार जैसी बात है। इसमें कुछ

प्रश्न, सन्देह को स्थान नहीं है। परन्तु उसको न बैठे तब तक कोई जबरदस्ती केवलज्ञानी भी आये तो समझा सके नहीं। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव उसके समवसरण में भी अनन्त बार गया सभा में। भगवान की सभा में अनन्त बार गया। भैया! भगवान बिराजते है महाविदेह क्षेत्र में अभी। सीमंधर भगवान। दर्शन किया न? वह सब सीमंधर भगवान है। मानस्तंभ में, उसमें, समवसरण में। वर्तमान महाविदेह क्षेत्र में मनुष्यपने बिराजते हैं। पांचसो धनुष का देह है, एक करोड़ पूर्व का आयुष्य है। केवलज्ञानी तेरहवें गुणस्थान में बिराजते हैं। नमो अरिहंताणं। अरिहंतपद में वर्तमान बिराजते हैं। इस ज़मीन पर हाँ! अरिहंतपद में बिराजते हैं। बहुत काल रहने के बाद में सिद्ध होंगे। भगवान महावीर तो अभी सिद्ध हो गये। भगवान बिराजते थे, अरिहन्त थे, अब सिद्ध हो गये। महाविदेहक्षेत्र में प्रभु बिराजते है। अरिहन्त है। बाद में सिद्ध हो जायेंगे। अरिहन्तपद, सिद्धपद पर्याय की प्राप्ति हुई वह वीतरागी विज्ञानघन का आश्रय लेकर प्राप्ति हुई है। उदास पहले से।

सम्यग्दर्शन जब से हुआ तब से राग.. राग.. नहीं, यह नहीं, यह नहीं। अरे...! मेरी चीज़ में यह नहीं। ऐसी अंतर दृष्टि जब वीतरागी चैतन्य की हुई, अल्प काल में चारित्र लेगा। और समवसरण में ऐसे भगवान के पास अनन्त बार गया परन्तु राग बिना की अपनी चीज रुचि नहीं, जची नहीं। जची नहीं अन्दर से जची नहीं। तो कौन जचावे? कौन दे? भगवान की वाणी तो निमित्त हो, वह समझे तो। न समझे तो भगवान जबरदस्ती समझा दे? पराणे क्या कहते है? जबरदस्ती। जबरदस्ती तीर्थंकर किसीको समझा दे ऐसी ताकत तीर्थंकर में भी नहीं है। समझ में आया?

'**परमार्थ से सम्यक्चारित्र होने पर ही मोक्षमार्ग होता है।**' देखो! सम्यग्दर्शन हुआ, परन्तु जब चारित्र--स्वरूप में रमणता वह चारित्र--होगा तब मोक्षमार्ग होता है। '**जैसे - किसी पुरुष को किसी नगर चलने का निश्चय हुआ;...**' कोई नगर चलने का निश्चय हुआ। देखो दृष्टान्त। '**इसलिये उसको व्यवहार से ऐसा भी कहते हैं कि यह उस नगर को चला है;...**' उस नगर को चला है ऐसा कहे। मुम्बई कि टिकट लेकर बैठे, यहाँ कहे कि भाई हम मुम्बई गये। अभी तो रास्ते में है तो भी मुम्बई गये ऐसा कहने में आता है। '**यह उस नगर को चला है; परमार्थ से मार्ग में गमन करने पर ही चलना होगा।**' देखो! मार्ग में गमन करके तब परमार्थ से गमन करने पर ही चलना होगा। यह दृष्टान्त।

'**उसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टिको...**' देखो! यह महा सिद्धान्त। '**उसी प्रकार**

असंयतसम्यग्दृष्टि...' चौथे गुणस्थानवाला। अभी श्रावक, मुनि होने से पहले। श्रावक मुनि यह संप्रदाय बाड़े की बात नहीं है। बाड़े में तो सब कहते हैं कि हम श्रावक और मुनि है। ऐसे नहीं। थैली में किराता भरा हो। थैली कहते हैं न? क्या कहते हैं? बोरी। और ऊपर लिखे शक्कर। तो क्या किराता मीठा हो जाता है? ऐसे हम श्रावक है, मुनि है, नाम धराओ, परन्तु अंतर ज़हर की दृष्टि निकाले बिना, राग और पुण्य की रुचि निकाले बिना सम्यग्दर्शन का अमृत प्रगट होगा नहीं। समझ में आया? लो हम श्रावक है। यह बात नहीं, ऐसा कहते हैं देखो।

'**असंयतसम्यग्दृष्टिको वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग का श्रद्धान हुआ;...**' क्या कहा? वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग। मोक्षमार्ग वीतरागभाव है ऐसा श्रद्धान हुआ। पहले कोई नगर में चलने का निश्चय हुआ। व्यवहार से कहे। वास्तव में तो नगर में चलेगा तब परमार्थ से गमन करेगा तब चलना होता है। ऐसे भगवान आत्मा, उसकी सम्यग्दृष्टि को '**वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग का श्रद्धान...**' देखो महा सिद्धान्त! केवल निश्चयमोक्षमार्ग कहा है भाई यहाँ तो। वीतरागभाव वही मोक्षमार्ग और उसकी श्रद्धा ऐसा। व्यवहार राग है वह मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा कहा। वह तो पहले सातवें में कह गये कि राग को मोक्षमार्ग कहा वह तो व्यवहार आरोप से कहा है।

सम्यग्दृष्टि जीव को, चाहे तो गृहस्थाश्रम में हो, चाहे सो स्वर्ग में हो, चाहे सो नर्क में भी हो सम्यग्दृष्टि और चाहे तिर्यंच में भी हो। तिर्यंच पशु उसमें भी समकित होता है। स्वयंभूरमण समुद्र (में) एक हजार योजन का मच्छ है उसको भी सम्यग्दर्शन होता है। परन्तु वह सम्यग्दर्शन क्या? क्या श्रद्धा हुई? वतीरागभावरूप मोक्षमार्ग। देखो यह महा सिद्धान्त! ओहोहो..! केसरीचन्दजी! क्या लिखा है वह? वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग। पंच महाव्रत का राग वह मोक्षमार्ग नहीं। देखो! पढ़ो।

'**असंयतसम्यग्दृष्टिको...**' धर्मीजीव को, प्रथम भूमिका के धर्मी को, पहली भूमिका का धर्मी असंयत सम्यग्दृष्टि। '**वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग...**' वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग। '**उसका श्रद्धान हुआ;...**' देखो! भगवानजीभाई! यह वीतरागभाव की नींव रखी। मैं राग और पुण्य-पाप के भावरहित वीतराग अकषायभाव है वही मोक्षमार्ग एक है। ऐसी श्रद्धा हुई। कहो, जगुभाई! यह वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग। अभी कहते हैं कि मोक्षमार्ग दो है। एक व्यवहार और एक निश्चय, एक राग और एक अराग। टोडरमलजी तो ना कहते हैं कि वीतरागभावरूप एक मोक्षमार्ग है। एय..! देवानुप्रिया! सुना है वहाँ बड़ा-बड़ा मार्ग का शब्द आया था, व्यवहार मोक्षमार्ग है, व्यवहार भी मोक्षमार्ग है।

उपचार से क्या व्यर्थ वस्तु है?

श्रोता :- सांगडे खडा रखा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- सांगडे खडा रखा। गिर जायेगा। सांगडे खडा नहीं रहेगा।

वह हमारे गढ़डा में हुआ था (संवत) १९८१ में। बरसाद की बहुत कमी थी, बरसाद की कमी थी। ८१ की साल में गढ़डा में चौमासा था। उसने क्या कहा समझ में आया? पशु होते है न पशु? जब दुष्काल होता है तब घास नहीं मिलता। तो अन्दर बैठ जाता है, अन्दर कमजोरी होती है तो बैठ जाता है। बाद में घाव न पड़े घाव इसलिये महाजन लोग आकर लकड़ी डालकर उसको ऊँचा करे। परन्तु ऊँचा करते थे आपके चाचा और सब, मैं वहाँ देखता था। ८१ की साल की बात है। १९-१९, ३८ साल हुए। बरसात की कमी थी। बाद में आँगन में ढोर-पशु को रखते थे। परन्तु ताकत नहीं थी अन्दर। घास मिले नहीं इसलीये नीचे बैठ जाये। बाद में टकराये, घाव पड़े। चांदा समझते है? फोडा-फोडा। पशु को फोडा पड जाये। बैठे-बैठे गल जाये। बाद में बनिये आये तो लकड़ी डालकर, सांगडा उसको कहा सांगडा, सांगडा अर्थात् लकड़ी, लकड़ी ऐसे डालकर दो तरफ से ऊँचा करे। बाद में वह जाये, पाँच मिनिट खडा रहे, पैर में तो ताकत है नहीं, अनाज है नहीं, घास है नहीं। जोर से नीचे गिरते है। ऐसी मार लगती है। एय...! देवानुप्रिया! सांगडा कब तक काम करे? सांगडा समझे? लकड़ी डाले न? पूँछ को ऊँचा करके ऐसे ऊँचा करे। परन्तु अन्दर पैर में तो कस नहीं। घास मिले नहीं, पानी मिले नहीं। शरीर गल जाता है। तो उसको उठने की शक्ति नहीं है। बनिये आकर लकड़ी डालकर उससे ऊँचा करे। पाँच मिनिट खड़ा रहे फिर ऐसा गिरे, अन्दर तो ताकत है नहीं। ऐसे राग की लकड़ी डालकर उसको ऊँचा करना, वह मिथ्यादृष्टि कब तक ऊँचा रहेगा? समझ में आया? सांगडा का दृष्टान्त यहाँ दिया हो न, वह भी सीख गये। वहाँ का यहाँ कहे, यहाँ का वहाँ कहे, दोनों तरफ। कहो, समझ में आया? देखो! महासिद्धान्त कहा है। ओहोहो..!

'**असंयतसम्यग्दृष्टि...**' श्रद्धावंत सम्यग्दृष्टि आत्मा का निर्विकल्प प्रतीतरूप सम्यग्दृष्टि, वह ऐसा मानता है कि वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है। उसमें राग का कण आता है वह मोक्षमार्ग नहीं। यहाँ तो ठिकाना है नहीं और सांगडा डालना है। कहाँ डालना है? ऊल्टा मरेगा, ऐसा गिरेगा कि सत्य को मानेगा नहीं।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- गिरेगा क्या, जायेगा अशुभ में। शुभ की रुचिवाले सम्यक् के भान बिना शुभ को पलटकर अशुभमें जायेगा। शुभ को पलटकर। और अशुभ में जाकर नर्क, निगोद का आयुष्य बाँधेगा। क्या करे? कौन किसको समझावे? कौन समझे किससे? वह अपने से समझे तो चले, वरना कोई समझा सकता नहीं। तीर्थंकर भी अनन्त हो गये। अनन्त हो गये। समवसरण में भी अनन्त बार गया। साक्षात् भगवान के समवसरण में कल्पवृक्ष के फूल से भगवान की पूजा की समवसरण में। क्या हुआ?

आया था न भाई भक्ति में? अरे..! प्रभु! नहीं आया था भगवान का? कि इन्द्र ने आपका अभिषेक किया तो क्या हुआ? उसमें क्या बडाई है प्रभु? और कमल को हाथी ने हिलाया, कलम को हाथी ने हिलाया तो क्या हुआ? नवनीतभाई! आया था। कमल होता है न कमल? हाथी ने आकर हिलाया तो उसमें क्या हुआ? भगवान आपका अभिषेक इन्द्र ने किया उसमें क्या हुआ? और आप की दीक्षा में इन्द्र आया तो क्या हुआ? आप की वीतरागी दृष्टि और चारित्र उसमें सब माल है। कमल को हाथी ने हिलाया उसमें हुआ क्या? हाथी पूंछ हिलाये तो हिल जाये वहाँ। हिलाना पडे नहीं। पूंछ ऐसे पडे, पवन लगे तो कमल ऐसे हिले। उसमें हुआ क्या? ऐसे पूर्व के पुण्य प्रकृति के कारण कोई अभिषेक हो, दुनिया में प्रसिद्धि हो, क्या हुआ? नवनीतभाई! भक्ति में आया था। परसों थे? नहीं थे। कमलने हिलाया हाथी को तो क्या हुआ? इन्द्र ने भगवान आप का अभिषेक किया तो क्या हुआ? वह तो पुण्यबन्ध का कारण है शुभ। और उससे आप की महिमा नहीं है। अभिषेक से तुम्हारी महिमा नहीं है। तुम्हारी महिमा तो वीतरागी केवलज्ञान घन से आप की महिमा है। समझ में आया? ऐसे पुण्य से अपनी महिमा नहीं, भाग्योदय से अपनी महिमा नहीं।

वह तो कहा न? बनारसीदासने तो कहा है। विट समान--विष्टा समान भाग्योदय मानते हैं। समय, सम्यग्दृष्टि अपना समय, वखत समझते हो न? बहुत अनुकूलता हो, सेठाई, अनुकूलता में क्या सब तरह की अनुकूलता नहीं होती। पैर में दर्द होता है, लड़का मर जाये उसमें कहाँ अनुकूलता है? परन्तु किसी को सब अनुकूलता हो, लो न सेठ! तो क्या हुआ उसमें? अनुकूलता सम्यग्दृष्टि जानते हैं कि वह भाग्य का उदय विट समान है, विष्टा समान है। बनारसीदास कहते हैं। बनारसीदास है न? समयसार नाटक में लिखा है। सम्यग्दृष्टि विष्टा समान अपना भाग्योदय मानता है। ऐसी प्रशंसा करे दुनिया। अरे..! क्या है? वह तो पूर्व का पुण्य का फल है। वह समयसार नाटक है न? समयसार है।

श्रोता :- काग विट।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह दूसरी बात है। वीट को वखत माने वह बात नहीं। वीट सो वखत माने। वखत नाम भाग्योदय का काल है। ओहोहो..! वह समयसार नाटक बनारसीदास का बनाया हुआ है उसमें है। १९ वाँ है, बन्ध द्वार में।

कीचसो कनक जाकै नीचसौ नरेस पद,
मीचसी मिताई गुरुवाई जाकै गारसी।
जहरसी जोग-जाति कहरसी करामाति,
हहरसी हौंस पुद्गल-छबि छारसी।।
जालसौ जग-विलास, भावसौ भुवन वास,
कालसौ कुटुंब काज लोक-लाज लारसी।
सीठसौ सुजसु जानै बीठसौ वखत माने,
ऐसी जाकी रीति ताहि वंदत बनारसी।।१०।।

कंचन को किचड़ के समान जाने सम्यग्दृष्टि। राजपद को नितांत तुच्छ जाने। तुच्छ तुच्छ राज मिला धूल में, राज हमारा कहाँ है? हमारा राज तो हमारे पास है। लोगों की मित्रता को मृत्यु समान माने। क्या संग करना? राग होगा, मृत्यु समान। प्रशंसा को गाली के समान (मानता है)। धरमचन्दजी! प्रशंसा को सम्यग्दृष्टि गाली (समान जानता है)। क्या प्रशंसा? हमारी प्रशंसा तो हमारे अपने में है। तुम प्रशंसा करते हो वह तो पूर्व के पुण्य के कारण है। गाली समान जानते हैं। कहो समझे? योग की क्रियाओं को ज़हर के समान। योग की क्रिया। शुभ-अशुभ भाव की क्रिया ज़हर समान। मंत्रादि करामत को दुःख के समान। लौकिक उन्नति को अनर्थ के समान। लौकिक उन्नति हुई, पुत्र हुआ, पैसा हुआ, आबरु हुई, दुकान हुई, बहुत अनर्थ (कारक मानता है)। शरीर की कान्ति को राख के समान। शरीर की कान्ति वह तो धूल की कान्ति है। आत्मा की है? यह तो मिट्टी है, धूल है, राख के समान।

संसार की माया का झंझाल के समान, महेल के निवास को बाण की नोंक के समान। है? और कुटुम्ब के कार्य को काल के समान। लोकलाज को लार के समान। लार-लार। और सुयश को नोक के मैल के समान, भाग्योदय को विष्टा के समान। समयसार नाटक तो है आपके घर में। भाग्योदय को विष्टा समान। अरे..! हमारा पवित्र भाव तो हमारे पास है। यह भाग्य तो विष्टा समान है। बाद में तो ऐसा भी लिया है 'सुवरको लायै जो पुरुष पकवान है' सुवर को पुरुष की विष्टा वह पकवान

लगती है। 'मूरख के भाये शुभबन्ध निर्वान है।' अज्ञानी को शुभबन्ध है तो निर्वाण मान लेता है। ज्ञानी कहता है, अरे..! शुभबन्ध तो राग है, बन्ध का कारण है। हमारा स्वभाव मोक्ष का कारण है। ऐसी सम्यग्दृष्टि की रुचि होती है।

(श्रोता :- प्रमाणवचन गुरुदेव!)

शनिवार, दि.१५-१२-१९६२
अधिकार - ९, प्रवचन नं.-३०

यह मोक्षमार्गप्रकाशक, उसका नौंवा अध्ययन चलता है। यहाँ प्रश्न (है), फिर से प्रश्न लेते हैं।

श्रोता :- उत्तर चला है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उत्तर चला है? कहाँ से?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो है। यह तो उसमें है न। नये में नहीं डाला है न? नये में क्यों नहीं डाला? इसमें तो है। दिमाग में था कि यह क्यों नहीं आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्, ऐसा आचार्य महाराज का कथन है। तो तत्त्वार्थश्रद्धान विपरीत अभिनिवेष रहित होनेपर सम्यग्दर्शन होता है। तो यहाँ शिष्य का प्रश्न है कि आपने तो तत्त्वार्थ सात कहें।

'**तत्त्वार्थ तो अनन्त है।**' प्रश्न। '**वे सामान्य अपेक्षा से जीव-अजीव में सर्व गर्भित हुए; इसलिये दो ही कहना था या...**' विशेष कहना हो तो '**अनन्त कहने थे।**' ऐसे। संक्षिप्त में कहना हो तो जीव-अजीव दोनों में सब समा जाता है। सब समा जाता है। विशेष कहना हो तो अनन्त पदार्थ और अनन्तपने भगवान ने देखे, ऐसे अनन्त कहना था। '**आस्रवादिक तो जीव-अजीवही के विशेष हैं,...**'

आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष वह तो जीव की पर्याय और अजीव की पर्याय है। वह कहीं जीव-अजीव से भिन्न नहीं है। तो '**इनको अलग कहने का प्रयोजन क्या?**' यह प्रश्न है।

'**समाधान :- यदि यहाँ पदार्थ श्रद्धान कराने का प्रयोजन होता...**' पदार्थ श्रद्धान कराने का प्रयोजन नहीं कि पदार्थ है इतना ही नहीं है। '**तब तो सामान्यपने से या विशेष से जैसे सर्व पदार्थोंका जानना होता हो, वैसे ही कथन करते; वह तो यहाँ प्रयोजन है नहीं;...**' अब यहाँ मुख्य सात क्यों कहे? सामान्य दो नहीं कहे, विशेष अनन्त नहीं कहे। सामान्य में जीव-अजीव दो नहीं कहे, विशेष में अनन्त नहीं कहे और सात ही कहे उसका क्या कारण है?

'**यहाँ तो मोक्ष का प्रयोजन है।**' आत्मा की आनन्द, पूर्ण आनन्द दशा प्रगट हो वह प्रयोजन है। देखा! प्रयोजन एक है। आत्मा की परम पवित्र शुद्ध दशा, 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता' (यह प्रयोजन है)। अपना शुद्ध स्वभाव जो वस्तु में है ऐसी ही जिसकी दशा--पर्याय--हालत--अनन्त-अनन्त पूर्ण शुद्ध प्रगट हो उसका नाम मोक्ष। वह मोक्ष का प्रयोजन यहाँ है, तत्त्वार्थ श्रद्धान कराने में। केवल तत्त्वार्थ श्रद्धा है, पदार्थ है इतना ही प्रयोजन नहीं है। एक बात।

'**सो जिन सामान्य या विशेष भावों का श्रद्धान करने से...**' मोक्ष के प्रयोजन में सामान्य, संक्षिप्त में सामान्य द्रव्य के हिसाब से, और विशेष अवस्था। '**सामान्य या विशेष भावों का श्रद्धान करने से मोक्ष हो और जिनका श्रद्धान किये बिना मोक्ष न हो; उन्हीं का निरूपण किया है।**' कहो, बराबर है? '**सो जीव-अजीव यह दो तो बहुत द्रव्यों की एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप तत्त्व कहे।**' आत्मा और शरीरादि जड़, वह दो तत्त्व बहुत द्रव्यों की एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप संक्षेप में दो कहे।

'**यह दोनों जाति जानने से जीवको आप-पर का श्रद्धान हो...**' जीव और अजीव जानने से आत्मा को स्व का और पर का श्रद्धान होता है। '**तब परसे भिन्न अपने को जाने,...**' भगवान आत्मा स्व और शरीर, कर्म, वाणी, मन, कुटुम्ब, कबीला पर। वह सब, स्वयं और अपने से पर उसको भिन्न जानकर '**अपने हित के अर्थ...**' स्वयं पर से भिन्न है इसलिये मेरे हित के लिये। अपना हित उसके लिये मोक्ष का उपाय करे। मोक्ष का उपाय करे कहो या मोक्ष का मार्ग करे कहो। देखो! मोक्ष अर्थात् छूटने का उपाय करे। स्व जीव और पर अजीव ऐसे दो को भिन्न-भिन्न जाने तो स्व

आत्मा के हित के लिये रागादि पुण्य-पाप के विकारी भावों से छूटने का उपाय करे। कहो, समझ में आया? मोक्ष के लिये मोक्ष का उपाय करे।

'**और अपने से भिन्न पर को जाने,...**' शरीर, कर्म आदि वह तो परवस्तु स्त्री, कुटुम्ब आदि। '**तब परद्रव्य से उदासीन होकर...**' परद्रव्य में तो सब कुछ आ गया हाँ! शरीर, देव-गुरु-शास्त्र सब परद्रव्य हैं। वह आत्मा से परवस्तु भिन्न है। जब पर को स्वयं से भिन्न जाने, '**तब परद्रव्य से उदासीन होकर...**' परद्रव्य का मुझे कुछ काम नहीं है, परद्रव्य से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है, इस प्रकार पर से उदासीन होकर '**रागादिक त्यागकर...**' देखो! परद्रव्य के लक्ष्य से, परद्रव्य के सम्बन्ध में अशुभ और शुभराग जो परद्रव्य के सम्बन्ध में होते थे, उन रागादिक का त्यागकर। अशुभ और शुभ रागादि छोड़कर। क्योंकि शुभ-अशुभ राग का निमित्त परद्रव्य है। परद्रव्य से जब स्वयं को भिन्न जाना तो परद्रव्य के सम्बन्ध से होनेवाले शुभाशुभ राग, उसको भिन्न जाना तो उसकी ओर राग-द्वेष करना रहा नहीं।

श्रोता :- परद्रव्य को छोड़ने का कहाँ-से आया?

पूज्य गुरुदेवश्री :- परद्रव्य तो भिन्न ही हैं, छोडना कहाँ है? वह तो भिन्न जानना इतना। उसको छोडना नहीं है। भिन्न वस्तु छोडनी नहीं है। वह तो भिन्न ही पड़ी है। भिन्न द्रव्य जाने कि यह शरीरादि पर है, देव-गुरु-शास्त्र पर है, स्त्री-कुटुम्ब पर है, तो पर से उदासीन होकर, पर से लक्ष्य छोड़कर, पर से उपेक्षा करके '**रागादिक त्यागकर...**' देखो भाषा! शुभ और अशुभ रागादिक छोड़कर। परद्रव्य को पर जाने, स्वद्रव्य को स्व जाने तो स्वद्रव्य के आत्मा के हित के लिए राग-द्वेषादि छूटने का उपाय मोक्ष का करे ऐसा यहाँ कहा। और परद्रव्य को पर भिन्न जाने तब परद्रव्य के सम्बन्ध में शुभ-अशुभ राग जो हो रहे थे, वह शुभाशुभ राग छोड़कर। मात्र अशुभ राग छोड़कर ऐसा नहीं। समझ में आया? एय..! देवानुप्रिया! क्या कहते हैं देखो। '**रागादिक त्यागकर...**' यानी उसमें अशुभ का त्याग करके और शुभ को रखकर ऐसा होगा?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह कहाँ प्रश्न है? छूटने की दृष्टि में, सम्यग्दर्शन में तो शुभाशुभ राग दोनों छोड़ने लायक है ऐसी पहली प्रतीत हुए बिना वह छूटे नहीं कभी। आत्मा ज्ञानमूर्ति है। शुभ और अशुभ राग दोनों हेय है, छोड़ने लायक है, नाश करने लायक है ऐसी दृष्टि न हो तब तक तो उसको आस्रव की भी श्रद्धा नहीं है, उसको आत्मा की भी श्रद्धा, मोक्ष की श्रद्धा भी नहीं है। कहो, समझ में आया?

देखो! '**अपने हित के अर्थ...**' स्वयं अपना स्वरूप जानकर '**अपने हित के अर्थ मोक्ष का उपाय करे;...**' उपाय कहो या मार्ग करे। '**और अपने से भिन्न परको जाने, तब परद्रव्य से उदासीन होकर...**' ऐसा कहा है। परद्रव्य से कुछ भी मुझे लाभ हो या नुकसान हो, यह बात, परद्रव्य भिन्न जाना उसमें रहती नहीं। समझ में आया? आत्मा से परवस्तु अनन्त पदार्थ सर्व पर है। तो पर से मुझे लाभ होगा या पर से नुकसान होगा, वह बुद्धि नहीं रहती। इसलिये पर के कारण से, लक्ष्य से, सम्बन्ध से शुभ-अशुभ राग होते थे वह, परद्रव्य से उदासीन होकर भिन्न जाने तब कहने में आये कि उससे उदासीन उपेक्षा करके, पुण्य-पाप भाव आदि छोड़कर '**मोक्षमार्ग में प्रवर्ते।**' वीतरागभाव में प्रवर्ते। वह तो उसमें ऐसा कहा था कि मोक्ष का उपाय करे। यहाँ (कहा), मोक्षमार्ग में पवर्ते। समझ में आया? देखो! सात तत्त्व की बात बहुत यथार्थ रीति से सिद्ध की है।

श्रोता :- परद्रव्य को रखकर उदासीन रहे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री :- रखे कौन? परद्रव्य रखना है उसको? वह तो पर में है। किसको रखना है? कहाँ रखना है? पर तो उसके कारण से रहे हैं, किसको रखना है? उसके कारण से जाते हैं। किसको छोड़ने है? मिथ्याबुद्धि है। परद्रव्य को रखुँ। रखना कहते है न हिन्दी में? और परद्रव्य को छोडुँ, मूढ है, मिथ्यादृष्टि है। अजीव और पर को पर जानकर पर से उदासीन होकर, पर तरफ के शुभाशुभ राग को छोड़कर मोक्षमार्ग में प्रवर्तना वह भिन्न जानने का प्रयोजन है। समझ में नहीं आया? परद्रव्य को आत्मा के सिवा...

श्रोता :- कपड़े कब बदलना, वह तो बात करो।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कपड़ी की बात कहाँ है यहाँ? परवस्तु को परवस्तु आत्मा से भिन्न है ऐसा जाना, उसके प्रति उदासीन होकर, उसका काम उसका कार्य मेरा नहीं है, उसकी कोई भी क्रिया परद्रव्य की मेरी नहीं है। क्योंकि परद्रव्य को परद्रव्य भिन्न जाना, तब परद्रव्य का द्रव्य अर्थात् शक्ति का पिण्ड, उसके गुण और उसकी दशा, वह सब मेरे से भिन्न है। बाद में उसकी पर्याय उतरने की, चढने की, गिरने की भिन्न है, फिर उसके लिये मुझे कुछ करना वह भिन्न जाना उसमें रहता नहीं। अरे..! उसको तत्त्व की बात की खबर नहीं है, क्या करे? कहाँ जाना?

भगवान आत्मा अपना स्वरूप ज्ञान-दर्शन-आनन्द से भरा हुआ, पर से भिन्न है, स्व से अभिन्न है। स्वभाव से आत्मा अभिन्न है, पर से भिन्न है। पर से भिन्न अपने

को जाने तो अपने में, स्वयं में वीतरागपने का मोक्षमार्ग––श्रद्धा–ज्ञान–चारित्र तीनों वीतरागभाव है, ऐसे मोक्षमार्ग में स्वयं प्रवर्ते स्वभाव सन्मुख होकर। और पर को भिन्न जाने तो परद्रव्य प्रति उदासीन होकर उसके प्रति के सम्बन्ध से जो राग–द्वेष शुभाशुभ होते थे उसको छोड़कर मोक्षमार्ग में प्रवर्ते।

अब ऐसा समझ में न आये तो कोई कुछ समझा दे ऐसा है नहीं। तीर्थंकर की ताकत नहीं है कि पर को समझाये। अनन्त तीर्थंकर हुए, समवसरण में अनन्त बार गया, क्या करे भगवान? तेरी समझन तुझसे न हो (तो अन्य कौन करा दे?))। उसको ख्याल में न आये कि अरे..! मैं कोन हूँ? मैं कौन हूँ? और कौन चीज यह है? वह चीज तो पर है। शरीर पर है, बाद में तो परवस्तु स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव–गुरु–शास्त्र, प्रतिमा और पहाड़, सब पर है। आहाहा..! पर को पर जानकर, समझे? देखो! '**तब परद्रव्य से उदासीन होकर...**' फिर पर का करना, छोड़ना कहाँ रहता है? क्या कहा? पर को पर जाना तो पर का कुछ करना, छोड़ना, उतारना, रखना वह कुछ रहता नहीं। कहो, क्या है?

श्रोता :– ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– सुख का रास्ता तो यह है। सख अर्थात् सुख। आत्मा ज्ञानमूर्ति उसका स्वरूप पर से भिन्न है। इसलिये मेरे ज्ञान में, आनन्द में, शुद्धता में एकाकार होकर और शुद्ध सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रगट करना वह सुख का उपाय है। राग और पुण्य, दया, दान के विकल्प से भी मोक्षमार्ग होता नहीं। और परद्रव्य का सम्बन्ध रखकर, परद्रव्य मेरे में नहीं है ऐसा मानने पर भी ऐसा कहे कि परद्रव्य की क्रिया मेरे से हो, उतरे, छोड़े, लूँ, रखु तो उसने परद्रव्य को स्वयं से भिन्न जाना नहीं। क्या हो? अरे..! उसने समझी हुई रीति, उसकी समझन से छूटे ऐसी है, दूसरी कोई इसमें रीति है नहीं। समझ में आया?

'**इसलिये इन दो जातियों का श्रद्धान होने पर ही मोक्ष होता है...**' देखो! सात तत्त्वमें से दो स्थापित किये––जीव और अजीव। '**और दो जातियाँ जाने बिना...**' नकार से बात करते हैं, पहले हकारात्मक बात कही। परन्तु '**दो जातियाँ जाने बिना आपापर का श्रद्धान न हो तब...**' देखो! अब नकार से बात करते हैं। पर्यायबुद्धि से। वह तो पर को, पर से स्वयं को भिन्न जानने से अपने ज्ञान, आनन्द स्वभाव की श्रद्धा, उसकी ज्ञान और रमणता में प्रवर्ते। परन्तु स्व और पर दो को एक जाने और भिन्न न जाने तो स्वपर का श्रद्धान नहीं होने से पर्यायबुद्धि (रहती है), वह

तो शरीरबुद्धि रही। शरीर... शरीर... शरीर... शरीर वह मैं, शरीर से सम्बन्धित सो मैं।

वह '**सांसारिक प्रयोजन ही का उपाय करता है।**' वह मोक्ष का उपया करता है। पर से स्वयं को भिन्न जानकर, मोक्ष के मार्ग में प्रवर्तता है। स्व और पर को भिन्न नहीं जाना इसलिये पर में स्वयं प्रवर्ता। सांसारिक प्रयोजन का उपाय (करता है), शरीर कैसे ठीक रहे? शरीर ऐसा कैसे रहे? शरीर से कैसे काम ले। क्योंकि स्वयं ने पर से भिन्न तो जाना नहीं। इसलिये शरीर से ऐसे काम करुँ, ऐसे खिलाउँ, ऐसे पीलाऊँ, उसके साथ ऐसे बोलुँ, यह सब काम हो, शरीर अच्छा हो तो यह काम हो, वह तो पर्यायबुद्धि, शरीरबुद्धि, मिथ्याबुद्धि हुई। '**सांसारिक प्रयोजन ही का उपाय करता है।**' मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र का।

और '**परद्रव्य में रागद्वेषरूप होकर प्रवर्ते,...**' देखो! परद्रव्य में शरीर में ऐसा होता है, इससे यह होता है, इसका यह होता है। '**परद्रव्य में रागद्वेषरूप होकर प्रवर्ते, तब मोक्षमार्ग में कैसे प्रवर्ते?**' वहाँ परद्रव्य का लक्ष्य है, परद्रव्य वह मैं, शरीर मैं, उसमें तो राग-द्वेष हुए बिना रहे नहीं। तो राग-द्वेष में प्रवर्ते इससे तो आत्मा का मोक्षमार्ग का स्वरूप कैसे साधे? '**इसलिये इन दो जातियों का श्रद्धान न होने पर मोक्ष नहीं होता।**' दोनों जातियों का श्रद्धान होने पर मोक्ष होता है। दोनों जातियों का श्रद्धान न होने पर मोक्ष नहीं होता। अस्ति-नास्ति से बात कही, अनेकान्त से बात कही। बहुत अच्छी बात है। टोडरमलजी ने तत्त्वार्थों को बहुत ही संक्षेप में अच्छी तरह शास्त्र में जो कहना है, उस बात को सादी भाषा में, चलती भाषा में रखा है।

'**इस प्रकार यह दो सामान्य तत्त्व तो अवश्य श्रद्धान करने योग्य कहे हैं।**' देखो! दो की बात कही सातमें से। मैं आत्मा सो ज्ञान-दर्शन स्वभाववाला। उसके स्वभाव में एकाकार होकर मोक्षमार्ग का प्रवर्तन हो। इसलिये जीव की अपनी जाति जानना। यह अजीव अथवा दूसरे जीव मेरे से भिन्न परद्रव्य हैं। उससे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। क्योंकि उसके द्रव्य-गुण-पर्याय, पर्याय अर्थात् हालत-दशाएँ उससे हो रही है। में उसको करुँ (ऐसा है नहीं), क्योंकि भिन्न है। उससे मेरे में कुछ करुँ (ऐसा भी नहीं है), क्योंकि भिन्न है। वह तो रहता नहीं। परद्रव्य से मुझ में कुछ होता है और मेरे से पर में कुछ हो, वह बात जीव और अजीव दो भिन्न जाति के जानने से वह बात रहती नहीं। समझ में आया?

अब आये पाँच--आस्रव आदि विशेष अवस्था। बहुत अच्छी बात है देखो। '**तथा**

आस्रवादि पाँच कहे,...' सात है न सात? 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। सात। तो दो की बात तो कही। समझ में आता है न? थोड़ा-थोड़ा हिन्दी समझ लेना। कहते हैं कि आत्मा और पर--दो भिन्न जाने, उसको आत्मा का अन्तर्मुख होकर हित करने का प्रयोजन ही सिद्ध हुआ। पर को पर जाना तो पर से कुछ काम लेना, या पर का कुछ काम करना, वह बात श्रद्धान में दो जाति भिन्न जानी उसमें वह रहता नहीं। कहो, समझ में आया? कितनी सादी भाषा में मोक्षमार्गप्रकाशक बहुत सादी भाषा में, चलती सरल भाषा में उसको रखकर कहा है। समझ में आया? जैसे माँ रोटी बनाकर देती है कि नहीं? गर्भला अर्थात् बाजरे की रोटी का, बाजरे की रोटी का गर्भला बनाकर बारीक-बारीक करके देते हैं न? क्या कहते हैं? आप की हिन्दी में क्या कहते हैं? समझते नहीं। बीच का गर्भ रोटी का। ऊपर का नहीं, नीचे का नहीं, बीच का गर्भ। उस में शक्कर और घी डालकर दे, वैसे यह दिया है। गर्भला करके ऐसा निकाला है।

देख भाई! प्रभु! तु तो भिन्न है न भाई! तेरा और पर का क्या सम्बन्ध है? तीन काल तीन लोक में परद्रव्य और तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। तु तो आत्मा है न? और आत्मा तो ज्ञान, दर्शन और आनन्द स्वभाववाली चीज है। उस स्वभाव का अंतर साधन, पुण्य-पाप के राग और पर का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव शुद्ध चिदानन्द का साधन करना, वह पर से जीव भिन्न करने का प्रयोजन है। और अपने से जड़ और पर आत्माओं को भिन्न जाना उसका फल पर प्रति का कुछ भी कार्य मैं करुँ नहीं और परपदार्थ से मुझे कुछ कार्य लेना नहीं है, पर से मुझे कोई काम नहीं है। क्योंकि वह भिन्न है। भिन्न भिन्न का काम करे, मैं मेरा काम करुँ। आहाहा..! वोरा! बराबर है यह? भाई-भाई भिन्न होंगे?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहते हैं न भिन्न जाना नहीं है उसने। अरे..! भिन्न जाने तो भिन्नकी चिंता कैसी? परवस्तु को भिन्न जाने तो उसकी चिंता क्या? क्योंकि वह परवस्तु भिन्न है। उसकी दशाओं के कार्य उनसे हो रहे हैं, इसलिये मेरे से भिन्न है उसकी चिन्ता का उसको प्रयोजन रहता नहीं। आहाहा..! समझ में आया? और मैं जब पर से भिन्न हूँ तो पर से कुछ काम लेने का मुझे रहता नहीं। मेरा काम मुझसे है। मैं तो ज्ञान, दर्शन और आनन्दस्वरूप हूँ। ऐसा मेरा स्वभाव है। उस स्वभाव का पर से भिन्नपना जाना तो स्वभाव में एकाग्रता का साधन, जिसको यहाँ मोक्ष का उपाय

कहा, वह स्वयं उपाय करे। ऐसा जाने तो, इस प्रकार यथार्थ हाँ! शब्दों से नहीं। अन्दर भाव में ऐसा भासन हो तो स्व का उपाय मोक्ष का करे और पर प्रति के राग–द्वेष को छोड़े। यह दो जात को जानने का फल है। समझ में आया?

अब रहे पाँच। वह पर्याय पाँच है। वह दो द्रव्य थे, सामान्य वस्तु दो। जीव और अजीव दो। अब पाँच उसकी दशा है। आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष आदि पाँच तत्त्व कहें। **'वे जीव–पुद्गल की पर्याय हैं;...'** जीव और जड़ की दशा है, हालत–हालत। पाँच पर्याय है, द्रव्य नहीं है, वह गुण नहीं है। कौन? आस्रव अर्थात् पुण्य–पाप के भाव वह द्रव्य नहीं है, गुण नहीं है, पर्याय है––अवस्था है। ऐसे संवर वह गुण नहीं है, द्रव्य नहीं है, वर्तमान शुद्धि की एक दशा है, शुद्धि की एक अवस्था है। ऐसे निर्जरा वह द्रव्य नहीं है, गुण नहीं है परन्तु शुद्धि की वृद्धि, आत्मा की वीतराग पर्याय की वृद्धि वह आत्मा की पर्याय है। बन्ध, आत्मा स्वभाव शुद्ध है वह राग में अटके वह बन्ध पर्याय है, वह द्रव्य–गुण नहीं। और मोक्ष शुद्धता पूर्ण दशा प्रगट हुई वह पर्याय है, मोक्ष भी कोई द्रव्य और गुण नहीं है। समझ में आया भैया? गुण नहीं, गुण तो त्रिकाल रहते हैं और पर्याय तो नई प्रगट होती है। तो पाँच पर्याय है। देखो! ओहोहो..! मोक्ष भी पर्याय है, पर्याय नाम अवस्था है, अवस्था नाम हालत–दशा है। कहो, देवानुप्रिया! आहाहा..!

पाँच पर्याय, जीव–पुद्गल की पर्याय। मैंने अभी जीव की बात कही। ऐसे जड़ में। जड़ रजकण जो आये आस्रव, वह जड़ की पर्याय है, अटके वह भी जड़ की पर्याय है, बन्धे वह भी जड़ की पर्याय है, छूटे वह भी जड़ की पर्याय है और पूर्ण छूटे वह भी द्रव्य–मोक्ष जड़ की पर्याय है। समझ में आया? पाँच तत्त्व कहे **'वे जीव–पुद्गल की पर्याय हैं;...'** दो के क्यों कहा? समझ में आया? कि आत्मा में जो पुण्य–पाप के विकल्प उठते हैं दया, दान, व्रत का, वह पुण्यास्रव है, वह आत्मा की पर्याय विशेष है। हिंसा, जूठुं, चोरी, विषय, भोगवासना वह पापआस्रव अशुभ परिणाम है, वह जीव की विशेष पर्याय है। और उसी क्षण जड़ के परमाणु आये वह जड़ की पर्याय है। और जड़ के परमाणु वहाँ बन्धरूप हो वह जड़ की अवस्था है।

यहाँ संवररूप दशा हो, राग–द्वेष रहित शुद्धता की आत्मा की वीतराग परिणति प्रगट हो, वह संवर जीव की पर्याय है। कर्म के उदय के रजकण आना अटक जाये वह जड़ की पर्याय है। यहाँ शुद्धि की वृद्धि आत्मा में हो वह जीव की निर्जरा

पर्याय है। कर्म का खिर जाना वह जड़ की पर्याय है। आत्मा राग में अटके या दया, दान के विकल्प में अटके वह भी भावबन्ध जीव की पर्याय है। और उसके कारण कर्म के परमाणु बँधे वह जड़ की पर्याय है। आत्मा में पूर्ण शुद्धता होने से मोक्ष होता है वह जीव की पर्याय है। उस समय कर्म पूर्ण छूट जाये वह जड़ की पर्याय है। ओहोहो..! समझ में आया?

क्या कहा? '**जीव-पुद्गल की पर्याय हैं;...**' एसा कहा। ही। पाँच पर्यायें आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष वह पाँच पर्याय जीव की है और एक अजीव की है। ऐसे पाँच जीव-अजीव की पर्यायें हैं। जीव-अजीव द्रव्य नहीं, परन्तु जीव-अजीव के वह गुण नहीं हैं। समझ में आया? यह तो बहुत आसान बात समझने जैसी है। ध्यान तो रखते हैं बराबर।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- परन्तु यह तो समझमें आये ऐसी बात है, यह तो बच्चे को समझ में आये ऐसी है।

एक जीव और अजीव (द्रव्य है)। अजीव अर्थात् मेरे सिवा सब मेरे लिये तो सब अजीव हैं। और सर्व जड़। यहाँ से पर। अर्थात् पर और स्व दो भिन्न हो गये। उसकी बात कही। अब यह पाँच दशा जो तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं कहा, उसके पाँच भाव जो रहे वह पाँच है क्या? कहा तो तत्त्व। परन्तु है क्या? कि पर्याय। पर्याय अर्थात् हालत। किसकी? कि जीव की पाँच हालत पर्याय और अजीव की पाँच। ऐसे एक जड़ की और एक जीव की। दो की वह पाँच पर्यायें है। दो द्रव्य कहे उसकी पाँच पर्याय है। समझ में आया?

'**यह विशेषरूप तत्त्व हैं;...**' पहले दो सामान्य थे। जीव और अजीव अर्थात् पर, वह दो सामान्य थे नित्य रहनेवाले, उसकी यह पाँच दशा है। समझ में आया? अभी, 'तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' जो जैनधर्म की पहली नींव है। त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव, जिनेश्वरदेव जिसको तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं, वह सात कौन और कैसे है उसकी खबर विना सम्यग्दर्शन हो कैसे? और सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र कभी हो सकता नहीं।

दो कहे सामान्य, पाँच विशेष कहें। उस विशेष के दो प्रकार। एक जीव के पाँच विशेष और जड़ के पाँच विशेष। उन पाँच पर्यायों को जानने से। अब उसका प्रयोजन सिद्ध करता है। वह तो वस्तु सिद्ध करी कि वह पाँच क्या है? अब यह पाँच दशा।

पर्याय है न? पर्याय अर्थात् हालत--अवस्था। जैसे सोना नित्य रहकर सोने में पीलापन, चीकनापन हमेंशा रहकर कुण्डल, कडे, अँगुठी आदि अवस्था–पर्याय होती है न? ऐसे आत्मा और जड़, वस्तु अपेक्षा नित्य रहकर उसकी दशायें पलटे, उस दशा के पाँच प्रकार हैं। आस्रव, बन्ध, सँवर, निर्जरा और मोक्ष। कहो, समझ में आया? यह समझ में आये ऐसा है। यह बुजुर्ग ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। उसकी दक्षिण की भाषा है उन लोगों की।

सात में क्या कहा? 'तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्।' तत्त्वार्थ सात। उसमें जीव और पर, पर में सब जीव और अजीव (आ गये), मेरे से भिन्न। ऐसे जीव और अजीव दो जात सामान्य अपेक्षा, द्रव्य अपेक्षा से कहने में आयी। और पाँच उसकी दशायें, पर्याय–अवस्था कहने में आयी। अब वह पाँच क्या है? यह तो जीव–अजीव की पर्याय है इतना कहा, परन्तु इसका स्वरूप क्या है?

'**पाँच पर्यायोंको जानने से मोक्षका उपाय करने का श्रद्धान होता है।**' देखो! उन पाँच पर्यायों को जानने से मोक्ष का उपाय अर्थात् मोक्षमार्ग.. यह मोक्षमार्गप्रकाशक है न? मोक्षमार्ग करने का '**श्रद्धान होता है।**' क्या कहा? पाँच पर्यायो को जानने से। पहले में दो को जानने से क्या था ऐसा आया था। शब्द भी तोल तोल कर रखे हैं। पहले में दो जीव और अजीव को जानने से, पर से मैं भिन्न, मेरे हित के लिये मेरे स्वभाव का साधन मोक्ष का करना। पर मेरे से भिन्न है तो उससे उदास होकर उस ओर के राग–द्वेष को, शुभाशुभ राग को मुझे छोड़ना है।

'**पाँच पर्यायों को जानने से मोक्ष का उपाय करने का श्रद्धान होता है। वहाँ मोक्ष को पहचाने।**' अब मोक्ष आया पहली पर्याय, पहले वहाँ से कहा था न! यहाँ तो मोक्ष का प्रयोजन है। पहले कहा था, सात तत्त्व में। तीसरी पंक्ति उत्तर में। अब उसमें पाँच में पहली मोक्षपर्याय ली। '**मोक्ष को पहचानो...**' मोक्ष है तो पर्याय--हालत--दशा। सिद्ध की भी एक दशा है मोक्ष। वह कोई गुण–द्रव्य नहीं है। जैसे संसार, संसार वह आत्मा की दशा है, पर्याय है। संसार कोई शरीर, वाणी, मन में नहीं रहता। संसार आत्मा की पर्याय में पुण्य और पाप मेरा, मैं उसका, ऐसा मिथ्यात्वभाव या राग–द्वेष भाव वह जीव की पर्याय में संसार है। समझ में आता है भैया? संसार कोई दूर नहीं रहता, स्त्री, कुटुम्ब में संसार नहीं है। वह आया कि नहीं? कि आस्रव और बन्ध जीव की पर्याय है। तो आस्रव बन्ध कहो या संसार कहो। समझ में आया?

आस्रव अर्थात् पुण्य-पाप के भाव, और बन्ध अर्थात् आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर उसमें रुक जाता है, विकार में अटके वह बन्ध। यह आस्रव और बन्ध वह जीव की पर्याय है, आत्मा की दशा है अर्थात् संसार आत्मा की दशा में है। संसार कोई कर्म में, स्त्री, पुत्र, पैसा, लक्ष्मी में संसार नहीं है। संसार कहाँ रहता है यह भी मालूम नहीं। यहाँ तो उस तत्त्व को बताते हैं। समझ में आया?

जीव और अजीव की पाँच पर्याय--अवस्था कही। तब उस में आस्रव, बन्ध जीव की अवस्था है। जड़ की जड़ में रही। वह तो परमाणु आये और जाये उसके कारण से। यहाँ आस्रव और बन्ध वह जीव की पर्याय कही। पर्याय अर्थात् अवस्था, अवस्था अर्थात् दशा। तो वह आस्रव, बन्ध वह संसारदशा है। समझ में आया? परन्तु उस आस्रव, बन्ध को भिन्न जानकर, मेरा स्वरूप उससे भिन्न है (ऐसा जाना तो) उतनी उसको मोक्षमार्ग का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय प्रगट हुई। उसको संवर, निर्जरा अथवा मोक्ष का मार्ग कहते हैं। समझ में आया?

जीव में पुण्य और पाप का भाव हो और उसमें अटकना वह आस्रव और बन्ध है, वह जीव की पर्याय है। अब वह जीव की पर्याय है सो संसार है। अब जिसको मोक्षमार्ग करना हो तो पुण्य-पाप और बन्धमें-से हटकर, आत्मतत्त्व मात्र ज्ञाता-दृष्टा है उसमें एकाकार हो, तब उसे मोक्षमार्ग की पर्याय (प्रगट हो)। आस्रव, बन्ध संसार पूर्ण पर्याय थी। उसमें-से हटकर स्वभाव.... खसी समजे न? हटकर। चैतन्य ज्ञानान्द स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता करे तो उसे उतना मोक्ष का मार्ग निर्मल पर्याय (प्रगट हो) वह भी जीव में है। अभी थोड़ा आस्रव, बन्ध भाव रह जाता है। जब स्वभाव में पूर्ण स्थिर हो जाये तब पूर्ण मोक्ष की दशा हो जाये। तब संसार का आस्रव, बन्ध की पर्याय जीव में बिलकुल रहे नहीं। समझ में आया? जीव के अन्दर आस्रव और बन्ध अर्थात् मलिन परिणाम में अटकना, स्वभाव छोड़कर अटक जाना वह आस्रव, बन्ध। और मलिन परिणाम स्वयं आस्रव। उन दोनों को पहचाने तो उनसे हटकर उसको हेय जाने।

देखो, वह कहेंगे कि, आस्रव को हेय जाने, बन्ध को अहित जाने। तो उससे हटकर, दूर हटकर अपने शुद्ध स्वभाव में एकाकार हो तो उतना मोक्ष का मार्ग प्रगट हो और जितना पुण्य और पाप में अटकना बाकी रह गया उतना अभी बन्धमार्ग भी होता है। बाद में पूर्ण छूटकर स्वरूप में स्थिर हो, तब केवल मोक्षदशा हो जाये। तब संसार की आस्रव, बन्ध पर्याय बिलकुल रहे नहीं। समझ में आया?

इसमें तो बहुत प्रकार आते हैं। लोग कहते हैं न, शुभ से धर्म होता है, पुण्य से धर्म होता है, सब उड़ जाता है इसमें। दया, दान, व्रत, भक्ति, शुभ परिणाम से (धर्म होता है)। वह तो आस्रव है, वह तो संसार है, उदयभाव है, जीव की मलिन पर्याय है। तुझे मोक्षमार्ग करना है कि नहीं? तो उस मलिन पर्याय से हटकर, निर्मल ज्ञानानन्द स्वभाव अपना है, उसकी अन्तर में रुचि, ज्ञान करके स्थिर होना, उतना मलिनता से छूटकर मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। और जितना मलिन भाग बाकी रह गया, तब तक उसको बन्ध भाव भी उतना कहने में आता है। कहो, समझ में आया? मलिनता कम रही और कुछ निर्मलता हुई। मलिनता कम हुई और कुछ निर्मलता हुई उसको मोक्षमार्ग और थोड़ा अटकना ऐसा बन्धभाव दोनों साथ में रहता है। दोनों साथ में होते हैं। परन्तु जितना पुण्य और पाप का भाव है वह बन्धमार्ग है। उससे छूटकर स्वभाव में एकाकार होना इतना मोक्ष का मार्ग है। एक समय में दो होते हैं, अपूर्ण है इसलिये। वह कहते हैं देखो!

उसमें मोक्ष को पहचाने तो उसको हितरूप मानकर, पूर्ण छूटना उसको हितरूप मानकर उसका उपाय कर मोक्ष का। वह छूटने का उपाय करे, मोक्ष को हित माने तो। देखो! यह एक तत्त्व की बात हुई पाँच पर्याय में। '**इसलिये मोक्ष का श्रद्धान करना।**' इसलिये मोक्ष का श्रद्धान करना। पूर्ण निर्मलता वह मेरा हित है, वह मेरा हित है इसलिये उसका उपाय करना, यह मोक्ष को जानने का प्रयोजन है। आहाहा..! समझ में आया?

'**तथा मोक्ष का उपाय संवर-निर्जरा है;...**' देखो आया। वह एक पर्याय है। आस्रवभाव नहीं आया मोक्ष के उपाय में। पुण्य के परिणाम, दया, दान, व्रत के मोक्ष का उपाय है ऐसा नहीं आया उसमें। आहाहा..! अरे..! सात तत्त्व की श्रद्धा की भी खबर नहीं। मोक्ष का उपाय। मोक्ष तो परम निर्मलता है, पूर्ण शुद्धता है तो उसका उपाय अपूर्ण शुद्धता वह उसका उपाय है। परन्तु अशुद्धता वह उसका उपाय है ऐसा नहीं है। ऐसी तो अभी तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन में प्रतीति आ जाती है, उसकी भी खबर नहीं। सेठी! मोक्ष अर्थात् आत्मा की परम पवित्र आनन्ददशा, वह पर्याय है। उसको पहचाने तो उसको हित जाने। उसको हित जाने तो उसका उपाय करे। मोक्ष हो ऐसा उपाय करे। एक बात। अब उसका उपाय संवर-निर्जरा करे। संवर अर्थात् शुद्धता का उत्पन्न होना और निर्जरा अर्थात् शुद्धता की वृद्धि होनी। उसमें पुण्य, पाप आस्रव नहीं आये। एय.. देवानुप्रिया!

श्रोता :– ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– वह तो संवर, आस्रव का अभाव होनपर संवर होता है। आस्रव स्वयं संवर का कारण नहीं है। विकल्प व्रत, नियम की जो वृत्ति उठे वह तो आस्रव में गया। वह तो बन्ध का कारण है, संवर का कारण नहीं है।

मोक्ष का उपाय, पूर्ण पवित्रता की प्राप्ति का उपाय वह संवर–निर्जरा है अर्थात् सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। वह संवर, निर्जरा यहाँ शब्द लेना। सातमें से लेना है न? बाकी संवर, निर्जरा अर्थात् आत्मा पुण्य–पाप रहित, पर से रहित ऐसे आत्मतत्त्व की सम्यक्श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें रमणता, वह दर्शन, ज्ञान और चारित्र शुद्ध पर्याय, अविकारी पर्याय उसको संवर–निर्जरा कहा, उसको मोक्षमार्ग कहा, मोक्ष का उपाय उसको कहा। समझ में आया?

यह तो बहुत अच्छी बात है। यह तो अभी पहले एकड़ा की बात है। 'तत्त्वार्थ श्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्' उसकी बात है, परन्तु उसमें भी ध्यान दे नहीं, विचार करे नहीं और ओघे ओघे चले, वह तो अनन्त काल से चलता है, बापु! उसमें कोई पता पडेगा नहीं। **'इनको पहचाने...'** किसको? मोक्ष के उपाय को। उपाय कहो, मार्ग कहो, संवर–निर्जरा कहो, एक ही है। **'जैसे संवर–निर्जरा हो वैसे प्रवर्ते;...'** तो संवर–निर्जरा हो वैसे प्रवर्ते। देखो! शुभाशुभ भाव से रहित शुद्धता में जैसे आना हो वैसे प्रवर्ते। संवर और निर्जरा का श्रद्धान हो तो। समझ में आया? संवर–निर्जरा को पहचाने तो, जैसे संवर अर्थात् शुद्धता, निर्जरा अर्थात् शुद्धता की वृद्धि हो ऐसे प्रवर्ते। वह तो शुद्ध चिदानन्द मूर्ति भगवान उसके अंतर में एकाकार हो वह मोक्षमार्ग का उपाय और संवर–निर्जरा है। **'इसलिये संवर–निर्जरा का श्रद्धान करना।'** इसलिये संवर–निर्जरा का श्रद्धान करना। वह तीन पर्यायें हुई। पाँच पर्यायमें से तीन हुई। मोक्ष, संवर और निर्जरा। अब दो रही––आस्रव और बन्ध। सात तत्त्व के अन्दर की बात है यह।

'तथा संवर–निर्जरा तो अभावलक्षण सहित है;...' अभावलक्षण सहित है न? किसका अभाव? **'इसलिये जिनका अभाव करना है उनको पहिचानना चाहिये।'** संवर–निर्जरा तो अभावलक्षण सहित है। किसका अभाव? ऐसा कहते हैं। **'जिनका अभाव करना है उनको पहिचानना चाहिये। जैसे–'** दृष्टान्त अभी दिया है। **'क्रोध का अभाव होने पर क्षमा होती है;...'** क्रोध का अभाव होने से क्षमा होती है। **'सो क्रोध को पहिचाने तो उनका अभाव करके क्षमारूप प्रवर्तन करे। उसी प्रकार आस्रव का अभाव होने पर संवर होता है।'** देखो महा सिद्धान्त। आस्रव

दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा का विकल्प उठे वह पुण्यास्रव है। हिंसा, झूठ, चोरी पापआस्रव है, दोनों मलिन भाव है। लोगों को बहुत सूक्ष्म लगे। जिस भाव से मलिनता हो वह पुण्य-पाप है। उसका अभाव होने पर, उसका अभाव होने पर संवर होता है। आस्रवभाव रखकर संवर नाम धर्म होगा, संवर अर्थात् धर्म, ऐसा हो सकता नहीं। कहो, समझ में आया? यह तो अभी प्रथम नींव। मकान बनाने की नींव। क्या कहते है उसको? नींव-नींव।

इस प्रकार तत्त्वार्थ श्रद्धान है। भाई! वह सात क्या है? उसको पहिचाना? सात को पहिचाना? सात को यदि पहिचाने और सात का प्रयोजन जाने तो उसको सम्यग्दर्शन हुए बिना रहता नहीं। अब बाद में ज्ञान विशेष और चारित्र को बाद में कैसे होना वह स्वरूप की रमणता तो बाद में।

यहाँ तो कहते हैं कि आस्रव का अभाव होनेपर। आस्रव अर्थात् पुण्य और पाप, उसका अभाव होनेपर संवर होता है। '**और बन्ध का एकदेश अभाव होने पर निर्जरा होती है;...**' नया बन्ध एकदेश। बन्ध का एकदेश अभाव। सर्वथा बन्ध का अभाव हो तो मोक्ष होता है। परन्तु एकदेश बन्ध का अभाव, बन्ध का अभाव, जिससे बन्ध पड़े ऐसा नहीं, उसका अभाव। उसको निर्जरा कहने में आती है। पहली परिभाषा दूसरी कही थी। वहाँ पर। पहले आ गई है न? कथंचित् किंचित्। पहले अधिकार में, निर्जरा अधिकार में। ८७ पन्ने पर था। समझ में आया? वह तो यहाँ एकदेश में सब आ गया। वह तो ८७ पन्ने पर था। वह उस दिन बात हुई थी। ८७ पृष्ठ। बन्ध का एकदेश अभाव उसको निर्जरा कही है। और इस ओर... दूसरा भाग। दूसरा पेरेग्राफ। बन्ध का एकदेश अभाव वह निर्जरा। वहाँ भी ऐसा कहा था। दूसरे में बन्ध कहा है न? कदाचित् किंचित् ऐसा है न दूसरी जगह? पहले शुरुआत में। लिखा था। वह तो मालूम है। ६२ देखो, दो पंक्ति है न? ६२ की आखरी। फिर कदाचित् उपाय करता है... वह नहीं। ८२। लिखा नहीं है। ८७ लिखा है। पाँचवी पंक्ति।

'**कथंचित् किंचित् कर्मबन्ध का अभाव करना वह निर्जरा है।**' ८२ पृष्ठ पर नीचे की पाँचवी पंक्ति। समझ में आया? ८७ में ऐसा कहा था, कथंचित् किंचित् कर्मबन्ध का अभाव। यहाँ एकदेश कर्मबन्ध का अभाव कहा, उसमें वह बात आ गई। वहाँ कथंचित् लेने का कारण था कि पुण्य का रस बिलकुल नहीं बँधता है (ऐसा नहीं है), पुण्य का रस तो बढ़ता है। इसलिये कथंचित् किंचित् कर्मबन्ध का अभाव कहा है। सर्व से बन्ध का अभाव ऐसा नहीं। वह शब्द इसमें आ गया। बन्ध

का एकदेश अभाव होने से निर्जरा, इसमें वह आ गया। समझ में आया? क्या कहते हैं? निर्जरा किसको कहनी? कि अशुद्धता का अंश टल जाना और कर्म का अंश, आंशिक बन्ध का कम होना, उसको निर्जरा होती है।

'**सो आस्रव बन्ध को पहिचाने तो उनका नाश करके संवर-निर्जरारूप प्रवर्तन करे;...**' देखो! आस्रव और बन्ध को पहिचाने तो (उसका) नाश करके, उसका नाश करके। रखने के लिये बात नहीं है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह प्रश्न ही कहाँ है? शुभ और अशुभ परिणाम दोनों आस्रव है। शुभ और अशुभ परिणाम, पंच महाव्रत के परिणाम और अव्रत के परिणाम दोनों आस्रव है। दोनों आस्रवों का नाश करके संवर-निर्जरारुप प्रवर्तन करे। यह महासिद्धान्त है, उसमें क्या हो? पहले से ही तत्त्वार्थश्रद्धान का स्वरूप क्या है उसको पहचाने नहीं। आस्रव और बन्ध को पहिचाने तो आस्रव-बन्ध का नाश करके संवर-निर्जरारूप प्रवर्तने करे। आत्मा में पुण्य-पाप के भाव से हटकर, बन्ध के भाव का एक अंश घटाकर स्वभाव तरफ प्रवर्तन करे तब उसको आस्रव और बन्ध का यथार्थ ज्ञान हुआ ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? '**इसलिये आस्रव-बन्ध का श्रद्धान करना।**' लो! पाँचों हो गये। '**इसलिये आस्रव-बन्ध का श्रद्धान करना।**' पाँचों हो गये। जीव, अजीव, मोक्ष, संवर, निर्जरा, आस्रव, बन्ध ऐसे लिया है। जीव-अजीव, मोक्ष, संवर-निर्जरा, उसका अभाव आस्रव और बन्ध। ऐसे लिया है।

'**इसप्रकार इन पाँच पर्यायों का श्रद्धान होने पर मोक्षमार्ग होता है।**' है न? उसमें कहा था न कि उन दोनों का श्रद्धान करना चाहिये। '**इन पाँच पर्यायों का श्रद्धान होने पर...**' यह विधि कही उससे मोक्षमार्ग होता है। '**इनको पहिचाने तो मोक्षकी पहिचान...**' हो। अब नकार आयेगा। अब इनको पहिचाने तो वह मोक्ष को पहिचाने, परन्तु '**इनको न पहिचाने तो मोक्षकी पहिचान बिना...**' मोक्ष से शुरु किया था न पहिचान करने में? पहिचान अर्थात् समझ।

अब '**मोक्ष की पहिचान बिना...**' मोक्ष क्या है भगवान जाने। मोक्ष माने उसमें सिद्धशीला पर लटकना ऊपर जाकर। वह मोक्ष होगा? मोक्ष तो तेरी दशा पूर्ण निर्मल, तेरी दशा में मोक्ष है, तेरी दशा में मोक्ष है। मोक्ष पृथ्वीशीला में, मुक्तिशिला में या उपर क्षेत्र में कहीं मोक्ष नहीं है। तेरे आत्मा की पूर्ण दशा--पर्याय में मोक्ष है। और अपूर्ण दशा वह आस्रव, बन्ध वह स्वयं संसारदशा है। तेरी पर्याय में सबकुछ है। बाहर

में तेरा कुछ नहीं रहता। आस्रव, बन्ध बाहर नहीं, मोक्ष भी बाहर नहीं और संवर, निर्जरा भी बाहर नहीं है।

'**उसका उपाय किसलिये करे?**' मोक्ष की पहिचान बिना उसका उपाय किसलिये करे? उसमें कहा था कि मोक्ष की पहिचान करे तो उसका उपाय करे। परन्तु आत्मा की पूर्ण दशा, पवित्र दशा, पूर्ण शुद्धता प्रगट होना वह मोक्ष, उसको न पहिचाने तो उसका उपाय किसलिये करे? अब '**संवर-निर्जराकी पहिचान बिना...**' देखो! हकार से कहा था, ऐसा अब नकार से कहते हैं। '**संवर-निर्जरा की पहिचान बिना उनमें कैसे प्रवर्तन करे?**' भगवान आत्मा पुण्य-पाप का आस्रव मलिनता से रहित है, उसको न पहिचाने तो वह अंतर में शुद्धता में और शुद्धता की वृद्धि में कैसे प्रवर्तन करे? कहो, बराबर है?

'**आस्रव-बन्ध की पहिचान बिना उनका नाश कैसे करे?**' पुण्य-पाप के भाव आस्रव है और उसका फल बन्धन है। उन दोनों को कम करने का, नाश करने का उपाय, आस्रव-बन्ध को न जाने तो कैसे करे? कहो, सेठ! यह तो पहली अभी सात तत्त्व की बात आई है। पहली। आहाहा..! क्यों रतिभाई! यह मुद्दे की रकम आती है पहली। '**इसप्रकार इन पाँच पर्यायों का श्रद्धान न होने पर...**' उसमें ऐसा कहा न श्रद्धान होने से मोक्षमार्ग होता है पाँच का श्रद्धान होने पर। तो अब पाँच पर्याय का श्रद्धान। पाँचों पर्याय है। अरे! संसार भी तेरी दशा में, बन्ध भी तेरी दशा में, धर्म भी तेरी दशा में और मोक्ष भी तेरी दशा में। पर के कारण तुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? पाँच दशायें--पाँच हालत उसका श्रद्धान न होने पर '**मोक्षमार्ग नहीं होता।**' देखा न!

'**इसप्रकार यद्यपि तत्त्वार्थ तो अनन्त हैं,...**' वहाँ आया फिर से। वह मालूम है। मैं चिट्ठी करके वहाँ किया था। '**तत्त्वार्थ तो अनन्त हैं, उनका सामान्य विशेष से अनेक प्रकार प्ररूपण हो;...**' अनन्त तत्त्वार्थ हैं, उसके सामान्य-विशेष के प्रकार से अनन्त भेद पड़ते हैं, '**परन्तु यहाँ एक मोक्ष का प्रयोजन है;...**' यहाँ तो एक मोक्ष का प्रयोजन है। बापु! बन्धन से छूटे और परम शान्ति की प्राप्ति परमात्म दशा की हो, यह प्रयोजन है। दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है।

'**इसलिये दो तो जाति अपेक्षा सामान्यतत्त्व...**' दो जाति है न? जीव और अजीव सामान्य। सर्व जीव और अजीव साथ में। '**और पाँच पर्यायरूप विशेषतत्त्व मिला कर सात तत्त्व कहे।**' कहो, समझ में आया? इतने-इतने समय से सुनते

हो उसको पूछे कि संसार कहाँ रहता होगा? स्त्री, पुत्र में, धन्धे, व्यापार में। इतनी भी उसको खबर नहीं, वह आस्रव-बन्ध को कहाँ ढूंढे? समझ में आया? सामायिक कहाँ रहती होगी? रतिभाई! सामायिक कहाँ रहती है ऐसा पूछे तो आये नहीं। अपासरा में। या शरीर ऐसे बैठा रहे उसमें। अरे..! भाई!

सामायिक तो आत्माकी दशा में रहती है। सामायिक तो आत्मा पुण्य-पाप के भाव रहित शुद्ध चिदानन्द है उसकी श्रद्धा, ज्ञान रमणता में रहे, ऐसी आत्मा की दशा में सामायिक होती है। सामायिक राग में नहीं है, सामायिक मन में नहीं है, सामायिक शरीर में नहीं है, सामायिक नहीं है उपाश्रय और देरासर में। उसका पता नहीं और कहे, हमने सामायिक करी। कौन ना कहे? कहो, समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। क्या करता है? मिथ्याश्रद्धा करके पुण्य के परिणाम कदाचित् करता हो, परन्तु मिथ्याश्रद्धा का अनंत अभिप्राय तो साथ में है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- परन्तु वह तो उसके परिणाम के काल में वह परिणाम आयेंगे ही, परन्तु उसकी दृष्टि में विशेषता--अंतर क्या है यह समझाने में आता है। इतनी बात है।

श्रोता :- बात समझाने से ऊल्टा पड़े...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो उसका दोष है। गधा शक्कर खाने से मर जाये इसलिये क्या इन्सान को शक्कर नहीं खानी चाहिये? टोडरमलजी ने स्वयं दृष्टान्त दिया है यहाँ द्रव्यानुयोग में। सत्य बात यह है। सामायिक कहाँ रहती है? बोलो। सामायिक आस्रव-बन्ध है या संवर-निर्जरा? और सामायिक कहाँ रहती होगी? किस क्षेत्र में? किस गुण में? किस पर्याय में? किस द्रव्य में? भगवान जाने, हमको तो कुछ मालूम नहीं। सामायिक करते हैं।

भाई! सामायिक तो संवर-निर्जरास्वरूप है। वह संवर-निर्जरा कब होती है? कि आस्रव-बन्ध की पहिचान हो, उससे रहित होने का आत्मा में प्रयत्न करे तब उसकी दशा में सामायिक होती है। और वह सामायिक निर्दोष वीतरागी पर्याय है, वीतरागी दशा है सामायिक। उसको सामायिक कहते हैं। वह वीतरागी दशा संवर-निर्जरा कहो, मोक्षमार्ग कहो या आत्मा की निर्मल पर्याय कहो या मोक्ष का उपाय कहो। समझ में आया?

'सामान्यतत्त्व और पाँच पर्यायरूप विशेषतत्त्व मिलाकर सात ही तत्त्व कहे।'

लो! सात का मेल ले लिया। **'इनके यथार्थ श्रद्धान के आधीन मोक्षमार्ग है।'** क्योंकि इन सात के यथार्थ श्रद्धान आधीन मोक्षमार्ग है। सात की जहाँ यथार्थ श्रद्धा नहीं है वहाँ मोक्षमार्ग होता नहीं। देखो यह सिद्धान्त। क्योंकि वह दो सामान्य जीव और अजीव तत्त्व, पाँच विशेष पर्यायें उसकी यथार्थ श्रद्धान के आधीन। उसकी श्रद्धा का जहाँ ठिकाना नहीं है, उसको मोक्षमार्ग हो सकता नहीं। **'इनके सिवा औरोंका श्रद्धान हो...'** देखो! अरे..! सब जगत की बातें, अभी देखो न अच्छी-अच्छी सब बातें करते हैं न। **'औरों का श्रद्धान हो या न हो या अन्यथा श्रद्धान हो;...'** उसके साथ क्या काम है? बाह्य पदार्थ के साथ। इसका ऐसा है, उसका ऐसा है, यह ऐसे होता है, रोटी ऐसी होती है, दाल ऐसे होती है, सब्जी ऐसे होती है, बघार ऐसे करना, कपड़ा ऐसे होता है, सोना ऐसे होता है, अँगुठी ऐसे बनती है, मकान ऐसे बनता है, फलाना ऐसा होता है, निवाला बहुत चबा चबाकर खाये तो हजम हो जाये। वह तो सब अज्ञान है, सुन न। कौन करे वहाँ? डोक्टर! कहो।

'अन्यथा श्रद्धान हो; किसी के आधीन मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा जानना।' बस, अब पुण्य-पाप थोड़ा विशेष लेंगे।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.-२४८९, मार्गशीर्ष वद-७,
रविवार, दि.१६-१२-१९६२

अधिकार - ९, प्रवचन नं.-३१

यह मोक्षमार्ग प्रकाशक का नौंवा अध्याय। मोक्षमार्ग का स्वरूप चलता है। उसमें तत्त्वार्थश्रद्धान, सात तत्त्वों की श्रद्धा के आधार से मोक्ष का मार्ग है। वह सात तत्त्व का स्वरूप कहा। जीव स्वयं ज्ञायकस्वरूप है। उसको जाने तो अपने हित के लिये अंतर का मोक्ष का उपाय--साधन करे। जीव के सिवा अन्य जड़ पदार्थ मुझ से भिन्न

हैं, मुझे और उसे कोई प्रयोजन नहीं है। तो परपदार्थ से उदास होकर अपने अन्दर परपदार्थ के आश्रय से होनेवाले रागादि भावों को छोड़कर मोक्षमार्ग के उपाय में प्रवर्तन करे।

पुण्य-पाप के भाव को आस्रव कहते हैं। यहाँ तक आया है न? पुण्य-पाप अब लेंगे। शुभ-अशुभभाव वह आस्रव है, वह दुःखदायक है, हेय है ऐसा यदि जाने तो उसको छोड़ने का उपाय करे। और बन्धभाव आस्रव का निमित्त पाकर जड़ का बन्ध हो अथवा भावबन्ध पर्याय हो, वह भी आत्मा को हितकर नहीं है। ऐसा जाने तो वह स्वभाव का साधन करने का प्रयत्न करे और पर को छोड़ने का प्रयत्न करे। उसका मूल प्रयोजन तो मोक्ष है, आत्मा का मूल प्रयोजन तो मोक्ष प्रयोजन है। शुद्ध पूर्ण आत्मा के आनन्ददशा की प्राप्ति वह प्रयोजन है। उस प्रयोजन में सात तत्त्वों की श्रद्धा, मोक्षमार्ग में एक ही कार्यकारी है। वहाँ तक आया देखो।

'**इनके यथार्थ श्रद्धान के आधीन मोक्षमार्ग है।**' सात तत्त्वों को... यहाँ अन्य किसी की बात नहीं है। किसीको लेकर या इसको लेकर कुछ नहीं। स्वतन्त्र सब कुछ है। '**इनके सिवा औरों का श्रद्धान हो या न हो या अन्यथा श्रद्धान हो; किसी के आधीन मोक्षमार्ग नहीं है...**' आत्मा को मोक्ष अर्थात् शुद्ध दशा का उपाय, दूसरा ज्ञान कम-अधिक हो उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। अरे..! कोई विपरीत भी हो। यह यथार्थ तत्त्व है उसकी यथार्थ अंतर में दृष्टि और रुचि होनी वही एक मोक्ष का मार्ग है।

'**तथा कहीं पुण्य-पाप सहित नव पदार्थ कहे हैं;...**' सात की बात हो गई और दो बात लेते हैं। '**सो पुण्य-पाप आस्रवादिकके ही विशेष हैं;...**' देखो, यहाँ शुभभाव को भी पुण्य कहा है। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प राग आये वह शुभराग पुण्य है, वह आस्रव है, वह आस्रव का ही भेद है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, आस्रव माने वह बन्ध का भेद है।

श्रोता :- आदि में संवर...

पूज्य गुरुदेवश्री :- आदि में संवर-फंवर की कहाँ बात है? आस्रव और बन्ध का वह भेद है, ऐसा कहते हैं आदि में। यहाँ तो खूबी से यह बात ली है कि पुण्य स्वयं मोक्षमार्ग न माने इसलिये शुभभाव को लिया है। जड़ रजकण पुण्य के आये

वह जड़ की पर्याय है। परन्तु आत्मा में शुभभाव होना (जीव का भाव है)। समझ में आया? समझ में आया कुछ? यहाँ सात तत्त्व के अन्दर पुण्य-पाप के भेद भी आस्रव के ही भेद हैं। शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का राग वह आस्रव का एक भाग है--शुभभाव। अर्थात् बन्ध का एक भाग, भावबन्ध और उसके कारण से द्रव्यबन्ध होता है उसका वह भाग है। समझ में आया? और पाप वह भी भाव है। हिंसा, असत्य, चोरी, विषय वह पापआस्रव जिनसे नया कर्मबन्ध हो उसका एक भाग है। समझ में आया? '**इसलिये सात तत्त्वों में गर्भित हुए।**' सात कहे न? जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष। उसमें ही वह पुण्य-पाप अन्दर आ गये।

'**अथवा पुण्य-पाप का श्रद्धान होने पर।**' देखो! पुण्य को मोक्षमार्ग न माने। पुण्य का श्रद्धान होने पर दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव वह पुण्य है। उसकी श्रद्धा होने पर पुण्य को मोक्षमार्ग न माने। समझ में आया?

श्रोता :- एक बात रह जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- एक बात रह जाती है वह सब तो निमित्त के कथन हैं। एक बात रह जाती है, वहाँ मधुवन में कहा था। समझ में आया? आस्रव की परिभाषा जहाँ ७२वीं गाथा चली कि आस्रव जो पुण्य-पाप के भाव है, वह वर्तमान दुःखरूप है और बन्ध कि जो भविष्य में दुःख के परिणाम का कारण है, उसका वह शुभाशुभ भाव बन्ध का निमित्त होता है। इसलिये शुभाशुभभाव वह दुःख का ही कारण है। ऐसी परिभाषा करी तो एक इन्सान ने ऐसा कहा कि एक बात रह जाती है। क्या? दूसरी जगह पर कहीं शुभभाव को साधन कहा है। वह साधन तो आरोपित अभूतार्थ दृष्टि से कहा है।

श्रोता :- उसे संवर भी कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- संवर-फंवर वह अभूतार्थ दृष्टि से कहा है। समझ में आया? पुण्य को मोक्षमार्ग न माने। कोई कहता है कि पुण्य-पाप के अधिकार में पुण्य जड़ को लिया है, ऐसा कहते हैं कुछ लोग। परन्तु इसके कारणरूप भाव को ही पुण्य कहा है।

यहाँ क्या कहा? कि पुण्य को मोक्षमार्ग न माने। जड़ के बन्धन की यहाँ कहाँ बात है मोक्षमार्ग में? शुभभाव होते हैं, व्रत, दान, भक्ति, पूजा, व्रत आदि होते हैं परन्तु वह भाव मोक्षमार्ग नहीं है, धर्म का मार्ग नहीं है। आहाहा..! जो पुण्य की

श्रद्धा हो तो उसको मोक्षमार्ग न माने। सेठ!

श्रोता :- इतना तो लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- लिखा है न, सामने है कि नहीं पुस्तक?

और पाप की श्रद्धा हो तो '**स्वच्छन्दी होकर पापरूप न प्रवर्ते;...**' सात तत्त्वों के अन्दर दोनों का समावेश किया कि पुण्य को मोक्षमार्ग न माने, शुभभाव को मोक्षमार्ग न माने, उसको बन्ध के मार्ग में माने और पाप की श्रद्धा हो तो स्वच्छन्दी होकर पाप में न प्रवर्ते। अतः सात तत्त्वों के अन्दर दोनों का समावेश करें तो उसको नव तत्त्व भी कहने में आता है अथवा नव पदार्थ भी कहने में आता है।

'**इसलिये मोक्षमार्ग में इनका श्रद्धान भी उपकारी जानकर...**' किसका? पुण्य और पाप का। '**मोक्षमार्ग में इनका श्रद्धान भी...**' अर्थात् पुण्य-पाप की श्रद्धा करनी, उसको '**भी उपकारी जानकर...**' पुण्य को मोक्षमार्ग न जाने, पाप की श्रद्धा हो तो स्वच्छन्दी होकर प्रवर्ते नहीं। '**दो तत्त्व विशेष के विशेष मिला कर नव पदार्थ कहे।**' '**तथा समयसारादि में इनको नव तत्त्व भी कहा है।**' जिसको दूसरी जगह नव पदार्थ कहा, समयसार में इनको ही नव तत्त्व भी कहे हैं। कहो, समझ में आया?

पहले अभी सात तत्त्व और नव तत्त्व की श्रद्धा, मोक्षमार्ग जिसके आधीन, जिसके आधीन मोक्षमार्ग, उसके आधीन वह श्रद्धा क्या, वस्तु आत्मा है, आत्मा क्या करे? क्या करे? निश्चय से तो आस्रव के परिणाम भी आत्मा के स्वभाव के अस्तित्व में नहीं है। वह पर्याय, पर्याय के मलिन कारण से नई उत्पन्न होती है। ऐसी एक बात है। समझ में आया? शुभाशुभ भाव पर्याय, पर्याय के कारण से पर्याय है। ज्ञायक प्रभु आत्मा तो जाननेवाला, देखनेवाला स्वभाव है। उसमें संवर, निर्जरा, शुद्धता होती है वह भी निश्चय से देखें तो उस पर्याय के कारण से, संवर के कारण से संवर होता है, निर्जरा के कारण से निर्जरा होती है। आहाहा..! और मोक्ष की पर्याय भी मोक्ष के पर्याय के कारण से होती है। मार्ग के कारण से कहना वह भी एक व्यवहार के कथन की सिद्धि साधन है इसलिये साध्य ऐसा होता है, वह कहने के लिये कहा है। समझ में आया? छोटाभाई! बहुत सूक्ष्म!

अभी तो तत्त्वार्थ श्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्। सात तत्त्व क्या हैं? उसकी पहिचान नहीं हो, उसकी श्रद्धा न हो और हम मोक्षमार्ग का धर्म करते हैं। बापु! वह वस्तु कोई अलौकिक है। समझ में आया? आत्मा ज्ञायकमूर्ति प्रभु अपने से स्वयंसिद्ध वस्तु है।

उसमें पुण्य-पाप के परिणाम मलिन शुभाशुभ भाव वह भी स्वयं उस काल की योग्यता से प्रगट हुए हैं। समझ में आया? वह बन्ध का कारण है। शुभ और अशुभ दोनों आस्रव है। दोनों का फल ऐसे देखो तो बन्ध है और ऐसे देखो तो वर्तमान कलुषितता है। समझ में आया? और संवर, निर्जरा और मोक्ष वह तीनों दशा वह आत्मा की निर्मल स्वयंसिद्ध स्वभाव के आश्रय से हो ऐसा भी कहने में आता है और वह पर्याय, उस-उस पर्याय के कारण से होती है, ऐसा भी उसका यथार्थ स्वरूप है। आहाहा..! समझ में आया?

ऐसे जीव और अजीव दो पदार्थ और पाँच उसकी पर्यायें--अवस्थाएँ, वह स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र है और दो द्रव्य भी स्वतंत्र हैं। इस प्रकार सात को बराबर जैसे हैं वैसी श्रद्धा करे तब वह मोक्षमार्ग उसको आधीन है ऐसा प्रगट हो। अरे..! अभी तो सात की उसको खबर नहीं है। वह तो या तो कर्म को लेकर विकार, पुण्य को लेकर धर्म (मानता है), सब तत्त्व जूठे हैं। भाई! तेरी दशा में शान्ति चाहिये तो यह सात हैं, ऐसे उसको बराबर मानना पड़ेगा, उसके बिना शान्ति कहीं नहीं है। दुनिया में कहीं शान्ति नहीं है। समझ में आया? परद्रव्य उसके कारण से प्रवाह में परिणमन करते जाते हैं, तेरे कारण से नहीं। तेरी दशा तेरे कारण से होती रहती है, पर के कारण से नहीं। तुझे किसके सामने देखना है? समझ में आया?

वह भाव पुण्य-पाप के हो, उसके सामने भी देखना नहीं है। देखना है तो ज्ञायक स्वभाव है वह। परन्तु ज्ञान के लक्ष्य में वह आता है कि यह पुण्य-पाप दो भाव है। समझ में आया? उसका--आस्रव और बन्ध का ज्ञान हो ऐसा ज्ञायकभाव आत्मा का, उसको देखने से उसका ज्ञान हो जाता है। आस्रव और बन्ध का ज्ञान आत्मा में होता है। उसको देखकर नहीं, आत्मा को देखकर। आहाहा..! समझ में आया? ज्ञायक आत्मा चैतन्यबिंब प्रभु है, ऐसा देखने से उसको पुण्य-पाप के आस्रव-बन्ध के भाव हो, उसका उसमें ज्ञान स्वपरप्रकाशक हो जाता है। समझ में आया? ऐसे सात तत्त्वों को और पुण्य-पाप को मिलाकर नव को अथवा नव पदार्थ को बराबर यथार्थ अंतर भान में श्रद्धा करना, उसको मोक्ष के मार्ग की पहली दशा सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो समझ में आया?

अहो..! यह शास्त्र है वह भी परमाणु का पिण्ड है और वह भी मूल पदार्थ नहीं है। यह कोई मूल पदार्थ नहीं है। यह तो अनेक परमाणु का संयोग अर्थात् समीप सम्बन्ध, संयोग अर्थात् समीप सम्बन्ध, उसके पिण्ड की यह पर्याय दिखती है। इसलिये

यह वास्तव में यह हस्ताक्षर है वह भी जड़ की अभूतार्थ पर्याय है। भूतार्थ द्रव्य नहीं है। भूतार्थ एक द्रव्य होता है। आहाहा..! समझ में आया? और एक भूतार्थ द्रव्य उसकी भी एक समय की पर्याय है उतना वह द्रव्य नहीं है। वह कब ख्याल में आये? कि अपनी पर्याय जितना भी यह द्रव्य नहीं है। समझ में आया? अपनी वर्तमान संवर, निर्जरा की पर्याय जितना भी द्रव्य नहीं है। ऐसी द्रव्य की दृष्टि होने पर सब पदार्थों को, जैसे राग से भिन्न स्वयं को ज्ञायक जाने उस दृष्टि से, सब पदार्थों को संयोगरहित भिन्न-भिन्न जाने और उसको जितना अंश है उतना पर को न जाने, उसका पूर्ण तत्त्व है ऐसा ज्ञान में (ले), उसको देखे बिना द्रव्य ओर ज्ञान में उसका इस प्रकार का ज्ञान साथ में आ जाता है। आहाहा..! समझ में आया? केसरीचन्दजी!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- शास्त्र में कहाँ ज्ञान है? ज्ञान तो यहाँ है। शास्त्र में कहाँ ज्ञान है?

श्रोता :- पढ़ते है न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- ना। कौन पढ़ता है? शास्त्र ही नहीं है, अक्षर भी नहीं है। कल कहा था न। यह अक्षर कागज में है वह बात जूठी है। क्या कहा? यह अक्षर है समयसारादि में उसको नव तत्त्व कहा, वह अक्षर कागज में है? नहीं। कागज की पर्याय कागज में है, अक्षर की पर्याय अक्षर में है। यह तो अलग बात है, सेठ! आपके यहाँ बड़े थैले की सिलाई कैसे सीते होंगे? कोई गोल सिलाई करे, कोई ऐसी सिलाई करे। एक बार देखा था। उसमें गये थे न? ऐसा गोल थैला। सीधा होता है न? गोल-गोल। दो संधि नहीं। एक बार वह शाहु शान्तिप्रसाद का लड़का था न। ... कलकत्ता। उसके मकान में पगला करने को ले गये थे। उसका बड़ा बेटा था। शाहु शान्तिप्रसाद। वहाँ कहते थे, देखो महाराज! यह थैला सिलाई किये बिना ऐसा चारों तरफ से ऐसा ही सिलाई होकर नीकलता है। केसरीचन्दजी! सिलाई नहीं करनी पडे। भाग करके बाद में सिलाई करके थैला हो ऐसा नहीं। उसमें से उसको सिना न पड़े, ऐसे ही डोरी चले। देखा है न? पता है। वह भी स्वतंत्र दशा। आहा..! कैसे बैठे कि उस सिलाई मशीन के बिना थैला नहीं होता है। अरे..! लेकिन कौन माने?

परन्तु भाई, जिसकी जो विद्यमानता है, उसकी विद्यमानता पर के कारण हो तो उसकी मौजूदगी ही नहीं रहती। समझ में आया? यह सब अजीव पदार्थ मेरे से भिन्न

है, उसकी दशा के कारण से उसकी दशा की हयाती है। उसकी दशा के कारण से यहाँ ज्ञान की दशा नहीं है। समझ में आया? यहाँ पढ़ते हैं इसलिये यहाँ ज्ञान की दशा होती है ऐसा नहीं है। बड़ी बात भाई! बहुत कठिन।

सर्वज्ञ वीतराग। वीतराग सर्वज्ञ वह तो एक स्वभाव है। ऐसे छः द्रव्य एक स्वभाव वस्तु है। स्वभाव छः प्रकार के हैं ऐसा भगवान ने देखा। उसमें देखकर सर्वज्ञ वीतराग स्वभाव प्रगट किया। स्वभाव... स्वभाव...। कहते हैं कि अक्षर का वाँचन होता है इसलिये ज्ञान होता है। तो भगवान! उसका सामान्य ज्ञान जो अन्दर वस्तु है उसने विशेष क्या किया? अन्य से विशेष दशा हुई तो सामान्य ज्ञानगुण उसका विशेष क्या हुआ? विशेष बिना सामान्य हो सकता नहीं। ज्ञानगुण जो त्रिकाल है उसकी वर्तमान विशेष अवस्था बिना, विशेष पर्याय बिना, विशेष कार्य बिना वह सामान्य होता नहीं। तो शास्त्र के शब्द से यहाँ कार्य हुआ तो, सामान्य ज्ञान उस विशेष के बिना रहा कैसे? सेठी!

बापु! यह तत्त्वज्ञान बहुत अलौकिक है। जगत ऐसे ही मान ले कि हम ऐसे जीव को मानते हैं, जड़ को मानते हैं, ऐसा नहीं है। जीव को मानने से उसकी वर्तमान प्रत्येक अवस्था स्वयं अपने आप होती है, पर से नहीं होती है, तब उसको निमित्त कहने में आता है। उससे होती हो तो इसका अस्तित्व उसके अस्तित्व के कारण ठहरा, इसकी मौजूदगी उसकी मौजूदगी के कारण हुई। दो अस्तित्व एक हो गये। समझ में आया? वस्तु की स्वयंसिद्धता, प्रत्येक वस्तु स्वयं अपने आप परिणमित हुई है, मेरा आत्मा भी मेरे कारण परिणमन कर रहा है, किसीके कारण से नहीं है।

कहते हैं कि इस प्रकार नव तत्त्व की यथार्थ श्रद्धा अंतर में होना उसको मोक्ष का मार्ग उसके आधीन है ऐसा भगवान फरमाते हैं। अब स्वयं को आग्रह छोड़ना नहीं है और हमने माना वह सत्य, उसको बदलने में कौन समर्थ है? कौन बदल सके? समझ में आया? तीन लोक के नाथ तीर्थंकर भी कहते हैं, अरे..! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि अरे..! यह टीका शब्दो से बनी है, हमने बनायी ऐसा मत कहना हाँ! आहाहा..! यह संस्कृत टीका समयसार की रचना हुई वह जड़ की दशा से हुई है। जड़ की पर्याय में ताकात है, शब्द में स्वपर कथा कहने की जड़ में ताकत है। भगवान आत्मा वह कथा करे ऐसा मत मानना, हाँ। वह आत्मा को गाली देने बराबर है। समझ में आया?

ऐसे अजीवतत्त्व जो जगत के हैं उसके कारण से परिणमन कर रहे हैं। यहाँ तो

कहे कि यह भाषा मेरे कारण हुई। मैं बोलना चाहुँ तो बोल सकु, मौन रहना चाहुँ तो मौन रह सकुँ। प्रभु! बडा भ्रमभाव है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म आ रहा है न? हरखचन्दभाई! वस्तु ही यह है। सुनने में रस है। बापु! तेरी चीज की मर्यादा, ऐसी वस्तु की स्थिति है ऐसश जानना, वह भी तुझे जानने से ज्ञात हो जाये ऐसी कोई स्थिति है। आहाहा..! समझ में आया?

कहते हैं कि राग रहित तेरा स्वभाव शुद्ध चैतन्य है। वह राग भी एक संयोगी विकार है, स्वभाव नहीं है। शुभ दया, दान, व्रत का विकल्प भी स्वभाव में नहीं है। स्वभाव राग को छुता नहीं है, राग स्वभाव को छुता नहीं। ऐसे स्वभाव का अंतर भान होने से रागादि की श्रद्धा व्यवहार से उसको ज्ञात हो जाती है। व्यवहार से कैसे कहा? कि पर है इस अपेक्षा से। वैसे तो ज्ञान में सातों का स्वरूप ज्ञान की पर्याय में आ जाता है। समझ में आया?

इसलिये कहते हैं... बहुत कठिन पड़े जगत को। यह अक्षर नहीं है? अक्षर न हो तो यह ऊँचा हो तो अक्षर भी ऊँचे नहीं होने चाहिये। भगवान! स्वभाव को देख। सूक्ष्म बात है बापु! तु तो संयोग को देखता है। तेरी दृष्टि संयोग के पर है। यह अक्षर कागज में है ऐसे संयोग पर है तेरी दृष्टि। लेकिन अक्षर का पर्याय अक्षर की पर्याय में है, कागज में नहीं है। ऐसे स्वभाव से देख तो स्वभाव का यथार्थ स्वरूप समझ में आये। तु स्वयं को भी स्वभाव से देख तो विभाव का यथार्थ ज्ञान हो। समझ में आया?

उसको शुभराग द्वारा देखना है, शुभराग द्वारा लाभ मानना है। कहाँ अटककर खडा है और मिथ्याश्रद्धा किस प्रकार घोंट रहा है यह मालूम नहीं है, मालूम नहीं है। कहते हैं कि नव पदार्थ कहे, समयसार में इनको नव तत्त्व भी कहा। नव तत्त्व नव रूप है उसके। जैसे नव के नव है वैसे उसको पृथक्-पृथक् ज्ञान में यथार्थपने स्वपरप्रकाश के भान में श्रद्धना, उसका नाम तत्त्वार्थ सम्यग्दर्शन कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

'**प्रश्न :- इनका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कहा; सो दर्शन तो सामान्य अवलोकनमात्र...**' है। शास्त्र में तो एक दर्शन की परिभाषा ऐसी आती है कि देखना-देखना, ऐसे देखना ऐसा आता है। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। '**श्रद्धान प्रतीतिमात्र; इनके एकार्थपना किस प्रकार सम्भव है?**' तो सम्यग्दर्शन को दर्शनपने आपने कहा यह कैसे सम्भव है? दर्शन का अर्थ तो देखना होता है और सम्यग्दर्शन का अर्थ

प्रतीति होता है, तो दोनों का एक भाव कैसे हो गया? ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

'**उत्तर :- प्रकरण के वश से धातु का अर्थ अन्यथा होता है।**' चलते अधिकार की अपेक्षा से जो धातु अर्थात् उसका जो शब्द हो, उसकी मूल धातु उसका अर्थ दूसरा भी होता है। यहाँ मोक्षमार्ग का अधिकार है। यहाँ देखने का अधिकार नहीं है। मोक्षमार्ग--आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो उसका यह अधिकार है। '**उसमें दर्शन शब्द का अर्थ सामान्य अवलोकनमात्र नहीं ग्रहण करना,...**' देखना सामान्य भेद किये बिना ऐसा यहाँ नहीं जानना।

'**क्योंकि चक्षु-अचक्षुदर्शन से सामान्य अवलोकन तो सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि को समान होता है,...**' देखो! ध्यान रखना। चक्षु-अचक्षु द्वारा पर का अवलोकन तो सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि अजीव को भी होता है, वह कोई मोक्षमार्ग नहीं है। '**कुछ इससे मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति-अप्रवृत्ति नहीं होती। तथा श्रद्धान होता है सो सम्यग्दृष्टि ही के होता है,...**' देखो! वह उपयोग, जानने-देखने का उपयोग तो दोनों को होता है। वस्तु को ऐसे देखना, ऐसे देखना नहीं है, वास्तव में अभेद उपयोग है। यह वस्तु ऐसा तो नहीं। परन्तु वह अभेद उपयोग जो देखना कहते हैं वह, और यह श्रद्धा दोनों चीज ही दूसरी है। देखने मात्र से यदि मोक्षमार्ग हो तो देखना तो सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि को, अभवी को भी देखना होता है। परन्तु सम्यग्दृष्टि को जो श्रद्धान होता है वह सम्यग्दृष्टि को ही होता है, मिथ्यादृष्टि को होता नहीं। वह देखना दोनों को होता है। समझ में आया? '**इससे मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति होती है।**' सम्यक् श्रद्धान द्वारा मोक्षमार्ग की छूटने की अन्दर प्रवृत्ति नाम परिणाम होते हैं। देखने मात्र से कोई मोक्षमार्ग की परिणति नहीं होती है। '**इसलिये दर्शन शब्द का अर्थ भी यहाँ...**' देखना नहीं लेना, परन्तु दर्शन का अर्थ यहाँ प्रतीति लेना। समझ में आया?

'**इसलिये दर्शन शब्द का अर्थ भी यहाँ श्रद्धानमात्र ही ग्रहण करना।**' बीच में थोड़ी दर्शन की परिभाषा की। अब मुद्दे की बात आती है, अब फिर से मुद्दे की बात लेते हैं। '**यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान करना कहा, सो प्रयोजन क्या?**' पहले कह गये थे, विपरीत अभिनिवेश। सम्यग्दर्शन का सच्चा लक्षण। ३१७ पन्ने पर शुरुआत की थी। '**विपरिताभिनिवेशरहित जीवादिकतत्त्वार्थश्रद्धान वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है।**' ऐसा पहली पंक्ति में कहा था। सेठी! कहाँ कहा है? कहाँ कहा था? भूल गये। पहले पन्ने पर, उसके पहले। ३१७ पन्ने पर पहली पंक्ति। पहली अर्थात् तीसरे पेरेग्राफ की। '**विपरीताभिनेवेशरहित जीवादिकतत्त्वार्थश्रद्धान वह सम्यग्दर्शन का**

लक्षण है।' पहली पंक्ति ३१७ की। '**सम्यग्दर्शनका सच्चा लक्षण**' बड़े अक्षर में लिखा है उसके बाद, शिर्षक। समझ में आया? अब शिष्य ने यहाँ प्रश्न किया कि विपरीत अभिप्राय रहित। अभिनिवेष अर्थात् अभिप्राय। उसका श्रद्धान करना कहा उसका क्या प्रयोजन? महासिद्धान्त। देखो शिष्य का प्रश्न।

'**उत्तर :– अभिनिवेश नाम अभिप्राय का है।**' अभिनिवेश अर्थात् अभिप्राय है, अभिप्राय अर्थात् आशय का नाम है। '**सो जैसा तत्त्वार्थश्रद्धान का अभिप्राय है...**' जैसा सात तत्त्व का अथवा नव पदार्थ का अभिप्राय है '**वैसे न हो, अन्यथा अभिप्राय हो, उसका नाम विपरिताभिनिवेश है।**' बराबर है? नव तत्त्व जैसे हैं उससे विपरीत अभिप्राय है उसका नाम अभिनिवेश कहने में आता है। विपरित अभिनिवेश– है उससे विपरीत मानता है। जड़ के द्रव्य–गुण–पर्याय जड़ से। जीव के द्रव्य–गुण–पर्याय जीवस्वभाव से। विभाव विभाव के कारण से स्वतंत्र, वह निमित्त कारण से नहीं। विभाव के कारण से संवर–निर्जरा नहीं। ऐसा जो विपरित अभिप्राय रहित जैसा उसका स्वरूप है वैसा वह मानता नहीं। '**अन्यथा अभिप्राय हो, उसका नाम विपरीताभिनिवेश है।**'

अब सात का मेल करतें है, देखो। '**तत्त्वार्थश्रद्धान करने का अभिप्राय केवल उसका निश्चय करना मात्र ही नहीं है;...**' पहले उसमें कहा था उस ओर। '**यदि यहाँ पदार्थ श्रद्धान करने का ही प्रयोजन होता तब तो सामान्य से...**' पदार्थ श्रद्धान करने का ही प्रयोजन नहीं है। ३१८ पृष्ठ पर उत्तर में पहली पंक्ति। समझ में आया? यह तो मुद्दे की रकम की बात है सम्यग्दर्शन और तत्त्वार्थश्रद्धान। इसके बिना उसको नहीं होता चारित्र, नहीं होते उसको व्रत, नहीं होता उसको तप, नहीं होता उसको संयम, इन्द्रियदमन। धूल होती है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि '**तत्त्वार्थश्रद्धान करने का अभिप्राय केवल उसका निश्चय करना मात्र ही नहीं है;...**' देखो! वह प्रतीति कही थी। निर्णय ही करना कि यह है.. यह है.. ऐसा नहीं। '**तत्त्वार्थश्रद्धान करने का अभिप्रया केवल उसका निश्चय करना मात्र ही नहीं है;...**' निश्चय तो करना है, परन्तु केवल उसका निर्णय करना इतना ही नहीं, उसमें दूसरा भेद है। समझ में आया? 'तत्त्वार्थ श्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्' वह उमास्वामी के पहले सूत्र के स्पष्टीकरण के बाद का दूसरा सूत्र है।

देखो! '**तत्त्वार्थश्रद्धान करने का अभिप्राय...**' अभिनिवेश कहा था न? '**केवल उसका निश्चय करना मात्र हीं नहीं है;...**' केवल उसका निश्चय हाँ! निर्णय तो

है, उसके अतिरिक्त दूसरी कुछ बात है, निर्णय के अतिरिक्त दूसरी बात है। केवल निर्णय करने का प्रयोजन नहीं है। परन्तु '**वहाँ अभिप्राय ऐसा है कि जीव-अजीव को पहिचान कर...**' जीव-अजीव को पहिचान कर '**अपने को तथा परको जैसा का तैसा माने,...**' क्या कहा? जीव, अजीव को पहिचानकर अपने को तथा पर को जैसा है वैसा, जैसा है वैसा, जैसा है वैसा स्वयं और जैसा है वैसा पर। जैसा है वैसा मानना। अजीव अजीव के कारण से पर्याय है, ऐसे जैसा है वैसा। आत्मा आत्मा के कारण से उसके अपने पर्याय और द्रव्य-गुण है। ऐसे जैसा है वैसा। समझ में आया कुछ? '**जीव-अजीव को पहिचानकर अपने...**' अर्थात् आत्मा को। '**परको...**' अर्थात् शरीर, वाणी आदि सब जड़ पदार्थों को। '**जैसा का तैसा माने,...**' एक बात आई।

'**आस्रव को पहिचानकर...**' आस्रव। पुण्य और पाप के भाव। दया, दान, भक्ति, पूजा का भाव वह पुण्यास्रव, हिंसा, असत्य, चोरी, विषय पापास्रव। '**आस्रव को पहिचानकर...**' निर्णय तो करना ही है, परन्तु निर्णय के अतिरिक्त हेय मानना।

श्रोता :- उसके अतिरिक्त बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री :- अतिरिक्त हेय माने, आस्रव को हेय मानना यह उसमें प्रयोजन है। आहाहा..! कहो, नेमीदासभाई! आहाहा...! कितनी बात ली है उन्होंने। शास्त्र को सरलता से रखने को कहा है। भाई! केवल सात पदार्थों का यहाँ प्रयोजन नहीं है और उसके निर्णय का केवल प्रयोजन नहीं है, उसके निर्णय में साथ में एक और यह भाग है---हेय-उपादेय करना। पुण्य-पाप के भाव हो उसको मानना वह बराबर है, परन्तु हेय मानना ऐसा विशेषण साथ में है। समझ में आया?

श्रोता :- मुद्दे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बात मुद्दे की बात है। मानना तो बराबर है। उसमें क्या कहा? कि मानना तो जीव-अजीव को बराबर है, परन्तु जैसा है वैसा। दोनों जैसा है वैसा। ऐसे। भिन्न-भिन्न जैसा है वैसा। जीव-अजीव को मानना वह उसका प्रयोजन है। और आस्रव, पुण्य-पाप के भाव होते हैं उसको मानना परन्तु उसके अतिरिक्त उनको हेय मानने का प्रयोजन है। समझ में आया? हेय अर्थात् समझ में आता है? छोड़ने लायक। शुभ-अशुभभाव, पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति परिणाम होते हैं वह भी छोड़ने लायक है। मानने के अतिरिक्त छोड़ने लायक मानना। समझ में आया? वह आदरणीय नहीं है। पहले से उसको आदरणीय माने, उसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं और (माने कि)

हम व्रती हैं, संयमी हैं, पंच महाव्रत पालते हैं। हवा में लिखनेवाला है। मफतलाल की सही। मफतलाल, मुफ्त में सही करनेवाला। मफतलाल हवा में लिखनेवाला। भगवान के आधार से लिखनेवाला नहीं है। समझ में आया? अथवा तत्त्व के स्वभाव से लिखनेवाला अर्थात् ज्ञान होना चाहिये ऐसा नहीं है। जड़ का चोर अपने से माने, हम सात तत्त्व को मानते हैं। बहुत अच्छा। मानता है तो ऐसा है कि जीव और जड़ जैसे अस्तित्व रखते हैं, हयाती रखते हैं, अपने कारण जड़ स्वयं अस्ति रखता है। यह कागज कागज के कारण अस्तित्व रखता है, समझ में आया? वाणी, वाणी के कारण अस्तित्व रखती है। कर्म, कर्म के कारण अस्तित्व रखता है। अस्ति अर्थात् विद्यमानता। यह शरीर, शरीर के कारण अस्तित्व रखता है, उसकी अवस्था भी शरीर के कारण, अजीव के कारण, अस्तित्व रखती है। यह अवस्था होती है वह, आत्मा के कारण नहीं। और आत्मा में जो ज्ञान होता है वह अपने कारण अस्तित्व रखता है। निमित्त जानने में आते हैं इसलिये उनके कारण ज्ञान अस्तित्व रखता है ऐसा नहीं। समझ में आया?

जीव-अजीव जैसे हैं वैसे, जैसे हैं वैसा।'**जैसा का तैसा माने; तथा आस्रव को पहिचान कर उसे हेय माने,...**' पुण्य और पाप, फिर शुभ हो या अशुभ हो, उसमें भेद करना नहीं। क्योंकि वह दोनों तो आस्रव हैं। ओहोहो..! यह जगत को कठिन लगता है। पुण्यभाव हेय! अरे..! लेकिन कुछ तो साधन होगा कि नहीं शुभभाव में? साधन है, बन्ध का, बन्ध का साधन है। वह मोक्षमार्ग का साधन नहीं है। सात तत्त्व, सात तत्त्व की श्रद्धा करे परन्तु वस्तु की तो खबर है नहीं। समझ में आया?

श्रोता :- परंपरा साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- है ही नहीं। परंपरा का अर्थ कुछ नहीं, परंपरा का अर्थ अभी भी नहीं है, बाद में भी नहीं है। बाद में राग को कम करेगा तब स्थिर होगा, ऐसा परंपरा का अर्थ है। समझ में आया?

यहाँ तो आस्रव को पहिचानकर उसको मानना तो बराबर है, परन्तु उसको हेय मानना। देखो! केवल मानना नहीं, परन्तु हेय मानना। कहो, समझ में आया? पुण्य के भाव हो वह छोड़ने लायक है, मुझे उपादेय नहीं, आदरणीय नहीं, हितकर नहीं, लाभदायक नहीं है। तब उसने आस्रव को हेय माना तो माना कहा। आस्रव है और आदरणीय है ऐसा माने तो उसने आस्रव को माना नहीं। समझ में आया?

'**बन्ध को पहिचानकर उसको अहित माने,...**' यहाँ बन्ध जड़ लिया है। आस्रव का फल जो बन्ध है उसको अहित मानना, अहित। लो! बन्ध हो तो ठीक। शुभ का बन्ध तो अच्छा है न? तीर्थंकर गोत्र बान्धे वह अच्छा है न? नहीं? क्यों नेमचदन्जी! तीर्थंकरगोत्र का बन्ध पडे उसको अहित मानना? भाई! षोडशकारण भावना आस्रव है, हेय है। और बन्ध है वह अहित है ऐसा मानना। बहुत कठिन लगे जगत को। तकरार भी इतनी है जगत को। देखो! आस्रव में तो षोडशकारण भावना आती होगी? सम्यग्दृष्टि को भाव होता है न, परन्तु वह आस्रव है।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन छोड़ता है? धूल? छोड़े कौन और रखे कौन? उसकी दशा में आये बिना उस काल में रहेगा नहीं। छोड़े कौन और रखे कौन? मात्र उसकी दृष्टि कहाँ है इतनी बात है। बाकी तो उस काल में उसको वह भाव आये बिना रहेगा नहीं। सम्यग्दृष्टि को शुभ के काल में शुभ आयेगा, मिथ्यादृष्टि को भी शुभ के काल में आयेगा। उसकी मान्यता में क्या अन्तर है उतनी बात यहाँ बताते हैं। आये न आये क्या? छोड़े कौन और रखे कौन? जिस गुण की जिस समय की जो विपरीत पर्याय होने काल है वह हुए बिना रहेगी ही नहीं। परन्तु यह विपरीत पर्याय है ऐसे हेय तरीके जाने उसकी दृष्टि ज्ञायक ऊपर गये बिना रहे नहीं। समझ में आया?

हेय ऐसे ही नहीं, मात्र हेय। छोड़ नहीं सकता है। परन्तु भाव आया वह हेय है, तो उपादेय आत्मज्ञान और ज्ञायकभाव है। केवल आत्मा ज्ञायक उपादेय है अथवा उसकी दशा उपादेय है, संवर-निर्जरा प्रगट करने की अपेक्षा से। ऐसा आता है। छोड़े कौन और रखे कौन? श्रद्धा ... आस्रव छोड़ने योग्य है तो उसकी श्रद्धा छोड़ेगा कि वह आदरणीय नहीं है। आदरणीय ज्ञायकभाव चैतन्य है। समझ में आया? तत्त्वार्थ श्रद्धा में यह बात हेय तरीके माने तो उसके अन्दर आये। देखो।

'**बन्ध को पहिचानकर उसको अहित माने,...**' बन्ध में कुछ अपवाद होगा? कि सर्वार्थसिद्ध का बन्ध पड़े वह ठीक, मनुष्यपने का बन्ध पडे वह ठीक, देव का बन्ध पडे तो ठीक कि जिससे भगवान के पास जा सके, स्वर्ग में जायें तो। तीर्थंकर प्रकृति को पहले लेकर बाद में यह बात कहते हैं। वह प्रकृति बन्ध है, उसका भाव सो आस्रव है। आस्रव हेय है, बन्ध अहित है। क्योंकि वह राग है। राग का फल बन्ध होता है, कहीं धर्म का फल बन्ध नहीं होता। बन्ध हुआ तो समझना कि वह धर्म नहीं है अर्थात् राग है। और राग से भले प्रकृति बँधी उसमें आत्मा को क्या

लाभ? राग का अभाव करके वीतराग होगा तब जो प्रकृति बँधी है तीर्थंकरगोत्र की वह तेरहवें गुणस्थान में उदय आयेगी। आत्मा को क्या लाभ? समझ में आया?

क्या कहा? कि सम्यग्दृष्टि को भी... यह सात तत्त्व श्रद्धान सम्यग्दृष्टि की बात चलती है कि नहीं? किसकी (चलती है)? उसको शुभभाव आयेगा उस जात के बन्ध का, लेकिन उस शुभभाव को हेय जानेगा, हेय मानेगा। समझ में आया? और उसका बन्ध जानेगा कि वह अहित है। क्यों? कि उस बन्ध का फल कुछ आत्मा को मिलता नहीं। वह बन्ध फल तो बाह्य संयोगी चीज मिलेगी जब मिलेगी तब। परन्तु वह कब? कि जब इस राग से बन्ध हुआ, उस राग का अभाव करके चारित्र होकर वीतराग होगा, तब उस बन्ध प्रकृति का पाक आयेगा तेरहवें गुणस्थान में उदय। तब पाक क्या आया? कि समवसरण आदि सामग्री का साधन। उसमें उनके आत्मा को कुछ साघन हुआ नहीं। सेठी! क्या हो उसमें? ऐसा सुने कि तीर्थंकरप्रकृति,... आये, बाँधे, हो, भले हो उसका कहाँ प्रश्न है? लेकिन वह भाव हेय है ऐसी श्रद्धा न करे तो उसकी दृष्टि सम्यक् रहती नहीं। और उसका बन्धपना भी अहित है ऐसा न माने तो उसको हितरूप माना तो उसकी श्रद्धा झूठी होती है, सम्यग्दर्शन उसको रहता नहीं। समझ में आया? केसरीचन्दजी!

अजर प्याला पीओ मतवाला ऐसी बात है यह तो। लोगों को अभी सम्यग्दर्शन तत्त्वार्थश्रद्धान क्या चीज है उसकी खबर नहीं, उसके माहात्म्य की, उसका क्या स्वरूप है उसको पहचानते नहीं और वह कहाँ आगे जायेगा? अंतर वस्तु चिदानन्द का कन्द पड़ा है ऐसी अंतर दृष्टि हुए बिना अंतर में यहाँ झुकने जैसा है, ऐसा निश्चय हुए बिना उसका झुकाव बहार से हटेगा नहीं। समझ में आया?

देखो! कितनी स्पष्टता की है कि '**बन्ध को पहिचानकर...**' बन्ध में कुछ अपवाद तैसा। जैसा है। ऐसे। होगा? कि यह फलाना बन्ध अहितकर नहीं है और यह फलाना शुभ भाव हेय नहीं, शुभ। कोई भेद नहीं है। आहाहा..!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- सबके लिये एक ही नियम होता है।

'**संवर को पहिचानकर...**' देखो! '**संवर को पहिचानकर...**' पर्याय प्रगट करनी है न शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध। पुण्य-पाप के परिणामरहित आत्मा के शुद्ध स्वभाव की एकता होने से जो निर्मलदशा पर्याय अरागी-वीतरागी परिणति हुई उस '**संवर को पहिचानकर उसे उपादेय माने,...**' माने तो सही परन्तु उपादेयरूप माने। वह आदरणीय

है, वह प्रगट करने लायक है ऐसा माने। राग प्रगट करने लायक है ऐसा न माने। आस्रव प्रगट करने लायक है ऐसा न माने। संवर प्रगट करने लायक है ऐसा माने इसलिये उसको उपादेय कहा है। समझ में आया? बड़ी अच्छी बात रखी है सब।

'**संवर को पहिचानकर उसे उपादेय माने,...**' वही शुद्धता आदरणीय है। पुण्य के शुभ परिणाम से रहित भगवान आत्मा पवित्र का पिण्ड है, उसकी एकता होकर निर्मल दशा शुद्धि की हुई वही उपादेय और प्रगट करने लायक है। '**निर्जरा को पहिचानकर उसे हित का कारण माने,...**' देखो! बन्ध से अहित, बन्ध से अहित (है)। वह बन्ध छूटे और अशुद्धता टले और शुद्धता बढ़े ऐसी '**निर्जरा को पहिचानकर उसे हित का कारण माने,...**' निर्जरा को हित का कारण मानना। बन्ध को अहित मानना, उसको अहितरूप ही मानना। उसका कारण तो आस्रव है। बन्ध का कारण तो आस्रव है न? समझ में आया? उसको अहितरूप मानना--बन्ध को।

और निर्जरा को पहिचानकर। निर्जरा कौन-सी? शुद्धता की वृद्धि हो, शुद्धता और निर्विकारी दशा की परिणति अवस्था बढ़े उसको हित का कारण मानना। क्योंकि पूर्ण हित मोक्ष है उसका यह निर्जरा कारण है। बन्ध कारण नहीं है। तीर्थंकर गोत्र का बन्घ हुआ वह मोक्ष का कारण नहीं है। यह निर्जरा हित का कारण है ऐसा यहाँ तो कहा। समझ में आया?

श्रोता :- शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह सब निमित्त के व्यवहार के कथन का पार नहीं है। अभूतार्थ नयके कथन जैसा ही माने तो उसका फल संसार है। समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, वह भी ली है, सब ली है, सब मालूम है न। बहुत सालों से यह सब चलता है।

'**निर्जरा को पहिचानकर उसे हित का कारण माने,...**' क्या कहा? अशुद्धता टले, शुद्धता बढे और बन्ध घट जाये, बन्ध घट जाये। एकदेश बन्ध घटता है न? उसको निर्जरा कहा है न। बन्ध घटे, अशुद्धता टले, शुद्धता बढे उसको पहिचानकर उसको हितका कारण मानना। बन्ध को हित का कारण नहीं मानना कि यह बन्ध पड़ा तो भविष्य में हमें उसका अच्छा फल आयेगा तब मोक्षमार्ग सूझेगा। समझ में आया? देखो! अभी तो नव तत्त्व को श्रद्धने की रीति कहते हैं। आहाहा..! समझ में आया?

'**निर्जरा को पहिचानकर उसे हित का कारण माने,...**' बन्ध को पहिचानकर कि यह अच्छा बन्ध पड़ा, इसलिये हम तीर्थंकर तो होंगे न? उसको लेकर होगा? समझ में आया? अरे..! प्रभु! वह तत्त्व जैसे हैं वैसी उसको समझन न हो तब तक उसकी सच्ची श्रद्धा होती नहीं। और सच्ची श्रद्धा--यथार्थ श्रद्धान बिना सम्यग्दर्शन प्रगट होता नहीं और उसके बिना सच्चा ज्ञान या सच्चा चारित्र या व्रत, नियम हो सकते नहीं। कहो, समझ में आया? यह तो बहुत अच्छी बात आई, सेठ! बराबर आये है यहाँ, दोपहर को और सुबह मुद्दे की बात अभी तो चलती है। पहली सीढ़ी की बात है।

श्रोता :- सच्ची बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- सच्ची बात है, बात तो यह है।

'**निर्जरा को पहिचानकर...**' मुद्दे की बात है यह। अशुद्धता टले। अर्थात् उसमें शुभभाव से लाभ ऐसा नहीं आया। अशुद्धता टले, शुभभाव भी टले वह हित का कारण है। शुद्धता बढे वह हित का कारण है और बन्ध का अंश घटे वह हित का निमित्त कारण है। समझ में आया? अशुद्धता टले वह हिता का कारण। अशुद्धता रहे वह तो हेय है, वह तो हेय है, छोड़ने योग्य है। छूटे इतना हित का कारण जाने। समझ में आया?

'**निर्जरा को पहिचानकर उसे हित का कारण माने,...**' इस तरह। केवल मानना-मानना ऐसा नहीं। '**मोक्ष को पहिचानकर...**' आखरी बोल। '**उसको अपना परमहित माने...**' लो, परमहित। मोक्ष को पहिचानकर हों! पहिचानकर। मोक्ष केवलज्ञान, केवलदर्शन, परमानन्द ओहोहो..! पूर्ण दशा जिसकी, परम आनन्द... आनन्द... पूर्ण.. पूर्ण... अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख, अनन्त चतुष्टय ऐसी पूर्ण शुद्ध दशा को पहिचानकर उसको परमहित मानना, परमहित उसको मानना। कहो, यह हमारा हेतु है, यह हेतु है उन सब पर शून्य लगाते हैं यहाँ तो। रतिभाई! यह सब हेतु होंगे की नहीं? माँ-बाप का बेटे को, बाप को बेटे का। नहीं? नीजी सदस्य तो होंगे कि नहीं कि यह मेरे हितेच्छु है। धूल में भी नहीं है।

श्रोता :- परस्पर।

पूज्य गुरुदेवश्री :- परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। क्या है? दुःख का निमित्त है ऐसा कहा है।

श्रोता :- परमात्मप्रकाश में।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहा है न। इसमें भी आया है न, सब दुःख के निमित्त हैं। सुख उसके आश्रय से तु कहता है लेकिन उसके आश्रय से कुछ सुख होता नहीं। कहो, समझ में आया?

इस प्रकार मोक्ष के स्वरूप को। मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान। ओहो..! पूर्ण दशा। जिसको फिर से अपूर्णता नहीं हो और फिर से अवतार नहीं होता। केवलज्ञान आनन्द दशा जिसमें अपूर्णता नहीं, अशुद्धता नहीं और फिर से अवतार नहीं होता और वह दशा बार-बार वैसी की वैसी प्रगट होती रहे, सादि अनन्त काल। मोक्ष की दशा सादी अनन्त काल प्रगटे उसको परमहित मानना। केवल मानना ऐसा नहीं। परमहित मानना।

'**ऐसा तत्त्वार्थश्रद्धान का अभिप्राय है; उससे उलटे अभिप्राय का नाम विपरीताभिनिवेश है।**' बराबर है? '**सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान होनेपर इसका अभाव होता है।**' सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान होने पर उसका अर्थ विपरीत अभिप्राय का नाश होता है। हमको तत्त्वार्थश्रद्धान हुआ है परन्तु अभिप्राय तो विपरीत रहा है। ऐसा बन सकता नहीं। विपरीत अभिप्राय है और तत्त्वार्थश्रद्धान हो ऐसा बनता नहीं। विपरीत अभिप्राय रहित। उसका अभाव होता है।

'**इसलिये तत्त्वार्थश्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशरहित है – ऐसा यहाँ कहा है।**' लो, उसका उत्तर कहा। विपरीत अभिनिवेशरहित का उत्तर कहा। विपरीत अभिनिवेश क्यों कहा? कि यह जीव है, अजीव है जैसे है वैसे मानना, उससे विपरीत नहीं मानना। मानना पर इससे विपरीत नहीं मानना। आस्रव को हेय मानना, संवर को उपादेय मानना, बन्ध को अहित मानना, निर्जरा को हित का कारण मानना, मोक्ष को परमहित मानना। इस तरह विपरीताभिनिवेषरहित का कारण कहने में आया है।

'**अथवा किसी के आभासमात्र तत्त्वार्थश्रद्धान होता है;...**' अभ्यास तो करे '**परन्तु अभिप्राय में विपरीतपना नहीं छूटता।**' देखो! आशय में तो विपरीत का कण अन्दर रह जाता है कहीं ऊँडे-ऊँडे। कहेंगे थोडा स्पष्ट करेंगे। '**किसी प्रकार से पूर्वोक्त अभिप्राय से अन्यथा अभिप्राय अंतरंग में पाया जाता है।**' किसी प्रकार से पूर्वोक्त। कहा न? आस्रव हेय, बन्ध अहित का कारण, संवर उपादेय, निर्जरा हित का कारण, मोक्ष परमहित और जीव और अजीव जैसे है वैसे उसको मानना। उससे '**किसी प्रकार से पूर्वोक्त अभिप्राय से अन्यथा अभिप्राय अंतरंग में...**' हो तो उसको सम्यग्दर्शन होता नहीं। हेतु यह है। गहराई में कहीं न कहीं उसकी लार विपरीत, यह कहना चाहते हैं उससे विपरीत हो तो सम्यग्दर्शन होता नहीं। दृष्टान्त देते हैं उसका।

'**जैसे – द्रव्यलिंगी मुनि...**' जैन साधु दिगम्बर होता है, नौंवी ग्रैवेयक जाता है, अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बैर ग्रैवेयक उपजायो।' क्यों कहते हैं? उसका दृष्टान्त दिया। क्या कहा? कि अभ्यास तो होता है, ग्यारह अंग पढा था। द्रव्यलिंगी को ग्यारह अंग का अभ्यास था, अरे..! नव पूर्व का था। परन्तु अभिप्रायमें से विपरीतता मिटती नहीं। किसी भी प्रकार से पूर्वोक्त अभिप्राय से अन्यथा अन्दर श्रद्धा, अभिप्राय, आशय रह जाता है।

'**द्रव्यलिंगी मुनि जिनवचनों से तत्त्वों की प्रतीति करे,...**' देखो! जिनवचन से अर्थात् प्रतीति तो ली। जिनवचन से और प्रतीति, दोनों बात ली। जिनवचन से तत्त्वों की प्रतीति तो करता है '**परन्तु शरीराश्रित क्रियाओं में अहंकार...**' वह तो अजीव की पर्याय है जो होती है वह। उसकी जगह यह मैं करता हूँ, मैं हिलता हूँ, पूजा करने में हाथ हिलता है वह मेरे कारण से। ऐसी शरीर की अवस्था में मेरे कारण से होती है ऐसा मिथ्यादृष्टि का अभिप्राय वहाँ रह जाता है। समझ में आया?

'**शरीराश्रित क्रियाओं में अहंकार...**' है। हाथ ऊँचा हो ऐसे, वह मैंने किया। मैं था तो हाथ ऐसा हुआ न? पूजा में अष्ट द्रव्य को स्वाहा करे। दया पालने में हाथ थोड़ा ऊँचा होकर जीव बचाया। देखो, हाथ मेरे से ऊँचा हुआ है। उसकी वर्तमान पर्याय का अस्तित्व जैसा है वैसा उसका उसमें नहीं मानकर के मेरे कारण होता है ऐसा अभिप्राय द्रव्यलिंगी मुनि को जिनवचनों से तत्त्व का श्रद्धान होनेपर अभिप्राय में गहराई में यह विपरीत भाव रह जाता है।

'**तथा पुण्यास्रव में उपादेयपना...**' लो! दो बात ली। आदि, फिर उसके योग्य जो-जो विपरीत भाव हो वह सब। दो तो मुख्य लिये। शरीराश्रित और पुण्यास्रव में उपादेयता। व्रत का पुण्यभाव है, वह पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले, द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि बराबर चोख्खा पाले, तब उसको पुण्यास्रव शुभभाव होता है, उसको उपादेय माने। कहो, जिसको यहाँ हेय कहा उसको वह उपादेय मानता है। उससे लाभ होगा, करते-करते लाभ होगा। वह '**विपरीत अभिप्राय से मिथ्यादृष्टि ही रहता है।**' लो! ऐसा अनन्त बार जैन दिगम्बर साधु होकर महाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुण पाले, उसके लिये बनाया हुआ चौका हो तो प्राण जाये तो भी ले नहीं। ऐसा पालन करे तब उसको पुण्यास्रव होता है। वरना पापास्रव होता है। ऐसे पुण्य के भाव में भी उपादेयपना माने।

'इत्यादि विपरीत अभिप्राय...' आदि में सब लेना। ऊँडे-ऊँडे उसका कुछ पक्ष रह जाये, व्यवहार का पक्ष। यह हो तो ठीक, यह हो तो ठीक, और यह हो तो ही वह अन्दर होता है इत्यादि ऊँडे-ऊँडे अभिप्राय होता है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि रहता है और विपरीत अभिनिवेष का नाश होता नहीं। नाश करता नहीं। नाश नहीं होता अर्थात् अभिप्राय विपरीत रहता है इसलिये नाश नहीं होता है। इसलिये उसको सात तत्त्व का वास्तविक जो हेय-उपादेय, हित-अहित आदि जो कहा, उसको ऐसा मानकर अन्दर अभिप्राय निर्मल करे तो उसको तत्त्वार्थ श्रद्धान हो।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

दि.८-०३-१९६८
अधिकार - ७, प्रवचन नं.-८०४

यह प्रवचन सीडी इफेक्ट (ब्रोकन सीडी)की वजह से आधा है।

... चंपा के वृक्ष के फूल पवन हो उसके ऊपर गिरते हैं न? वह तो कुदरती है। परन्तु लोंगो को ऐसी महिमा है कि कुदरती पाँच चंपा के वृक्ष के फूल पैर पर गिरते हैं। समझ में आया? मेला बहुत होता है। रविवार, रविवार को कुछ लोग आते है। बारह महिने का एक दिवस है, मूझे नहीं मालूम है। बहुत लोग आते हैं। हम तो पहली बार गये थे। लगा कि बात तो सच्ची लगती है यहाँ। भगवान के पास गये थे वह बात सच्ची है, यह लोग यहाँ से गये हैं ऐसा कहा। तो कहीं से तो गये थे कि नहीं?

साक्षात् भगवान के पास जाकर मुनि भावलिंगी दिगम्बर संत थे दो हजार वर्ष पहले संवत् ४९ में। वहाँ जाकर बहुत सुना आठ दिन। वहाँ के चक्रवर्ती थे उसने पूछा कि प्रभु यह कौन हैं? क्योंकि वहाँ तो पाँचसो धनुष का देह, दो हजार हाथ, यह चार हाथ के तीड जैसे लगे। तीड-तीड, तीड समझे? पतंग-पतंग। नरभेरामभाई!

दो हजार हाथ और ये चार हाथ। कितना हुआ?

श्रोता :- पाँचसौ गुना।

पूज्य गुरुदेवश्री :- पाँचसौ गुना। पाँचसो गुना। भगवानकी सभा। अभी वर्तमान में परमात्मा बिराजते हैं। चक्रवर्ती भी वहाँ है। यह दो हजार वर्ष पहले की बात है। वहाँ तो आयुष्य करोड़ पूर्व का है। भगवान तीर्थंकरदेव का करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में ७० लाख क्रोड, ५६ हजार क्रोड़ वर्ष चला जाता है। एक पूर्व में ७० लाख क्या है? कोई बड़ी चीज नहीं है। ये तो आहाहा..! बड़ी लगती है।

श्रोता :- वह तो अनादि-अनंत है, उसमें यह क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री :- अब अनादि से है, उसमें इतनी...

एक पूर्व के अन्दर ७० लाख क्रोड साल और ५६ हजार क्रोड वर्ष एक पूर्व में जाते हैं। ऐसा क्रोड पूर्व का भगवान का आयुष्य वर्तमान में बिराजते हैं उनका है। भगवान की वाणी निकलती है समवसरण में अभी। इन्द्रों जाते हैं। समवसरण में दिव्यध्वनि होती है। वहाँ भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आठ दिन वहाँ रहे, बाद में यहाँ आकर यह बनाया--समयसार, प्रवचनसार। ओहो..! सर्वज्ञ का पंथ तो यह है, वीतराग का मार्ग यह है ऐसा समझे बिना अनन्त काल से अपनी कल्पना से मान रखा है। समयसार, प्रवचनसार आदि में बहुत-बहुत लेख लिखे परन्तु मिथ्यादृष्टि की क्या क़िमत है मालूम नहीं। मिथ्यादृष्टि है,.. अरे..! मिथ्यादृष्टि का पाप निगोद में ले जायेगा। समझ में आया? निगोद एक बटाटा, शक्करकन्द, एक शरीर में अनन्त जीव उसमें चला जायेगा परम्परा। आत्मा क्या चीज है? निर्मल सम्यग्दर्शन क्या है? मिथ्यात्व क्या है उसका विवेक नहीं, उसका परिणाम तो आचार्य महाराज निगोद कहते हैं। क्या करे? उसकी क़िमत नहीं है। मिथ्यात्व कितना पाप है और सम्यग्दर्शन में कितना धर्म है।

तो कहते हैं कि निश्चय का कथन यथार्थ है। देखो! ऐसे जानना। और '**तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता से व्याख्यान है उसे 'ऐसे है नहीं',...**' गोम्मटसार में आया ज्ञानवरणीय से ज्ञान रुका, दर्शनावरणीय से दर्शन रुका ऐसा कथन आया तो व्यवहारनय की मुख्यता से कथन है। समझ में आया? वह कैसे मानना? ओहोहो..!

देखो! घातिकर्म से ज्ञान-दर्शन-आनन्द का घात हुआ। व्यवहार की मुख्यता से कथन है। वस्तु ऐसी नहीं है। कथन की खबर नहीं कि किस नय का कथन है। यहाँ यह लिखा है, यह लिखा है। सब तकरार करते हैं। लिखा है सब, अब सुन तो सही।

किस नय के आश्रय से कथन चलता है उसका तुझे भान नहीं और मान ले कि यह भी सच्चा और वह भी सच्चा। व्यवहारनय का कथन भी सच्चा और निश्चयनय का कथन भी सच्चा। दो सच्चे हो सकते नहीं। कहते हैं। इसलिये ऐसा है नहीं है। आहाहा..! यह बात...। व्यवहारनयय का कथन, परद्रव्य के आश्रय से पर में कुछ होता है, ऐसा जहाँ जहाँ कथन उपदेश चले, उसका अर्थ ऐसा करना कि व्यवहारनय कहती है ऐसा नहीं है। शास्त्र में लिखा है व्यवहारनय से तो ऐसा भी है नहीं। ओहोहो..! कहाँ निवृत्त है वह? सेठी! निवृत्त है नहीं, अभी तक निवृत्त हुआ नहीं। समझने की चीज है। ये तो महेन्द्रभाई निवृत्त हुए, वरना निवृत्ति कहाँ थी? काम ही करते थे, लेना, देना, जाना, जाना।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसा कहते हैं कि जिन्दगीभर तो कुछ करना नहीं है। निवृत्ति नहीं कहते? फुरसद लेना। लो, आप की भाषा में। सब भाषा तुम्हारी आती नहीं। ये तो आप बहुत हिन्दी आये हो तो थोड़ी-थोड़ी हिन्दी होती है। सब हिन्दी नहीं आती हमको। समझ में आया? काम चले साधारण जनको ऐसी हिन्दी है।

क्या कहते हैं? ओहो..! ऐसा नहीं है। वैदराज! क्या कहा? ऐसा है नहीं। रुचता है उनको। समझ में आया? जहाँ-जहाँ व्यवहारनय से कथन चला हो, उसके कारण उसमें प्रभाव पड़ा, उसके कारण से असर आया और कर्म का अनुभाग का प्रभाव जीव में आया, कर्म का अनुभाग तीव्र था तो आत्मा में तीव्र परिणाम विकार का करना पड़ा, हुआ ऐसा नहीं है। ऐसा है ही नहीं। है क्या?

निमित्तादि अपेक्षा निमित्त आदि... समझे? व्यवहार या संयोग। '**निमित्तादि...**' अर्थात् निमित्त और संयोग की '**अपेक्षा से उपचार किया है - ऐसा जानना।**' वह तो उपचार कथन है। यह कथनी में बड़ा विरोध, वर्तमान पण्डित लोग और कितने त्यागी लोगों के साथ यह विरोध है। समझ में आया? क्यों पण्डितजी!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो समझे नहीं। यह बात अनन्त काल से सुनी नहीं। अनन्तकाल। त्यागी अनन्त बार हुआ, मर गया संथारा करके। दो-दो महिने का संथारा। संथारा समझते हो? दो मास--साठ दिन। साठ दिन तक कैसे? जैसे वृक्ष की डाली। अंतर तत्त्व की क्या चीज है उसका भान नहीं। मालूम नहीं। ज्ञानमूति प्रभु ये राग से निराला और राग होता है दया, दान का वह भी पूण्यबन्ध का कारण मेरी पर्याय में मेरे

कारण से होता है, पर के कारण से नहीं। समझ में भेदज्ञान कभी एक समय भी किया नहीं और भेदज्ञान के बिना कभी आत्मा का कल्याण होता नहीं। देखो! व्यवहारनय भेद नहीं कराती है ऐसा कहते हैं। व्यवहारनय तो दो का अभेद कथन करती है। ऐसा नहीं है ऐसा जानना। आहाहा..!

'ऐसे है नहीं' **'निमित्तादिकी अपेक्षा उपचार किया है...'** उपचार-आरोप किया, समझे? चावल का नहीं कहा था? बोरी होती है बोरी चावल की? कहाँ गये हमारे कुंवरजीभाई! चावल की बोरी। चार मन और ढाई सेर। कहा था न एक बार? तोलते हैं। चार मन और ढाई सेर। हमारी दुकान के पास दुकान थी लोटिये व्होरा की। वह बोले। कोली तोलता था, एक कोली था। बड़ा था, दारु बहुत पीता था। चार मन और ढाई सेर। चार मन चाँवल और ढाई सेर तो बारदान है। चावल के साथ बारदान तोलने में आया। उसे निकाल देना चाहिये। चावल खत्म हो जाये तो बारदान की रसोई नहीं बनती। चार मन चावल पकाये, ढाई मन कम पड़े, वह तो चार मन ढाई सेर था।

श्रोता :- उसके पैसे...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो उस वक्त साथ में ऐसा ही होता है, चावल का पैसा देना पड़े। क्या कहते हैं? वह सिंगापुर के चावल आते थे ने इतने बड़े लंबे। हरे पट्टे नही? पाँच-पाँच मन की बारदान। वह बारदान चावल के साथ तोलने में आता है। पैसा देने पड़े, लेकिन उसको खाते नहीं। देवीदासजी! वह आते हैं, चावल आते थे सिंगापुर के। बड़ा पाँच मन का बारदान। बीच में हरा पट्टा (होता था), हरा पट्टा। सिंगापुर के चावल।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, हमने तो सब देखा है न।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हम तो कुल्फा बेचते थे, पहले हमारे यहाँ कुल्फा के चावल खाते थे। कुल्फा-कुल्फा। अब कुल्फा भूल गये। कुंवरजीभाई भी भूल गये होंगे। कुल्फे के चावल आते थे छोटे। ये बांसावड अब होते हैं। समझ में आया? उस समय छोटे और पतले कुल्फा आता था, उसकी बडी बोरी आती थी। वह सब तो उसी में घूस जाये, इसलिये कुछ खबर नहीं होती। समझ में आया? क्या कहते हैं?

व्यवहारनय से कथन किया हो, मुख्यता से हों! व्यवहार की मुख्यता से। देखो

भाई! भगवान के दर्शन हुए तो श्रेणिक राजाने अन्दर नर्क का आयुष्य तोड़ दिया, सम्यग्दर्शन पा लिया, भगवान के समीप पाया। भगवान नहीं होते तो होता नहीं। ऐसा कथन व्यवहार की मुख्यता से कहने में आता है। ऐसा है नहीं। वह तो अपने पुरुषार्थ की क्रिया से सम्यग्दर्शन क्षायिक पाया है। समझ में आया? ऐसे जहाँ-जहाँ...

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- लेकिन करनेवाला कौन? हो गया। अपनी पर्याय का कर्ता, अपने पर्याय का काम आत्मा का है, नहीं कि भगवान से हुआ है। भगवान के समवसरण में तो बहुत सिंह, बाघ, इन्द्रों करोडों आते हैं। वह सब समझते हैं? ऐसे के ऐसे चले जाते हैं समझे बिना। अनन्त काल ऐसा हुआ। क्या कहने में आता है? क्या मर्म है? वह बात पकड़ने में न आवे तो मिथ्यादृष्टि लेकर चला जाये। क्या करे कोई? समझ में आया?

कहते हैं कि जहाँ-जहाँ व्यवहार का कथन चला हो वहाँ, वह निमित्तादि की अपेक्षा से उपचार किया है--ऐसा जानना। '**इसप्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है।**' देखो! प्रश्न किया था न उसने? कि शास्त्र में दो नय का ग्रहण कहा है, ग्रहण करने को कहा है, ग्रहण करने को कहा है। तो तुम कहते हो कि निश्चय को ग्रहण करो और उपादेय की श्रद्धा करके छोड़ दो, व्यवहार की श्रद्धा करके छोड़ दो। निश्चय एक उपादेय, व्यवहार की श्रद्धा है इतना मानो, छोड़ दो, श्रद्धा छोड़ दो कि ऐसी बात नहीं है। हमने तो इतना सुना है कि दो नय का ग्रहण है। धन्नालालजी! ग्रहण का अर्थ? दोनों को अंगीकार करना। नहीं नहीं, ग्रहण का ऐसा अर्थ हुआ -- निश्चय से कहा हो उसको सत्यार्थ मानकर, सच्चा मानना, व्यवहार का कथन मुख्यता से कहा, उपचार से कहा ऐसा जानना। उसको जानने का नाम ग्रहण किया है। आदरना है ऐसा कहने में आया नहीं। जानना और आदरना ये सब क्या होगा? समझ में आया? अनन्त काल में कभी सत्य सुना नहीं। ओहो..! अपूर्व धर्म एक सेकण्ड, एक सेकण्ड का सम्यग्दर्शन जन्म-मरण का अन्त लाये ऐसी बात कभी सुनी नहीं, रुचि नहीं, अन्दर में परिणमी नहीं।

श्रोता :- इसका अर्थ क्या करना निमित्त...?

पूज्य गुरुदेवश्री :- दोनों साथ रहे हैं, दूसरी है। वह तो कहा, दूसरी है। जानना की दूसरी है। आदरने को कहाँ कहा है? उसमें तो यह सिद्धान्त निकला कि पहले व्यवहार और बाद में निश्चय ऐसा नहीं है। वह आत्मसिद्धिमें से निकला। वह तो

वहाँ अगास में कहा था। देखो क्या कहते हैं श्रीमद्?

नय निश्चय एकान्तथी ऐमां नहीं कहेल,
एकान्ते व्यवहार नहीं, बन्ने साथ रहेल।

श्रोता :- दोनों साथ रहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, दोनो साथ.. देखो अपने आयय न? द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा। 'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणि णियमा' द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा। एक साथ निश्चय-व्यवहार ध्यान में आता है। समझ में आया? यहाँ भी ऐसा कहा कि एक साथ दो है। पहले व्यवहार करे बाद में निश्चय होता है ऐसा वस्तु में है नहीं। श्रीमद् स्वयं कहे, उसके अर्थ करनेवाले को समझ में आये नहीं। समझ में आया? वह बोल गये थे थोड़ा, एक जन बोल गया था, बात तो बहुत सूक्ष्म है, यहाँ तो स्थूल चलती है। भाई! श्रीमद् कहते हैं इसका भी तुम्हें पता नहीं।

निश्चय अर्थात् आत्मा का स्वभाव का भान, शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञाता। और उसमें रह नहीं सकता इसलिये दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, पूजा, यात्रा का भाव आता है, उसको जानना उसका नाम व्यवहार। है उसका नाम व्यवहार। आदरणीय उसका नाम व्यवहार ऐसा कहने में आया नहीं। एक साथ दो रहते हैं। निश्चय बिना व्यवहार कैसा और व्यवहार बिना निश्चय केसा? समझ में आया? दो नय का तात्पर्य यह है। व्यवहार बिना निश्चय कैसा? उसका अर्थ व्यवहार से निश्चय है ऐसा नहीं है और निश्चय से व्यवहार है ऐसा भी नहीं। साथ में दो है। स्वरूप का भान भी है और रागादि भी अन्दर शुभ, दया आदि, भक्ति, पूजा का भाव भी है। दो नय साथ में रहती है। क्यों माणेकलालजी! समझ में आया?

'**इस प्रकार जाननेका नाम ही...**' देखो, वज़न दिया है। '**जाननेका नाम ही दो नयों का ग्रहण हैं।**' जानना। दो नय जानना। आदरना एक और जानना दोनों। आदरना एक निश्चय और जानना दोनों। एक नय को न जाने... वह तो पहले आ गया कि व्यवहार को न माने तो एकान्त मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार को आदरणीय माने तो मिथ्यादृष्टि है। धर्म के मूल की उसको खबर नहीं। समझ में आया?

'**तथा दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर ऐसे भी है, ऐसे भी है -- इसप्रकार भ्रमरूप प्रवर्तनसे तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।**' भगवान संतों ने और भगवन ने, तीर्थंकरों ने दो नय का कथन, '**व्याख्यान को समान...**' निश्चय भी समान, व्यवहार भी समान। दो कक्षा। क्या

कहते हैं? समानकक्षी, समकक्षी दो। निश्चयभी नय है और व्यवहार भी नय है। दो समकक्षी है, दोनों का पल्ला समान है। समझ में आया? ऐसा है नहीं। वह कहते हैं कि दोनों का पलड़ा है न। एक में भले माल हो और एक में भले तोला हो। ऐसा दृष्टान्त यहाँ लागु पड़ता नहीं। समझ में आया?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, हो गया। ऐसा है नहीं।

अंतर भगवान आत्मा जिसको शास्त्र में निश्चय सत्य स्वरूप, स्वतंत्र स्वरूप से कथन कहा हो वही सत्यार्थ है। और जहाँ निमितादि पराधीन व्यवहार आदि से उपचार किया हो वह सत्यार्थ नहीं, सच्चा नहीं। दोनों को सच्चा मानना भ्रम है, तेरी मिथ्यादृष्टि है। ओहोहो..! समझ में आया? हाँ कहा था कि नहीं आपने? डालचन्दजी! कोई पत्र आया था न तुम्हारे? भोपाल से आया था। यहाँ भी किसीने आपके नाम से यहाँ विशेष छपा था वह। भावनगर जाकर विशेष छपा था उसका, कि देखो यहाँ भोपाल से आया है और है तो टोडरमलजी का। किसीका नहीं है। आहाहा..!

तो कहते हैं कि निश्चय का कथन चला उसकी भी खबर नहीं। वह भी सच्चा, व्यवहार से कथन किया वह भी सच्चा। '**दोनों नयों के व्याख्यान को समान,...**' समान अर्थात् सरीखे और '**सत्यार्थ जानकर ऐसे भी है, ऐसे भी है – इसप्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो...**' वह तो तेरी भ्रमणा है। व्यवहार तो एक निमित्त का ज्ञान कराने को कहा था। उसमें घूस गया तुम? उससे होता और उससे होता है। पालो संयम, व्रत पालो, उससे कभी कल्याण होगा। मर जायेगा तो भी कल्याण नहीं होगा, सुन न।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- मर जाते हैं, निगोद में जाते हैं क्रम से। समझ में आया?

दृष्टि की खबर नहीं सम्यग्दर्शन की क्या चीज़ है, निश्चय की चीज़ क्या है उसकी प्रतीत की पहिचान, भान नहीं। कहाँ से आया? भवभ्रमण में चौरासी के पंथ में चला जायेगा। एक भव भी घटेगा नहीं। समझ में आया? धर्मचन्दजी!

'**दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।**' '**इसप्रकार भ्रमरुप प्रवर्तन से तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।**' बहुरी प्रश्न। दो नय को ग्रहण करने का अर्थ है कि व्यवहार है ऐसा जानना। निमित्त की अपेक्षा से कथन किया है ऐसा जानना। निश्चय जो यथार्थ वस्तु है उसको जानकर आदरना। समझ में आया?

आदरना तो आत्मा की बात है। पर में निश्चय का कथन है तो वह यथार्थ है और व्यवहार का कथन पर में हो वह उपचार से है, ऐसा पर को भी जानना। समझ में आया? स्व में यहाँ बात करते हैं। सामनेवाले का निश्चय है उसको तो अपने आदरना नहीं है।

श्रोता :- वह तो ज्ञेय है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह ज्ञेय है, ज्ञेय की यथार्थ स्वतंत्र बात का कथन किया हो, उसकी पर्याय, उसका द्रव्य, उसका गुण उससे हुआ वह सत्यार्थ उसका है ऐसा तुझे जानना और व्यवहार से कथन किया हो तो उपचार है, निमित्त की अपेक्षा से कथन किया है ऐसा जानना। समझ में आया?

'**दोनों नयों का...**' समान और सत्यार्थ (नहीं मानना)। व्यवहार भी सच्चा है कि नहीं? नहीं। व्यवहार तो निमित्त की अपेक्षा से कथन करनेवाला है। सच्चा है नहीं। बनारसीदास के समय में वह चर्चा हुई थी। बनारसीदास ने जब निकाला कि व्यवहार की रुचि करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। इतना .. हुआ सामने दूसरे संप्रदाय में। कोई एक नाम था। नाम हमें मालूम है। फिर उसने बाद में बनाया कि नहीं, बनारसीदास कहते हैं कि निश्चय एक आदरणीय है, व्यवहार आदरणीय नहीं, ऐसा नहीं है। दो नय समकक्षी है। बाद में पुस्तक बनाया युक्ति से। समझ में आया? ऐसा है नहीं। अभी भी ऐसा निकाला था थोड़े साल पहले, (संवत) १९९९ साल में। निश्चय, निश्चय वह सत्यार्थ है और व्यवहार सत्यार्थ नहीं। नहीं, दोनों नय समकक्षी है। दोनों पलड़े को समान मानना।

श्रोता :- व्यवहार व्यवहार की जगह तो सच्चा है। ऐसा कथन।

पूज्य गुरुदेवश्री :- व्यवहार सच्चा है मतलब है इतना। आदरणीय है ऐसा किसने कहा? है उसको जानना वह सच्चा।

श्रोता :- यहाँ आदरणीय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ आदरणीय की बात है। सच्चा नहीं है?

श्रोता :- आज भी जोर देते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- अरे..! उसके पास अपने से हुआ।

श्रोता :- क्षायिक समयक्त्व केवली के...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह अपनी पर्याय से हुआ कि पर से हुआ? तो भगवान के पास तो बहुत लोग होते हैं समवसरण में। भगवान के पास समवसरण में तो तिर्यंच,

पशु, देव, करोडों मनुष्य है, सबको क्यों धर्म नहीं होता? भगवान से होता हो तो। अपनी पर्याय से हुआ अपने कारण से पुरुषार्थ से, तब उसको निमित्त कहने में आया। क्या करे? सुना नहीं? मश्करी, मश्करी न? एक साधु हुआ था मश्करी साधु। पार्श्वनाथ भगवान का साधु था। भगवान के समवसरण में गया। गया तो उसको ऐसा था कि मुझे गरणधरपद मिलेगा कि मैं पुराना साधु हूँ, पुराना साधु हूँ। तो मुझे गणधरपद मिलेगा। उसको तो मिला नहीं।

और गौतम ब्राह्मण थे। वेद में बड़े प्रवीण, सारीये, वारीये, धारीये, पारीये। समझ में आया? वेदान्त में धारणा में कोई भूल करे तो वारे कि ऐसा नहीं। इतनी तीक्ष्ण बुद्धि, बहुत उघाड़ मिथ्यात्व था। वह आया। ऐसे भगवान को देखा। आहाहा...! सम्यग्दर्शन (हो गया)। बिना वाणी सुने। किसने किया? भगवान के कारण से हुआ? परन्तु आये बिना रहे कहाँ से? तो प्रश्न हुआ था। ऐसा प्रश्न है धवल में कि गणधर को होनेवाली योग्यता को उस काल में क्यों लाये? पहले क्यों नहीं लाये? इन्द्र पहले क्यों नहीं लाये? इन्द्र है ऊपर शक्रेन्द्र वर्तमान। ३२ हजार विमान का स्वामी नायक। एकावतारी राणी उसकी स्त्री और स्वयं। एक भव करनेवाले हैं। आनेवाला एक मनुष्यभव करके मोक्ष जानेवाले हैं दोनों। पहले स्वर्ग में बिराजते हैं। शक्रेन्द्र और शचि। समझे? क्यों नहीं लाये भगवान के पास पहले? वहाँ है न राजगृही? कौन-सा पर्वत कहलाता है वह? विपुलाचल पर्वत है न? हम लोग गये थे न यात्रा में? उस विपुलाचल पर्वत पर भगवान आये, ६६ दिन तक वाणी बंद रही। दो मास और छह दिन। इन्द्र ने विचार किया कि अरे...! क्यों भगवान की वाणी निकलती नहीं? वह तो केवली है। उनको तो किसीने कहा नहीं कि महाराज! वाणी करो। वह तो केवली वीतराग है। एक समय में तीन काल तीन लोक जान ते हैं। क्या हुआ? भगवान को केवलज्ञान हुआ, वाणी नहीं निकली। उपयोग रखा अविधाज्ञान का। कोई पात्र जीव नहीं दिखता है इसलिये वाणी नहीं निकलती है। वह निमित्त से कथन है।

गणधर को लाये, गौतम को लाये। जहाँ आये, सम्यग्दर्शन हुआ। चार ज्ञान, चौद पूर्व, एक अन्तर्मुहूर्त में रचे। वह मश्करी साधु बाहर निकला, मैं पुराना साधु हूँ, मुझे गणधरपद नहीं दिया, उसको गणधरपद मिला, नक्की वह सर्वज्ञ नहीं है। जाओ उडाओ। क्या करे अपनी वृत्ति को पोषण नहीं मिला, तो सर्वज्ञ नहीं। वह सर्वज्ञ नहीं। अरे..! सुन तो सही, तुम उस पदवी के लायक हो तो गणधरपद मिले बिना रहे नहीं। उसकी पात्रता थी। भले अन्यमति था, परन्तु उसकी योग्यता ऐसी थी। ऐसे जहाँ देखा! ओहोहो..!

उसका बाह्य वैभव तो किसी इन्द्र के पास नहीं है। इतना तो बाह्य वैभव समवसरण का। अन्दर का वैभव देखे तो बिंब स्थिर हो गये हैं ये तो। स्थिर बिंब परमात्मा भगवान को देखा। विपुलाचल पर्वत, राजगृही नगरी में इस तरफ पहला पर्वत है वह। है न इस तरफ? हम गये हैं न, सब जगह गये हैं न? सब देखा है। वहाँ रहे थे। समझ में आया? वाणी निकली। चौदह पूर्व और बारह अंग की रचना अन्तर्मुहूर्त में गौतम ने की। वह मश्करी (साधु) न कर सका। मिथ्यादृष्टि बाहर आकर (बोलने लगा), अन्दर तो बोल सके नहीं। अन्दर तो इतनी कोमलता होती है न? भगवान का अतिशय है, भगवान पूर्ण स्वरूप। बाहर निकलकर के बोलने लगा, यह भगवान सर्वज्ञ नहीं लगते। क्यों? तेरी वृत्ति को ठीक नहीं पड़ा इसलिये? सेठी! सुना है कि नहीं? वह मश्कीर साधु पार्श्वनाथ भगवान का था। तेईसवें तीर्थंकर में पुराना था। वह कहे मैं पुराना हूँ तो मुझे गणधर पद मिलेगा। नहीं मिला। गौतम को मिला। वह केवली नहीं लगते। तेरे घर में तुझे रुचा नहीं इसलिये केवली नहीं हैं? ऐसा अनादिकाल से अज्ञानी ने अपना स्वच्छन्द छोड़ा नहीं। समझ में आया?

श्रोता :- देशनालब्धि...

पूज्य गुरुदेवश्री :- देशनालब्धि पूर्वे हो गई होगी। हुए बिना हो नहीं। वह तो गणधर होने की लायकात है न। समझ में आया?

'**दोनों नयों का व्याख्यान समान सत्यार्थ जानकर ऐसे भी है, ऐसे भी है...**' तो '**व्यवहारनय असत्यार्थ है...**' अब शिष्य का प्रश्न। व्यवहार-निश्चय का कथन शास्त्र में चले वह यदि जूठा है '**तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया?**' तो वीतराग की वाणी और मुनिओं के मुखमें से व्यवहार का उपदेश क्यों आया? आप तो कहते हो कि व्यवहार असत्यार्थ है। तो उपदेश क्यों आया शास्त्र के मुख में? वीतराग की वाणी में? शिष्य ने प्रश्न किया है। प्रश्न बराबर है। ऐसी रचना की है न स्वयं ने।

'**तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया? एक निश्चयनयही का निरूपण करना था।**' सच्ची बात आत्मा आत्मा की पर्याय अपने से है, अपने से धर्म, अपने से अधर्म, पर पर के कारण से, ऐसा निश्चय का ही कथन करना था। व्यवहार असत्यार्थ है तो व्यवहार का कथन क्यों किया? जिनमार्ग में इसका कथन किया तो भ्रमणा हो गई हमको। समझ में आया? दो नय में भरमाया, तो नय से भ्रमित हुआ है? तेरी दृष्टि से भ्रमित हुआ है। दोनों नय से भ्रमित होता हो तो ज्ञानी को दो नय

की भ्रमणा होती नहीं। निश्चय को निश्चय जानकर आदर करते हैं, व्यवहार को व्यवहार जानकर जानते हैं। भ्रमणा होती नहीं।

उसका उत्तर। '**समाधान :- ऐसा ही तर्क समयसार में किया है। वहाँ यह उत्तर दिया है।**'

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदु।
वह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं।।८।।

गाथा ८ वीं। समयसार की गाथा ८वीं। दृष्टान्त देकर वह बात प्रसिद्ध करते हैं। सुन!

'**अर्थ :- जिस प्रकार अनार्य अर्थात् मलेच्छको म्लेच्छभाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है;...**' समझ में आया? म्लेच्छ हो उसकी भाषा में उसको समझाना पड़ता है न? एक परदेसी आया परदेसी। दृष्टान्त। उसको कपड़ा चाहिये था। ... करने बैठा हो वहाँ और सामने एक कपडा पडा हो। ऐसे बोला, मोहत्तु लाना। मैला कपडा क्या कहते हैं? मसोतुं समझते हैं? रसोई के समय हाथ बिगडते हैं, कपड़ा मैला होता है उसको मसोतुं कहते हैं। हाथ मैला हो, तवा काला हो, ऐसा होता है न काला कपडा?

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, परन्तु मैला कपडा कहे तो वह नहीं समझता कि यह क्या कहता है? उसको कहना हो कि मैला कपडा, तो उसका अर्थ करना पडे। साहब! हाथ खराब होते हैं तो एक कपडा साफ करने को रखते हैं तो उसको मसोतु कहते हैं। लम्बी-लम्बी बात कहो तब समझे। और अपने यहाँ आठ साल का बच्चा हो तो समझे कि मैला कपडा लाना। समझ में आया? वैसे म्लेच्छ को यह भाषा समझ में न आये तो उसकी भाषा में समझाते हैं।

'**म्लेच्छभाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है;...**' कहा था न एक बार? यहाँ परदेसी था। कोई पालिताणा में था न, जब दरबार गुजर गये, मानसिंहजी। तब बहादुरसिंहजी तब छोटे थे। तो एक परदेसी था कोई उसके मेनेजमेन्ट।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, मेनेजर था। वह बराबर आया था, गारियाधार। गारियाधार उसका बडा है न? सब बोले बाजरा.. बाजरा.. बाजरा.. वह भी बोलने लगा भाषा की खबर नही थी इसलिये। क्या कहा? बा...ज...रा कि...त...ना ऐसे। बा...ज...रा..

तीनों अक्षर को तोड दिये। अपने यहाँ तो इतना लड़का हो तो कहे, बाजरा। बाजरी कहते है कि नहीं? वह कहे, बा..ज..रा... कि...त..ना पका है? कुछ हिन्दी आ जाये, कुछ गुजराती आये। उसकी भाषा नहीं। उसकी अंग्रेजी है न।

ऐसे यहाँ कहते हैं कि व्यवहार से समझाने में आता है। व्यवहार बिना समझाया जाता नहीं। '**व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है; इसलिये व्यवहार का उपदेश है।**' लो! उपदेश में करना क्या? उसको समझाना हो तो क्या समझावे? आत्मा ज्ञान है, दर्शन है, आनन्द है। तो क्या आत्मा में भेद है? आत्मा तो अखण्ड वस्तु है। उसमें गुण को अलग करके बताना कि देखो भाई, यह जानता है वह आत्मा। श्रद्धा करता है वह आत्मा, स्थिर रहता है वह आत्मा। कहीं रुकता है वह आत्मा है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा। वह तो भेद करके बताया। आत्मा तीन रूप नहीं है। आत्मा तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र का एकरूप है। परन्तु तीनों का भेद किये बिना निश्चय समझाने में आता नहीं। आहाहा..! समझ में आया?

कहो, '**इसलिये व्यवहार का उपदेश है। तथा इसी सूत्रकी व्याख्या में ऐसा कहा है कि...**' देखो! वह ८वीं गाथा में कहा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने। '**व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्यं**' व्यवहार से कथन करने में आता है कि आत्मा शरीरवाला है, आत्मा वाणीवाला है, आत्मा भेदवाला है, ऐसा कथन करने में आता है उसको समझाने को। परन्तु व्यवहारनय अंगीकार करना नहीं। कहाँ गये देवीलालजी? सुननेवाले को भी व्यवहारनय अंगीकार नहीं करना ऐसा कहते हैं। समझ में आया? रात्री को प्रश्न था न तुम्हारा कि ऐसा ऐसा। परन्तु वह व्यवहार से समझाये। परन्तु उसको समझानेवाले को व्यवहार का अनुसरण नहीं करना, समझनेवाले को भी व्यवहार का अनुसरण नहीं करना।

श्रोता :- परमार्थ को पकडने...

पूज्य गुरुदेवश्री :- परमार्थ पकडने को व्यवहार से कथन है। व्यवहार में अटक जाने के लिये व्यवहार का कथन नहीं है। भाई! तेरी चीज़ ज्ञातादृष्टा है, ज्ञान प्रकाशमय है। तो क्या केवल ज्ञानमय आत्मा है? आत्मा में तो अनन्त गुण हैं, अनन्त गुण हैं। लेकिन क्या करे? भेद किये बिना समझाया जाता नहीं। परन्तु भेद को अंगीकार करना नहीं। यह बात कठीन लगे। कभी सुनी नहीं हो। यहाँ तो ये दया पाली, व्रत पाले, ये उपवास किये। जाओ जिन्दगी, जिन्दगी खतम।

यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार अनुसरने योग्य नहीं है। '**इस निश्चय को अंगीकार**

करने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं;....' निश्चय का भान कराने के लिये व्यवहार का उपदेश है। व्यवहार आदरणीय नहीं है। समझ में आया? तेरा आत्मा शरीर से भिन्न है। यह शरीरवाला (कहते हैं न)? गाय का जीव, मनुष्य का जीव। तो गाय का जीव है? जीव तो जीव का है। मनुष्य का जीव, पर्याप्त जीव, अपर्याप्त जीव, काला, काली गाय का जीव, गोरी गाय का जीव। काली गाय का जीव है? जीव तो जीव है। परन्तु उसमें से समझाने को, जीव को समझाने से शरीर की अपेक्षा से समझाया है। परन्तु शरीर की अपेक्षा लेकर अन्दर समझने में आता है ऐसा नहीं। व्यवहार से समझाया कि यह तेरा आत्मा है। उसको व्यवहार अंगीकार नहीं करना, निश्चय को अंगीकार करना। वह उपदेश व्यवहार का निश्चय अंगीकार करने को दिया है। व्यवहार को अंगीकार करने को दिया नहीं।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

दि.१२-०३-१९६७
अधिकार - ७, प्रवचन नं.-८०५

यह एक मोक्षमार्ग प्रकाशक, टोडरमलजी कृत है। आज उसका मन्दिर में कलश चढाया तो यह निश्चय-व्यवहाराभास का यहाँ शास्त्र में कलशरूप है। हम तो पहले से कहते हैं। आज कलश का दिन है। परन्तु आज निश्चय-व्यवहाराभास की जो कथनशैली उसमे ली है वह, पूरे जैनशासन के सिर पर मन्दिर में कलश है। हम तो बहुत बार कहते थे वहाँ सोनगढ भी। यह अध्याय (संवत) १९८४ की साल से शुरु हुआ था, लिख लिया था। उसमें मूलमार्ग क्या है देखो।

'**सो मोक्षमार्ग दो नहीं है,...**' यहाँ से ऊपर कहा है। टोडरमलजी, समयसार का सार निकालकर अथवा सारा शास्त्र का सार निकालकर मोक्षमार्ग दो मानते हैं वह है नहीं ऐसा यहाँ शास्त्र का आधार देकर सिद्ध करते हैं। '**सो मोक्षमार्ग दो नहीं है, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है।**' कथन का दो प्रकार है। वास्तविक

मोक्षमार्ग तो एक ही है। परन्तु कथन का दो प्रकार चलता है। आधार देंगे।

'**जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपित किया जाय...**' व्यवहार अभूतार्थ है। गाथा (का आधार) देते हैं, ११वीं गाथा समयसार की। भगवान आत्मा एक समय में स्वभाव शुद्ध स्वभाव का सागर पड़ा है ध्रुव। एक समय में ध्रुव सामान्य, अभेद उसका आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वआश्रय से उत्पन्न होता है उसका नाम सच्चा मोक्षमार्ग कहने में आता है। समझ में आया? ११वीं गाथा का आधार लेकर उसने वह सिद्ध किया है कि व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्षमार्ग दो नहीं है। मोक्षमार्ग तो एक ही है, परन्तु उसका कथन दो प्रकार से चलता है। क्या कहते हैं देखो!

'**सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपित किया जाये सो 'निश्चय मोक्षमार्ग' है।**' यह टोडरमलजी का शब्द है। महा अपूर्व शास्त्र का सार निकाला है। '**और जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है...**' अपना शुद्ध स्वभाव अनाकुल आनन्द मूर्ति, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति नाम चारित्र जो प्रगट हुआ वही एक मोक्षमार्ग है। परन्तु साथ में राग की मन्दता देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प राग, पंच महाव्रत आदि अथवा श्रावक को बारह व्रत आदि का विकल्प का राग और शास्त्र के सन्मुख पढ़ने का विकल्प, वह व्यवहार वहाँ कषाय की मन्दता को व्यवहार से अनुकूल देखकर उसको निमित्त से मोक्षमार्ग व्यवहार से कहने में आया है। है नहीं उसको कहना उसका नाम व्यवहार है। है नहीं उसको कहना उसका नाम व्यवहार है। है उसको यथार्थ जानना, मानना, अनुभवना उसका नाम निश्चय और सत्य है।

तो कहते हैं कि मोक्षमार्ग का निमित्त... भगवान आत्मा अंतर में आनन्दकन्द ध्रुव स्वभाव, सामान्य स्वभाव, अभेद स्वभाव 'भूदत्थमस्तिदो खलु' भूतार्थ विद्यमान पदार्थ जिसमें से एक समय की पर्याय जिसमें से होती है। पर्याय में से पर्याय नहीं होती, राग में से नहीं होती। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय द्रव्यमें से होती है। समझ में आया? एक समय में द्रव्य अनन्त-अनन्त सिद्ध की पर्याय का समूह ऐसा अपने आत्मा में द्रव्यस्वभाव भरा है। समझ में आया?

सिद्ध एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य ऐसी- ऐसी अनन्त पर्याय जब से प्रगट होती है तब से अनन्त काल रहती है। ऐसी अनन्ती सिद्ध की पर्याय का काल का समूह लो तो यह सब पर्याय आत्मा की शक्ति में सब पड़ी है, अभी पड़ी है। ऐसा एक समय का द्रव्यस्वभाव भगवान स्वभाव,

पूर्णानन्द स्वभाव, उसके आश्रय से.. क्योंकि '**भूदत्थो देसिदो**' वह भूतार्थ वस्तु है, विद्यमान वस्तु है, कायम टिकनेवाली वस्तु है। उसको आचार्य महाराज निश्चय कहते हैं। टोडरमल उसको कहते हैं कि उसका नाम निश्चय मोक्षमार्ग है। समझ में आया? अपना ध्रुव स्वभाव भगवानस्वरूप चैतन्यमूर्ति, मोक्ष और बन्ध तो एक समय की पर्याय है। क्या कहा?

बन्ध वह, आत्मस्वरूप पुरुष आत्मा उसमें बन्ध जो भावबन्ध है एक समय की युक्ति, भावबन्ध एक समय की पर्याय है। मोक्ष भी एक समय की पर्याय है। आहाहा..! मोक्ष कोई त्रिकाली वस्तु नहीं है। त्रिकाली वस्तु तो आत्मा द्रव्य और उसकी शक्तियाँ जो अनादिअनन्त है वह त्रिकाल है। मोक्ष नाम परमात्मदशा एक समय की अवस्था है और संसार भी एक समय की अवस्था है। मोक्ष एक समय की अवस्था है। दूसरे समय भले रहे, परन्तु एक समय ही पर्याय रहती है। सिद्ध की पर्याय भी द्रव्य में एक समय ही रहती है। दूसरे समय में वह रहती नहीं। दूसरे समय में ऐसी ही परन्तु अन्य होती है। ऐसा सिद्धपद और भावबन्ध एक समय की अवस्था है, उसके सिवा कायम त्रिकाल रहनेवाला भगवान... सूक्ष्म बात है प्रभु! नित्यानन्द, सच्चिदानन्द सत् शाश्वत ज्ञान और आनन्द का भण्डार, उसका अंतर आश्रय करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्रव्यस्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है। पर्याय का आश्रय करने से नहीं होता। क्योंकि पर्याय में पर्याय नई उत्पन्न होने की ताकात नहीं है। राग में भी विकल्प में नयी निर्मल अवस्था प्रगट करने की राग में भी ताकत नहीं। क्षायिक समकित हुआ हो, द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा उसके आश्रय से क्षायिक समकित हुआ हो, क्षायिक समकित के आश्रय से भी नयी पर्याय उत्पन्न होती नहीं। समझ में आया? नयी पर्याय उत्पन्न शान्ति की, आनन्द की, मोक्षमार्ग की, चारित्र की वृद्धि की शुद्धि की जो पर्याय उत्पन्न होती है वह अंतर द्रव्य के स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न होती है। आहाहा..! ऐसा द्रव्य का स्वभाव का आश्रय उसने अनन्त काल में एक समय भी किया नहीं।

तो कहते हैं, मोक्षमार्ग दो नहीं। भगवान आत्मा, जिसमें मोक्षपर्याय अनन्त पड़ी है ऐसा मोक्षस्वभाव भगवान आत्मा, उसके अवलम्बन से जो निश्चय हुआ वह सत्य है। और '**निमित्त है व सहचारी है उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाये...**' राग की मन्दता, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत आदि का विकल्प, शास्त्र का पढना आदि का परालम्बी ज्ञान, उसको निमित्त देखकर मोक्षमार्ग कहा है। है नहीं उसको कहते है उसका नाम व्यवहार है। व्यवहार मोक्षमार्ग। क्यों? अब महासिद्धान्त

कहते हैं।

'**निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है।**' इस एक टूकड़ेने तो बेहद कर दिया है। क्यों? यह टोडरमलजी की लिखावट है। समयसार के अनुसार, अनन्त ज्ञानी के अनुसार कथन है। समझ में आया? टोडरमलजी तो टोडरमलजी हजारों शास्त्र का निचोड़ करके मोक्षमार्गप्रकाशक बनाया है। जगत को न बेसे अपनी कल्पना से उससे कोई सत्य, असत्य हो जाता नहीं और असत्य हो वह कभी सत्य हो जाता नहीं। भगवान आत्मा एक समय में.. समझ में आया? यह एक शब्द है आज, निश्चय सत्य है और व्यवहार राग की मन्दता देखकर, निमित्त से सहचर देखकर उपचार से कहा है। वह वास्तविक मोक्षमार्ग है नहीं।

'**निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है।**' यह एक टूकडा महासिद्धान्त है। ऐसा ही '**निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र...**' क्या कहते हैं? क्या चलता है? समझ में आया? निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा लक्षण में तो कितना भर दिया है कि कारण भी एक ही है यथार्थ में। निमित्त को, राग की मन्दता आदि को देखकर निमित्त को कारण व्यवहार से कहने में आया है। साधन भी एक है। साधन का कथन दो प्रकार का है। मोक्षमार्ग जैसे कारण, कारण का जैसे दो प्रकार का कथन है। है एक ही यथार्थ। दो प्रकार का कथन निमित्त को देखकर कहा। ऐसे साधन भी एक ही है। अपना शुद्ध आनन्दस्वभाव अंतर का। क्योंकि आत्मा में करण नाम का गुण--शक्ति अनादि अनन्त पड़ी है। वह करण नाम साधन है। अंतर के साधन के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति प्रगट हो वही एक साधन यथार्थ है। परन्तु साधन का निरूपण दो प्रकार का है। बीच में राग की मन्दता को देखकर उसको साधन व्यवहार से कहने में आया। है नहीं उसको कहना उसका नाम व्यवहार है।

ऐसे दर्शन भी दो प्रकार का नहीं है, सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का है। यह आया न दो प्रकार का मोक्षमार्ग? सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का है। सम्यग्दर्शन दो प्रकार का नहीं। सम्यग्दर्शन का कथन दो प्रकार का है। वास्तविक एक ही सम्यग्दर्शन है। चिदानन्द आत्मा, राग का लक्ष्य छोड़कर वर्तमान एक समय की पर्याय का आश्रय, लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली भगवान आत्मा का लक्ष्य नाम आश्रय करके मात्र आनन्दकंद में घूसकर निर्णय अंतर में निर्विकल्प अनुभव होना, उसमें प्रतीत होना वह एक ही निश्चयसम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन एक ही है, दो सम्यग्दर्शन है नहीं।

वर्तमान में बहुत तकरार चलती है कि एक व्यवहार मोक्षमार्ग है चौथे, पाँचवे,

छठवें में और निश्चयमोक्षमार्ग आँठवे से चलता है। ऐसा है नहीं। ऐसा है नहीं तीन काल तीन लोक में। सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा ऐसा ११वीं गाथा में कुन्दकुन्दचार्य ने कहा। वह यहाँ टोडरमलजी आधार देते हैं। 'ववहारोऽभूदत्थो' यह कहते हैं, दो मार्ग नहीं है उसका आधार देते हैं। 'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' व्यवहार कारण--साधन समिति, गुप्ति, व्रत जितना व्यवहार है सब अभूतार्थ है, वास्तविक है नहीं। 'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' भूतार्थ भगवान आत्मा त्रिकाल स्वच्छ वही शुद्धनय। उसको नय कहो या भूतार्थ कहो या द्रव्यस्वभाव कहो। नय और नय का विषय अध्यात्म में भिन्न होते नहीं। समझ में आया?

भगवान! यह तो अंतर की बात है, भैया! उसने कभी सुना नहीं। अंतर के प्रीति से कभी अंतर की बात सुनी नहीं। आदत तो कहाँ-से हो? अनुभव तो कहाँ-से हो? अनादि काल का अज्ञानी का अनुभव राग की मन्दता करके हम धर्म करते हैं ऐसा मानकर अनादि काल से चला आता है।

यहाँ स्वयं कहते हैं, व्यवहार, सत्य स्वरूप निरुपण नहीं करता। आचार्य ने लिखा है कि नहीं? आचार्य का कथन है कि नहीं? यह जूठा है? ऐसा कहते हैं लोग। भगवान! सुन तो सही प्रभु! निमित्त से कथन आता है। व्यवहारनय का कथन निमित्त से आता है। यहाँ अपने गाथा भी वह चलती है हाँ! कर्ता-कर्म की। कर्ता-कर्म में भी वही चलता है। आज तो यहाँ लिया थोड़ा।

७२ वी गाथा में भी यही लिया है कि 'भगवान आत्मा' ऐसा शब्द पड़ा है ७२ में--भगवान आत्मा! जैसे जल में सेवाल है, जल में जैसे काई है वह मैलपने का अनुभव जल को कराता है। ऐसे भगवान आत्मा, उसमें शुभ और अशुभ राग है। आहाहा..! चाहे सो पंच महाव्रत का राग हो, चाहे सो दया, दान का राग हो, चाहे सो पर भक्ति का राग हो, आचार्य भगवान कहते हैं, जल में काई, ऐसे भगवान आत्मा में वह राग अशुचि है। आहाहा..! समझ में आया? अशुचि है, अपवित्र है ऐसा शब्द पड़ा है। देखो! इसलिये अशुचि है, अपवित्र है। कहो, राग की मन्दता, जिसको व्यवहारमोक्षमार्ग का निमित्त देखकर आरोप दिया, वह अशुचि है। आहाहा..! समझ में आया?

भाई! तेरी स्वालम्बी चीज़ क्या है उसका कभी उसने पत्ता लिया नहीं। परालम्बी में ऐसे मोक्ष होगा, ऐसे मोक्ष होगा। पर के आश्रय से मुझे संवर निर्जरा होगी और भव का नाश होगा ऐसा मानकर अनन्त भव चले गये, भगवान! अनन्त भव चले

गये। यह भव भी ऐसी दृष्टि किये बिना जायेगा तो उसका कुछ लाभ होगा नहीं। लाख क्रियाकाण्ड बाहर की करे, समझ में आया? परन्तु अन्तर का स्वभाव अनुभव आनन्द से स्पर्श किये बिना जन्म-मरण का अंत कभी उसका आता नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं, किसी अपेक्षा उपचार से... निरूपण व्यवहार की अपेक्षा दो प्रकार मोक्षमार्ग जानना, कथन की अपेक्षा से। बाकी व्यवहार और निश्चय का सर्वत्र लक्षण में बहुत बात कर दी है। समिति भी दो प्रकार की नहीं। व्यवहार और निश्चय ऐसा कथन है। निश्चय समिति स्वरूप में सम्यक् प्रकार से प्रवर्तन अन्दर आनन्द में करना, उसका नाम सच्ची समिति है और पर को न दुःख देकर ऐसा विकल्प करके जो समिति व्यवहार कहते हैं, वह व्यवहार समिति है नहीं, है राग, उसको व्यवहार समिति कहना वह उपचार से कथन करने में आया है। आहाहा..! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, '**निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है।**' सम्यग्दर्शन भी एक ही प्रकार, सम्यग्ज्ञान भी एक ही प्रकार, शास्त्र का पढना आदि ज्ञान, यथार्थ में नहीं। आहाहा..! क्योंकि जिस में पर का अवलम्बन होता है ऐसा ज्ञान वह परालम्बी परसत्तावलम्बी ज्ञान है। सम्यग्दृष्टि परसत्तावलम्बी ज्ञान को परमार्थ मोक्षमार्ग कहते नहीं। यह परमार्थ वचनिका में बनारसीदास ने लिखा है। बनारसीदास ने 'परमार्थ वचनिका' लिखी है उसमें कहा है। सम्यग्दृष्टि जीव, शास्त्रादि का परसत्तावलम्बी ज्ञान, उसको परमार्थ से मोक्ष का मार्ग कहते नहीं, क्योंकि वह परावलम्बी बात है।

अपना आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु! आहाहा..! यह भव अनन्त भव का अभाव करने का कारण सम्यग्दर्शन प्रगट करे तो होता है। भव, भव बढाने के लिये यह भव नहीं है, प्रभु! यह भव, भव का अभाव करने के कारण में निमित्त है। वह कब होगा? भगवान आत्मा! आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्दर्शन पाती है। मेंढक भी सम्यग्दर्शन पाता है। मेंढक कहते है न? मेंढक... मेंढक। इतना शरीर। शरीर इतना हो तो क्या है? तो क्या आत्मा शरीर हो जाता है? समझ में आया? सोने की हजार ईंट हो, सोने की ईंट, और ऊपर से जीर्ण कपड़ा, मोटा कपड़ा, स्थूल कपड़ा, पतला कपड़ा, रंगवाला हो, उसको ऊपर लपेट दे तो क्या सोने की ईंट कपड़ारूप हो जाती है?

ऐसे भगवान आत्मा, ऊपर चमड़े का लपेटे, कोई पुरुष का लपेट है, कोई स्त्री का है, कोई नपुंसक-हीजड़े का है, कोई पशु का है, कोई स्वर्ग का है। ऊपर तो चमड़े का लपेट है। भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा वह पररूप कभी होता

नहीं। समझ में आया? सोने की ईंट कपड़ा के ऊपर लपेटे तो कुछ कपड़ेरूप होती नहीं। ऐसे भगवान आत्मा देह में बिराजमान ज्ञानसागर भगवान, ज्ञानसागर, केवलज्ञान जिसमें से पके ऐसा ज्ञानसागर ऐसा आत्मा, शरीर का एक रजकणरूप कभी तीन काल में हुआ नहीं। रजकणरूप तो हुआ नहीं, परन्तु प्रशस्त रागरूप भी हुआ नहीं। आहाहा..! क्योंकि वह आस्रवतत्त्व है, अशुचि है, मेल है। भगवान आत्मा अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं हाँ! देखो, वह। भगवान आत्मा ऐसे यहाँ कहा। आत्मा को भगवान कहकर ही बुलाया है प्रभु! समझ में आया? क्यों? कि सर्वज्ञ परमात्माने, त्रिलोकनाथ वीतराग देवने इसमें तीन तत्त्व देखे।

शरीर अजीव, कर्म को अजीव देखा। शरीर और वाणी को अजीव देखा भगवान ने। पुण्य और पाप को भगवान ने आस्रव देखा और आस्रव से भिन्न भगवान आत्मा आनन्दकन्द को आत्मा देखा। समझ में आया? संवर, निर्जरा बाद में, मोक्ष बाद में, वह तो तीन निर्मल पर्याय है। शरीर, कर्म, वाणी अजीव भगवान ने देखा कि अजीव है, जड़ है। और पुण्य, पाप भी वास्वत में तो... ७२ गाथा में आयेगा। शुभ राग निश्चय से तो जड़ है। क्या? क्योंकि शुभराग.. वह ७२ गाथा में आयेगा। उसको निमित्तरूप से मोक्षमार्ग कहना जड़ को, उपचार से है, वास्तविक है नहीं। आहाहा..! शुभोपयोग। रागकी मन्दता का शुभोपयोग जिसको भगवान अमृत चन्द्राचार्य कहते हैं, चैतन्य से विपरीत जड़ है। जड़ का अर्थ क्या? रजकण नहीं। रंग, गंध, रस, स्पर्श नहीं। परन्तु उस राग में चैतन्य की शक्ति जानने की नहीं। चैतन्य भगवान आत्मा उसमें चैतन्य का किरण राग में आता नहीं। राग अपने को जानता नहीं, राग आत्मा को जानता है। राग दूसरे से जानने में आता है। ऐसे राग को परमेश्वर ने जड़ और अजीव कहा है। आहाहा..! समझ में आया? शुभोपयोग को जड़ कहा। चिल्लाये अन्दर से। भगवान! सुन तो सही प्रभु! तेरा चैतन्य आनन्दकन्द भगवान उससे विरुद्ध चाहे सो राग हो, चाहे सो द्वेष हो, चाहे सो मन्द परिणाम राग का हो, जिसको मोक्षमार्ग निमित्त से कहो वह सब राग है, अचेतन है, जड़ है। आहाहा..! समझ में आया?

वह यहाँ पर डाला है। व्यवहार राग की मन्दता। भगवान! उसको रुचि नहीं होती है, कंटाला आता है। अररर...! हाय! हाय! परन्तु वह राग है भगवान! तेरी चीज में नहीं। समझ में आया? और है उसमें राग नहीं। तेरी चीज में है वह ज्ञान और आनन्द है। उसमें राग नहीं है। राग है उसमें आत्मा नहीं। तो जिसको निमित्त तरीके मोक्षमार्ग कहा, निमित्त तरीके व्यवहारसमकित कहा, निमित्त तरीके ज्ञान कहा, निमित्त

तरीके व्रत को कहा, उसको यहाँ भगवान अचेतन और जड़ कहते हैं। आहाहा..! समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य और अनंत सर्वज्ञ परमेश्वर। जिसको निमित्तरूप से व्यवहार मोक्षमार्ग कहते हैं उसको परमात्मा अजीव और जड़ कहते हैं। वह जीव नहीं। भगवान ज्ञानानन्द की मूर्ति उसमें वह राग नहीं है। राग अजीव है। जीव नहीं वह अजीव। और राग अपने को जानता नहीं इसलिये राग को चैतन्यस्वभाव से विपरीत जड़ कहने में आया है। आहाहा..!

तो यहाँ कहते है मोक्षमार्ग टोडरमलजी, '**निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है।**' व्यवहार समिति, व्यवहार व्रत, व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार चारित्र, वह सब राग और राग को मोक्षमार्ग कहना निमित्त, और वह राग अचेतन जड़ है। आहाहा..! जड़ को मोक्षमार्ग कहना वह निमित्त का कथन है। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप अनन्त आनन्द का भण्डार, उसका आश्रय लेकर निश्चय आनन्द और शान्ति की प्रतीत लेकर अनुभव हुआ हो, उसका नाम सच्चा मोक्षमार्ग कहने में आता है। उसके सिवा मोक्षमार्ग दूसरा है नहीं।

'**सच्चा निरूपण सो निश्चय,...**' टोडरमलजी कहते हैं '**उपचार निरुपण सो व्यवहार इसलिये निरूपण-अपेक्षा दो प्रकार मोक्षमार्ग जानना।**' कथन की अपेक्षा से दो प्रकार है। '**(किन्तु) एक निश्चय मोक्षमार्ग है,...**' भाषा देखो! एक मोक्षमार्ग निश्चय है और एक व्यवहार मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं लिया। किन्तु निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग ऐसा शब्द नहीं लिया है। '**एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है...**' ऐसा दो नहीं है। आहाहा..! बहुत सारे शब्द, यह टोडरमलजी का कलश चढा न उसमें, तो यह कलश है उसमें। समझ में आया? भगवान! वह मानना पडेगा तुझे। यथार्थ श्रद्धा लिये बिना तेरे स्वभाव का आश्रय कभी होगा नहीं। सत्य का शरण, जैसा सत्य है ऐसा ज्ञान करेगा तो सत्य का शरण मिलेगा। उसमें विपरीत ज्ञान करे और सत्य का शरण मिले ऐसा कभी होता नहीं।

कहते हैं कि '**एक निश्चयमोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है -- इसप्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।**' गोदीकाजी! यह क्या? यह भक्ति आती है, शुभराग है आदि क्या? आता है प्रभु, होता है। जबतक आत्मा का स्वभाव का आश्रय लिया होने पर भी पूर्ण वीतरागता न हो वहाँ ऐसा राग, व्यवहार भक्ति का, पूजा का, दान का, दया का आये बिना रहता नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, शास्त्र पढ़ने का राग, पंच महाव्रत का राग आये बिना रहता नहीं। परन्तु है वह बन्ध का

मार्ग है। आहाहा..! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि '**इसप्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।**' '**तथा निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है...**' क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपना रागरहित भगवानस्वरूप का शरण लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान, शान्ति मुक्ति का मार्ग, आनन्द का मार्ग जो मिला वह भी एक मोक्षमार्ग आदरणीय है और बीच में राग की मन्दता का मोक्षमार्ग जो व्यवहार से कहने में आता है, वह भी उपादेय मानना भ्रम है। समझ में आया?

यह सातवें अध्याय की बात है। सातवाँ अध्याय भिन्न छपा है। यह टोडरमलजीने यहाँ लिखा है। समझ में आया? टोडरमलजी यहाँ शास्त्र का दोहन करके (कहते हैं), अपनी कल्पना से कोई बात नहीं करते हैं। वह सब शास्त्र के आधार से लिखते हैं। शास्त्र का आधार किसी में देते हैं, किसी में सामान्य लेते हैं, परन्तु है सब शास्त्र का आधार। अपनी कल्पना की बात नहीं, घर की अंतर की बात है।

तो कहते हैं कि हे आत्माओ! निश्चयमोक्षमार्ग दो को मानना मिथ्या है और मोक्षमार्ग दोनों उपादेय है, आदरणीय है, अंगीकार करने लायक है, ऐसा मानना भ्रम है। गोदीकाजी! एक ओर ऐसा लाखों रुपये का खर्च, अनेक लाखों का खर्च, बड़ा मन्दिर बनावे, मूर्ति आदि (की स्थापना करे)। भाई, होता है, वह तो जड़ की क्रिया है। अजीव के काल में उसकी पर्याय होनेवाली, भगवान! उसके क्रम में जड़े के संयोग में जो होनेवाली है वह होगी, होगी और होगी। वह आत्मा से होती नहीं।

आत्मा में शुभराग आता है, जबतक वीतराग न हो, तब ऐसा शुभ भाव आये बिना रहता नहीं। परन्तु धर्मी उसको पुण्यबन्ध का कारण जानकर अपने मोक्षमार्ग में मिलान करते नहीं। गोदिकाजी! बात ऐसी है हाँ! पाँच-पाँच, दस लाख खर्च करे उसमें मोक्ष हो जायेगा ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो नक़द बात है भैया! कोई दस लाख खर्च करे...

श्रोता :- कौन खर्च करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो पहले भी कहा था, पहले भी कहा था उसने। कोमल हृदय है न। समझ में आया?

भगवान! एक परमाणु जो पोईन्ट है, भगवान कहते हैं कि उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। एक परमाणु में, एक सेकण्ड के असंख्य भाग में, तीन अंश होते हैं। नई पर्याय का उत्पन्न होना, पुरानी पर्याय का व्यय होना और अपने स्वरूप से टिकना। तो वह परमाणु

की पर्याय को करनेवाला परमाणु है, आत्मा कर्ता है नहीं। आहाहा...! यह मन्दिर बना, यह बना, वह बना वह आत्मा नहीं करता, ऐसा कहते हैं।

थिरता एक समय में ठाने, उपजे विणसें तबही;
उलटपलट ध्रुव सत्ता राखें, या हम सुनी न कबही।
अवधु नट नागरकी बाजी।

जगक का तत्त्व चैतन्य हो या जड़ हो, '**थिरता एक समय में ठाने...**' वह जड़ हो या चैतन्य, एक सेकण्ड के असंख्य भाग में स्थिरता भी रखते हैं, '**थिरता एक समय में टाने, ऊपजे विणसें तबही;...**' नयी अवस्था का उत्पन्न होना और पुरानी अवस्था उसी समय व्यय होना।

उलट पलट ध्रुव सत्ता रखें, या हम सुनी न कबही।
अवधु नट नागरकी बाजी, जाणें न बांमण काजी।
क्या जाणे बामण काजी, अवधु नट नागरकी बाजी।

इस चौद ब्रह्माण्ड में प्रत्येक द्रव्य जो आत्मा और परमाणु है, वह अपनी पर्याय से परिणमन कर रहे हैं, धारावाही परिणमन कर रहे हैं। उसकी पर्याय को कोई रोके और वह पर्याय को कोई बनाये ऐसी चीज तीन काल में कोई है नहीं। जगत की चीज़ जगत से बनती है और बीगडती है, अपने से बगड़े और बिगड़े ऐसा है नहीं।

यहाँ तो टोडरमलजी तो दूसरा विशेष कहते हैं कि दो प्रकार का मोक्षमार्ग में शुभराग आता है। समझ में आया? परन्तु उसको उपादेय मानना मिथ्याभ्रम है। आहाहा..! व्यवहारा मोक्षमार्ग भी आदरणीय है और निश्चयमोक्षमार्ग भी आदरणीय है ऐसा मानना वह भी भ्रम है। आहाहा..! आगम का रहस्य खोलकर के बताया है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है हाँ! उसकी कल्पना की बात कोई है नहीं। क्योंकि निश्चय व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है। भाषा देखो भाषा। '**निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोधसहित है।**' निश्चय स्वाश्रय होता है, व्यवहार पराश्रय होता है। निश्चय शुद्ध होता है, व्यवहार पराश्रय राग होता है। निश्चय मोक्ष का मार्ग संवर-निर्जरा है, व्यवहार बन्ध का मार्ग राग है। दोनों परस्पर विरुद्ध है। आहाहा..! समझ में आया?

कहते हैं कि '**निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोधसहित है।**' आहाहा..! 'ज्ञानमार्ग रहा दूर, बाहर धमाधम चली।' बाहर धमाधम में मोक्षमार्ग मान लिया। अंतर मार्ग रहा दूर। भगवान ज्ञानानन्द की क्रिया करनेवाला, ज्ञान भी वह स्वभाव है न, गुण है न? तो उसकी क्रिया कोई होनी चाहिये कि नहीं? कोई भी पदार्थ हो, वह

द्रव्यरूप हो या गुणरूप हो या पर्यायरूप हो। तो ज्ञान एक गुणरूप है तो उसकी कोई क्रिया होती है कि नहीं? क्रिया, जाननक्रिया होना वह ज्ञान की क्रिया है। समझ में आया? एक जाननक्रिया, परन्तु स्व के आश्रय से हो वह जाननक्रिया सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया? ऐसे आत्मा में श्रद्धा नाम का गुण है, तो उसकी कोई क्रिया है कि नहीं? श्रद्धा--प्रतीत यथार्थ करना वह श्रद्धागुण की पर्याय है, वह पर्याय स्व की श्रद्धा करने से उत्पन्न होती है।

और चारित्र एक गुण है आत्मा में। अनादिअनन्त चारित्र एक गुण है। अनादिअनन्त समरस भाव, समरस भाव, वीतराग भाव, निर्दोष भाव, अकषाय भाव, साम्यभाव ऐसा त्रिकाल स्वभाव है, वह गुण है तो उसकी कोई क्रिया हे कि नहीं? कि अपने में स्थिर रागरहित होना वह चारित्रगुणकी क्रिया है। समझ में आया? वह क्रिया निषेध करने में नहीं आयी है। वह अपने आ गया। ६९-७० (गाथा), कर्ता-कर्म के अधिकार में ६९-७० (गाथा) में आ गया। स्वभाव, ज्ञानस्वभावभूत क्रिया निषेध करने में आती नहीं। विभावरूप क्रिया जो अपने में हो नहीं और राग आता है, स्वभाव की अपेक्षा से निषेध करने में आता है। और निषेध हो सकता है, क्योंकि राग है वह छूट सकता है। अपना चैतन्य भगवान उसकी अंतर में शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और रमणता (हो) वह तो स्वभाव के साथ निर्मल पर्याय अभेद होती है। अभेद होती है, छूटती नहीं। उसका नाम ज्ञानस्वभावक्रिया उपादेय है और राग की क्रिया उपादेय नहीं है। आहाहा..! आये बिना रहती नहीं। समझ में आया? जबतक पूर्ण वीतराग न हो, तबतक वह भाव आता है, परलक्षी है, पराश्रय है, आदरणीय नहीं है, उपादेय नहीं है, मार्ग नहीं है। आहाहा..! वह कहते हैं देखो!

'निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोधसहित है। कारण कि समयसार में ऐसा कहा है :-' 'ववहारोऽभूदत्थो, भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।' देखो! आचार्य का आश्रय लेकर (कहते हैं)। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भी कहते हैं तो आश्रय लेकर (कहते हैं कि) भाई! भगवान सर्वज्ञ सर्वदर्शी ऐसा कहते हैं न प्रभु! सर्वज्ञ और सर्वदर्शी ऐसा कहते हैं न। ऐसे सर्वज्ञ का आश्रय लेकर कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। तो टोडरमलजी भी कुन्दकुन्दाचार्य का आश्रय लेकर कहते हैं। हमारे घर की बात करते नहीं।

एक सेकण्ड भी अनन्त काल में अपने प्रसन्न चित्त से आनन्द से, प्रसन्न चित्त क्यों लिया है? कि निश्चय की बात सुने तो.. ऊँ..ऊँ.. ऐसा कंटाला आता है, आहाहा..!

बहुत सूक्ष्म... बहुत सूक्ष्म... बहुत सूक्ष्म, ऐसा कंटाला लगे और सुने, वह तो मिथ्यात्व का बन्ध होता है, ... का अभाव होता है। परन्तु चित्त की प्रसन्नता से.. आहाहा..! भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य, वह बन्धन राग में एकत्व है वह भूल है, राग से भिन्न होकर अपना स्वरूप का अनुभव करते हैं, वही स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति एक ही छूटने का, शान्ति का एक ही मार्ग है, दूसरा मार्ग तीन काल तीन लोक में है नहीं।

तो यहाँ आचार्य का आधार दिया, व्यवहार अभूतार्थ है। तब कोई कहता है कि अभूतार्थ है तो क्या वह नय है नहीं? है नहीं? है तो सही। व्यवहार का विषय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का परिणाम, व्यवहार सिमिति है सही! परन्तु वास्तविक तत्त्व नहीं है इसलिये उसको अभूतार्थ कहने में आया है। है तो सही। नहीं है ऐसा नहीं। न हो तो व्यवहार का विषय (नहीं रहता)। व्यवहार नय है, नय है तो उसका विषय तो होता है, परन्तु वह विषय है, वह सत्यार्थ नहीं है इसलिये उसको अभूतार्थ कहने में आता है। शुद्धनय...

'**व्यवहार अभूतार्थ है, सत्स्वरूपका निरूपण नहीं करता,...**' आहाहा..! '**किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा...**' किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा, अन्यथा व्यवहारनय कथन करती है। इतनी तो अपेक्षा लगाई है। व्यवहार किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है। व्यवहार समकित का अर्थ क्या? व्यवहार समकित तो राग है। क्या वह समकित श्रद्धागुण की पर्याय है? व्यवहार समकित का अर्थ राग। देव-गुरु की श्रद्धा का राग, राग है वह कोई सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं है। राग है उसको समकित कहना इसी अपेक्षा से, निमित्त देखकर उपचार से अन्यथा राग समकित नहीं है, उसको समकित कहना ऐसा निरुपण व्यवहारनय करती है। समझ में आया?

'**तथा शुद्धनय जो निश्चय है,...**' आहाहा..! '**वह भूतार्थ है, जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा निरूपण करता है।**' निरूपण करता है उसका तो कथन से लिया है, परन्तु उसकी ऐसी श्रद्धा करना वह यथार्थ है। '**इसप्रकार इन दोनों का स्वरूप तो विरुद्धतासहित है।**' निश्चय-व्यवहार दोनों की दिशा फेर, दोनों का फल फेर, दोनों का भाव फेर, एक में त्रिकाली चीज का आश्रय है और एक वर्तमान राग है। दोनों का विषय फेर, दिशा फेर, दशा फेर, फल फेर। समझ में आया? तो कहते हैं कि दो मार्ग कैसे होगा? ऐसे दो मार्ग हो सकते नहीं।

तब वह कहता है कि भाई! शुद्धात्मा का अनुभव मोक्षमार्ग तो कहा है शास्त्र में। समझ में आया? भले कहा। क्या कहते हैं, देखो! निश्चय से निरूपण किया हो

उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना। व्यवहारनय से निरूपण किया हो... यह टोडमलजी कहते हैं ११वीं गाथा का आश्रय लेकर। व्यवहारनय से निरूपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना। व्यवहार से जो बात कही हो उसकी श्रद्धा छोड़ना, वह श्रद्धा आदरणीय नहीं है। आहाहा..! चिल्लाये, कपकपी हो जाये लोगों को, अरे..! हमारे व्यवहार का लोप हो जाता है। भगवान! सुन तो सही। व्यवहार का लोप किये बिना तुझे निश्चय आयेगा नहीं। समझ में आया? राग और राग की मन्दता की रुचि छोड़कर स्वभाव का आश्रय करेगा तब तुझे सत्य का आश्रय और सम्यग्दर्शन होगा। उसके बाद राग की मन्दता आती है, परन्तु कहते हैं कि उसको मोक्षमार्ग मानना नहीं। समझ में आया? निश्चय को निश्चय समझना, व्यवहार का निरूपण किया (उसको) असत्यार्थ मानकर श्रद्धा छोड़ना। पौना घण्टा हो गया है। नव बज गये।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

दि.१४-०३-१९६७
अधिकार - ९, प्रवचन नं.-८०६

... क्योंकि शरीरादि चीज़ है वह तो मृत्युकाल में छूट जाती है। जो शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी, मकान, झेवर, कपड़ा संसार हो तो देह छूटने के काल में वह चीज छूट जाती है, तो संसार हो तो वह छूटने से उसकी मुक्ति होनी चाहिये। समझ में आया? वह संसार हो तो वह तो छूट जाता है, तो उसको मुक्ति होनी चाहिये। वह संसार नहीं। संसार उसको कहते हैं और ऐसा है कि भगवान आत्मा अपना शुद्धचैतन्य धाम, आनन्दकन्द उसमें से हटकर अनादि काल का पुण्य-पाप का परिणाम सहित मैं हूँ (यह संसार है)। यह पुरुषार्थसिद्धि है उसमें अमृतचन्द्राचार्यने १४वीं गाथा ली है कि संसार किसको कहते हैं? १४वीं गाथा में क्या कहते हैं देखो! संसार का मूल कारण बताते हैं।

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमादितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।।

पहले संसार क्या है वह नक्की करना चाहिये न? कि संसार क्या और संसार का बीज क्या? तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि यह आत्मा '**एवमयं कर्मकृतैर्भावैः**' कर्म के संग से उत्पन्न हुआ विकारभाव वह आस्रवभाव (है), उससे '**असमाहितो**' उससे निश्चय से आत्मवस्तु संसारकृत भाव से रहित है। समझ में आया? '**एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमादितो**' कर्म दो प्रकार के हैं। उसमें अर्थ भी किया है। '**भावै**' घातिकर्म है और अघातिकर्म है। घाति के संग से उत्पन्न हुआ मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिणाम और अघाति के निमित्त से हुई संयोगी शरीरादि बाह्य की चीज़। आत्मा कर्म के संग से उत्पन्न हुआ ऐसा विकारी भाव अथवा संयोगी बाह्य चीज़ उससे '**असमाहितो**'- उससे रहित है आत्मा। फिर भी '**युक्त इव प्रतिभाति**' आहाहा..! समझ में आया? '**युक्त इव प्रतिभाति**' आत्मा कर्मो का रचा हुआ, स्वभाव से रचा नहीं वह। कर्म से बना है ऐसा नहीं, परन्तु स्वभाव से रचा हुआ नहीं। तो कर्म के निमित्त से रचा हुआ, रागादि और शरीरादि दोनों लिये। अन्दर में घाति के संग से विकार और अघाति के निमित्त से संयोग, उससे संयुक्त न होने पर भी, यह गुजराती है, न होवा छतां। आप की भाषा समझ लेना थोड़ा।

अज्ञानी '**बालिशानां युक्त इव प्रतिभाति युक्त इव अज्ञानी को प्रतिभाति सप्रतिभास**' निश्चय से संसार का बीजरूप है। समझ में आया? अभी संसार किसको कहते हैं उसका निर्णय नहीं। यहाँ तो परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं, भगवान आत्मा वह तो ज्ञायकस्वरूप है, समरसस्वरूप है, अविकार स्वरूप है, आनन्दस्वरूप है ऐसे स्वभाव में विकारसहित और शरीरादि बाह्य पदार्थसहित '**असमाहितोपि युक्त इव प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्**' यह प्रतिभास संसार का बीज वह मिथ्यात्वभाव वह संसार का बीज संसार है। आहाहा..! समझ में आया? प्रभु! क्या कहते हैं? आहाहा..! यह संसार।

भगवान आत्मा संसार की पर्याय से रहित स्वरूप है ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि सात तत्त्व है कि नहीं? 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' तो तत्त्व ज्ञायक-जीव, पुण्य-पाप का भाव आस्रव, कर्म, शरीर, वाणी अजीव। तो अजीव तत्त्व, आस्रव तत्त्व उससे रहित ज्ञायक तत्त्व (है)। फिर भी सहित '**युक्त एव भासम्**' ऐसा विकार और शरीर का सम्बन्ध सहित भासन होना, वही मिथ्यात्वभाव संसार का बीज है।

समझ में आया?

वह बात मोक्षमार्गप्रकाशक में करते हैं देखो। कहते हैं, विचारकर मोक्ष को हितरूप जानकर। संसार अहितकर है। आहाहा...! '**मोक्षको हितरूप जानकर मोक्षका उपाय करना सर्व उपदेशका तात्पर्य वह है।**' संसार सहित मान्यता है उससे रहित आत्मा को जानकर, आत्मा को अनुभवकर, आत्मा में स्थिरता कर मोक्ष का उपाय करना यह शास्त्र का सर्व शास्त्र का सार है। आवाज आती है आवाज, भणकार उठते हैं। तब प्रश्न किया।

यहाँ प्रश्न है। टोडरमलजी प्रश्न करते हैं अब, सामनेवाले के मुख से। महाराज! '**मोक्षका उपाय काललब्धि आने पर भवितव्य अनुसार बनता है?**' आप मोक्ष का उपाय कहते हो तो हमारा प्रश्न है कि आत्मा का मोक्ष का जो उपाय राग, अज्ञान से छूटने का उपाय, बन्धन से रहित और आत्मा की शान्ति का उपाय क्या काललब्धि आने पर होता है? प्रश्न है उसका। जब काललब्धि आ जायेगी तब उपाय है ऐसा है नहीं। भवितव्य अनुसार। नियत में है भव्यतानुसार है? या '**मोहादिके उपशमादि होने पर बनता है?**' पंडितजी ने डाला है वह खानिया की चर्चा में। वह तो है, हमारे तो पहले से बहुत चर्चा (चलती है), ८३ की साल से। ८३--८० और ३, कितने साल हुए? ४०. यह प्रश्न चलता था।

संप्रदाय में हमारे एक सेठ था, दामोदर सेठ था गृहस्थ था, पैसेवाले थे। ५० हजार की आमदनी थी, दस लाख था। ५०-६० साल पहले। तो उसके साथ यह प्रश्न पहले चला था। ८३ की साल में। यह प्रश्न मैंने रखा था। अपने पुरुषार्थ से आत्मा की मुक्ति होती है। समझ में आया? क्योंकि यह प्रश्न हमारे (संवत) १९७२ की साल से चलता था। ७० और २, ५१ साल हुए। संप्रदाय में। हमारा गुरुभाई सम्प्रदाय में था वह वारंवार कहते थे, भगवान ने देखा हो तब हमारा पुरुषार्थ काम करेगा। यह तो ७२ की साल से चलता है। ७२ समझ ते हैं? ७२--७० और २। दीक्षित संप्रदाय में ७० में हुए दीक्षित। और ७२ के फागुन सुद १३ की बात है। आज फागुन सुद २ है। ७२ के फागुन सुद १३, ५१ साल हुए।

प्रश्न ऐसा खडा हुआ कि सर्वज्ञ परमेश्वर एक समय में तीन काल तीन लोक देखते हैं। कब? ७२ में। भगवान ने जब देखा है तब हमारा पुरुषार्थ काम करेगा। समझ में आया? उसके बिना चाहे हम कितना करे परन्तु हमारा पुरुषार्थ काम करेगा नहीं। ऐसी उसमें बहुत चर्चा हुई। मूलचन्दजी। उसका गुरु था। मैंने ऐसा कहा कि भगवान

की वाणी में ऐसा नहीं है। भगवान की वाणी तो ऐसी है... मैंने उस समय प्रवचनसार नहीं देखा था। परन्तु ऐसा अन्दरमें से आया था कि भगवान सर्वज्ञ है और वीतराग है। क्या कहा?

पाँचवे अध्याय में टोडरमलजी ने ऐसा प्रश्न लिया, धर्म के अधिकार में ऐसा लिया है कि मोक्ष का उपाय पुरुषार्थ करने से होता है या काललब्धि आती है तो होता है? कि जब हमारा भवितव्य होता है तब होता है? अथवा कर्म का उपशमादि होता तब होता है? या हमारे पुरुषार्थ से होता है? ऐसा शिष्य का प्रश्न, शिष्य के मुख में टोडरमलजीने प्रश्न रखा। उसका उत्तर चलते हैं, उसका उत्तर चलते हैं।

तो वह प्रश्न हमारे ७२की साल, ७२, ५१ साल हुए। संप्रदाय में वह प्रश्न चलता था कि भगवान ने जब केवलज्ञान में देखा होगा तब हमारा मोक्ष का पुरुषार्थ होगा, तबतक होगा नहीं। ऐसा प्रश्न चला। ७२ साल, ५१ वर्ष पहले। बहुत चला। उसमें ऐसा उत्तर दिया कि वाणी भगवान की है कि नहीं? ऐसी वाणी भगवान की आती नहीं कभी। भगवान की वाणी ऐसी नहीं होती। क्यों? बाद में हमने प्रवचनसार देखा, पहले तो नहीं देखा था। प्रवचनसार बाद में देखा। देखो। ७२ की साल में आया था। प्रवचनसारकी ८२ गाथा में है। ८२।

सव्वे वि य अरंहता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं।।८२

क्या कहते हैं? यह प्रश्न अन्दरमें से आया था ५१ वर्ष पहले कि भगवान की वाणी सर्वज्ञ भगवान है और वीतराग है तो अज्ञान और राग का नाश करने का उसका उपदेश होना चाहिये। और सर्वज्ञ और वीतरागता प्राप्त करने का उसका उपदेश होना चाहिये। ऐसा उपदेश--वाणी तुम निकालते हो ऐसी वाणी भगवान की होती नहीं। समझ में आया? तो यहाँ कहा, 'जो जाणदि अरहन्तं' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा... तब तो हमने प्रवचनसार देखा ही नहीं था। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं-

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।।८०।।

जिसने अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, अरिहन्त का द्रव्य अनन्त शक्तिवंत, गुण अनन्त शक्तियाँ और पर्याय केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य ऐसा जिस जीवने अरिहन्त की केवलज्ञान पर्याय देखी, माना उसका 'अप्पाणं जाणदि' वह आत्मा जाने बिना रहेगा नहीं। समझ में आया? केवलज्ञान एक समय में तीन काल

तीन लोक देखते है ऐसी पर्याय जिसकी प्रतीत में आती है, अंतर में अपने ज्ञान की पर्याय में केवलज्ञान एक समय का तीन लोक तीन काल देखता है। ऐसा होता है। ऐसी केवलज्ञान की पर्याय अपने में प्रतीत में आती है तो अपना द्रव्य सन्मुख उसकी दृष्टि जाती है।

क्यों? केवलज्ञान अर्थात् मोक्षतत्त्व। केवलज्ञान अर्थात् मोक्षतत्त्व। तो सात तत्त्व में आया, 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'। तो उसमें मोक्षतत्त्व आया। मोक्षतत्त्व में केवलज्ञान आया। तो मोक्षतत्त्व की श्रद्धा जब होती है तो एक समय की पर्याय की श्रद्धा हुई, परन्तु एक पर्याय की श्रद्धा पर्याय के आश्रय से नहीं होती है। तो पर्याय की श्रद्धा त्रिकाल ज्ञायकभाव अखण्डानन्द प्रभु चिदानन्द ध्रुव स्वरूप, उसके आश्रय से द्रव्य की श्रद्धा जब हुई, तब मोक्ष की पर्याय की श्रद्धा उसको होती है, उसको दर्शनमोह का नाश हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया?

भगवान ऐसा कहते हैं और तुम तुम्हारी कलप्ना से (कहते हो), ऐसी कोई वाणी आगम की नहीं। आगम की वाणी तो ऐसा कहती है, वह यहाँ टोडरमल लेते हैं। टोडरमल वह लेते हैं कि जो यहाँ लिया। पहले वह लिया ८० गाथा में। पीछे लिया 'जीवो ववगद मोहो' अपना स्वरूप सर्वज्ञ की पर्याय का निर्णय करने में जाते हैं, मैं शुद्ध सर्वज्ञ हूँ, मेरा सर्वज्ञ स्वभाव है, क्योंकि सर्वज्ञ स्वभावमें से सर्वज्ञपद आया है। सर्वज्ञ की श्रद्धा करनेवाला सर्वज्ञ की श्रद्धा कैसे करता है? कि सर्वज्ञ की पर्याय सर्वज्ञ आत्मा का स्वभाव उसमें से आयी है। समझ में आया?

वह दृष्टान्त हम बहुत देते हैं हम बहुत बार, लिंडीपीपर का। छोटीपीपर होती है न छोटीपीपर? उस पीपर में चोसठ पहोरी तीखाश, तीखाश... आप का शब्द है चरपराई। एक पीपर के छोटे दाने में कद छोटा, रंग काला, परन्तु उसमें चौसठ पहरी चरपराई अन्दर में पडी है और हरा रंग अन्दर में पडा है। है तो प्राप्त होता है। अन्दर में है, जिसमें से प्राप्त होता है। तो कोयला और कंकर, बालू घिसने से चौसठ पहरी चरपराई प्राप्त होनी चाहिये। वह है नहीं। कोयले और कंकर में है नहीं। पीपर का छोटा दाना कद छोटा, रंग काला, अन्दर में हरा रंग और अन्दर में चौसठ पहरी चरपराई भरी है।

चौसठ पहरी समझते हो? यह तो अभी सौ पैसा का रूपया हुआ। चौसठ पैसे का सोलह आना, रूपया पूर्ण, चौसठ में पूर्ण आता है। तो जैसे चरपराई पूर्ण पडी है तो प्राप्त होती है। ऐसे आत्मा में.. वह चरपराई की प्रतीत होती है उसको। समझ

में आया? ऐसे आत्मा में.. क्या कहा समझ में आया? सूक्ष्म बात है थोड़ी गहरी अपूर्व बात है। ५२ वर्ष पहले यह चर्चा बहुत हुई थी कि भगवान की वाणी में 'सव्वे वि य अरहंता तेण विद्याणेणं खविदकम्मंसा' (प्रवचनसार-८२ गाथा) स्वरूप का अन्तर अनुभव करके, पुरुषार्थ करके, आनन्द की श्रद्धा करके स्वरूप में लीन होकर मुक्ति को पाया। 'सव्वे वि य अरहंता तेण विद्याणेणं' उस विधि से 'खविदकम्मंसा' अपने आनन्द स्वरूप में लीन होकर आठ कर्म का नाश अथवा चार का नाश होकर 'किच्चा तथोपदेसं'। क्या कहते हैं? भगवान के उपदेश में ऐसा ही उपदेश आया। 'कच्चा तथोपदेसं' देखो, ८२ गाथा है। क्या कहते हैं?

एक ही प्रकार से कर्मों का स्वरूप अपने अनुभव कर के परमात्मपने के लिये भविष्य काल है और इस वर्तमानकाल में अन्य मुमुक्षुओं को भी इसी प्रकार से उपदेश किया है। 'तथो' उपदेश किया। भगवान की वाणी ऐसी आयी की अपना आनन्द शुद्ध पूर्णानन्द स्वरूप प्रभु भगवान निर्विकल्प आनन्द है वह आत्मा, ऐसा पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करो। समझ में आया? वह पुरुषार्थ से होता है, पुरुषार्थ बिना होता नहीं। अपना सम्यग्दर्शन अंतर का पुरुषार्थ से प्रगट करो और ज्ञान भी अपना स्वसंवेदन प्रयत्न से प्रगट करो और चारित्र भी स्वरूप में लीनता, स्वरूप आनन्द में लीनता अर्थात् चरना, रमना आनन्द में, ऐसा प्रयत्न से प्रगट करो तो तुम्हे मोक्ष होगा। ऐसा उपदेश 'तथोपदेसं किच्चा' इस प्रकार का उपदेश भगवान ने वाणी में किया है। विशेष में प्राप्त हुआ है। अरिहंत लिया है। उपदेश करके मोक्ष को प्राप्त हुआ। इसलिये निर्वाण का अन्य मार्ग नहीं, दूसरा कोई मार्ग है नहीं। ऐसा तय होता है। प्रलाप से बस होओ, मेरी मति व्यवस्थित हुई है। भगवन्तों को नमस्कार। यह संस्कृत टीका है। क्या कहा?

भगवंत सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ अनन्त हुए, वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में बिराजमान सर्वज्ञ परमेश्वर है। बीस तीर्थंकर बिराजमान हैं, लाखों केवलज्ञानी बिराजमान है। यह सब तीर्थंकरो 'सव्वे वि य अरहंता' अपना शुद्ध स्वरूप केवलज्ञान जैसा है ऐसा अपने साथ मिलाकर अनुभव करके स्थिरता करके वीतरागी दशा जिसने प्राप्त की (उन्होंने) ऐसा उपदेश दिया, ऐसा उपदेश दिया। दूसरा उपदेश नहीं दिया। अपने प्रयत्न से किया तो ऐसा उपदेश दिया।

हे आत्माओ! तुम्हे संसार अहित का नाश करना हो, मोक्ष की परमहित दशा प्रगट करनी हो तो अंतर आनन्द स्वरूप भगवान आत्मा उसमें घूसो, अन्दर में जाओ, प्रयत्न करो। अन्दर में प्र-यत्न, विशेषे स्वभाव में जागृति करके स्थिर होओ, ऐसा भगवान

ने उपदेश दिया है। उस उपदेश से विरुद्ध उपदेश करनेवाले आगम का वह उपदेश नहीं है। ५२ साल पहले वह प्रश्न हुआ था। भगवान की वाणी ऐसी नहीं होती, भगवान की वाणी ऐसी है नहीं। क्योंकि उसने पुरुषार्थ करके केवलज्ञान लिया है। तो वाणी में भी (ऐसा ही आया)। विकल्प उठा था पहले, मोक्ष साधते थे तब विकल्प उठा था राग, मैं पूर्ण होऊँ अथवा जगत धर्म समझे। वह विकल्प में भी ऐसा परमाणु बँध गया कि स्वभाव सन्मुख हो, विभाव से उपेक्षा हो ऐसा ही उपदेश उसमें आता है। समझ में आया?

जब वह आत्मा का ध्यान करते थे, तीर्थंकर को केवलज्ञान नहीं हुआ, तब पूर्वे, पूर्वे तीर्थंकरगोत्र बाँधा पूर्वे तो आत्मा के स्वरूप की दृष्टि करके ध्यान (करते थे) उसमें विकल्प आया कि मैं पूर्ण हो जाऊँ, मोक्ष हो जाये अथवा दुनिया धर्म समझे। तो उस विकल्प में ऐसा परमाणु बँध गया कि उसमें स्वभाव सन्मुख का उपदेश, विभाव से विमुख का ही उपदेश निकलता है। समझ में आया? दूसरा उपदेश हो तो वीतराग का उपदेश नहीं है। तो यहाँ यह कहते हैं कि भगवंत ने पुरुषार्थ करने का उपाय कहा है। वह यहाँ टोडरमलजीने यहाँ लिया है। उसमें ८८ गाथा में लिया है यहाँ। देखो ८८।

जो मोहरागदोसे णिहणदि उवलब्भ जोण्हमुवदेसं।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण।।८८।।

क्या कहते हैं? मोहक्षय का उपाय जिनेश्वर के उपदेश की प्राप्ति प्राप्त कर पुरुषार्थ अस्ति का कार्य है। अपना स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करना वह प्रयोजन कार्य है, ऐसा यहाँ उपदेश देने में आया है। अमृचन्द्राचार्य कहते हैं, मैं अपना शुद्ध स्वरूप में सन्मुख होकर अपना सर्व प्रयत्न से मोह का क्षय करने के लिये मैं पुरुषार्थ का आश्रय करता हूँ। वह संस्कृत टिका है। '**सर्वारम्भेण मोहक्षपणाय पुरुषकारे निषीदामि**', वह संस्कृत टीका है अमृतचन्द्राचार्य की। मेरा मोक्ष नाम परमहित आनन्ददशा उसमें मैं रहने को अथवा मोह का क्षय करने को मैं पुरुषार्थ का आश्रय करता हूँ। समझ में आया? आश्रय तो करते हैं द्रव्य का, पर मैं पुरुषार्थ से काम लेता हूँ ऐसा कहने में आया है। मोक्ष का उपाय जब बनता है तो क्या है? ऐसा प्रश्न टोडरमलजीने नौंवे अध्याय में लिया है उसमें से निकालकर। घर की बात का प्रश्न नहीं।

पूछा है कि महाराज! आत्मा का... वह पहले कहा कि संसार अहित है। संसार बाहर में नहीं रहता वह पहले कहा। संसार स्त्री, कुटुम्ब संसार नहीं। भ्रांति--भगवान

आत्मा कर्म के संग से उत्पन्न हुआ पुण्य-पाप का विकार और कर्म अघाति से हुआ बाह्य संयोग। संयोगी भाव, कर्म और संयोगी चीज तीनों आ गये। तीन से रहित आत्मा होनेपर भी सहित मानना वह मिथ्यात्व संसार का बीज है। आहाहा..! समझ में आया? वह पुरुषार्थसिद्धि उपाय की १४वीं गाथा।

एवमयं कर्मकृतैर्भावेरसमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।।१४।।

आहाहा..! अभी तो संसार किसको कहते हैं यह मालूम नहीं। संसार, शरीर नहीं, कर्म नहीं, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, बंगला-बंगला संसार नहीं। समझ में आया? संसार इसको कहते हैं, भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञायक तत्त्व वह, विकारी परिणाम पुण्य-पाप का शुभाशुभभाव और कर्म और संयोगी बाह्य की चीज, सबसे रहित होने पर भी 'असमाहितो पि युक्तइव प्रतिभाति' अन्तर में इससे सहित भासना वही मिथ्यात्व भाव संसार का बीज है। आहाहा..! क्योंकि विपरीत श्रद्धा हुई। आत्मा ज्ञायकतत्त्व है, पुण्य-पाप वह आस्रवतत्त्व है, कर्म, शरीर अजीवतत्त्व है। भिन्न-भिन्न तत्त्व है। सात तत्त्व में 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' का अर्थ भिन्न-भिन्न तत्त्व है। तो अजीव भिन्न है, आस्रव भिन्न है, भगवान भिन्न है। भगवान केवलज्ञानी ने भी कैसा देखा है आत्मा को? शरीर, कर्म को अजीव देखा। पुण्य-पाप के भाव को भगवानने आस्रव देखा है और आत्मा को आस्रव और कर्म रहित देखा है। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान ने ऐसा देखा और ऐसा है। तो विकार चाहे तो शुभोपयोग हो या अशुभ हो, और चाहे तो कर्म का बन्धन पुण्य शातावेदनीय आदि हो या तीर्थंकरगोत्र आदि हो, और चाहे सो बाह्य सामग्री, चक्रवर्ती और तीर्थंकर का समवसरण हो, यह सब सामग्री, कर्म और विकाररहित आत्मा है। आहाहा..! इस रहित को सहित मानना वह मिथ्यात्वभाव है। तत्त्वार्थ श्रद्धानं विपरीतं। वह तत्त्वार्थ श्रद्धा से विपरीत अधिकार है उसका। समझ में आया? वह मिथ्यात्वभाव वही संसार है। वह मिथ्यात्व भाव संसार अहित है। उसका नाश करने में, मोक्ष का हित उत्पन्न करने में उपाय क्या? वह प्रश्न किया।

महाराज! '**क्या काललब्धि आने पर मोक्षका उपाय होगा? क्या भवितव्य अनुसार होगा? क्या कर्म का उपशम अनुसार होगा? कि क्या अपने पुरुषार्थ से उद्यम करने पर होगा?**' ऐसा प्रश्न है शिष्य का। टोडरमलने बनाया है नौंवा अध्याय। मोक्षमार्गप्रकाशक। यह मार्ग खुल्ला हुआ तो उसका ही पहले व्याख्यान कहा।

'और प्रथम दोनों कारण मिलने पर बनता है?' शिष्य कहता है, महाराज! कर्म के कारण से यदि कर्म उपशमादि हो तब हो, तो हमको पुरुषार्थ करने का क्यों कहते हो? हमको उपदेश क्यों देते हो? और काललब्धि और भवितव्य अनुसार हो तो हमको पुरुषार्थ का उपदेश क्यों देते हो? और यदि पुरुषार्थ से बनता है तो उपदेश सब सुनते हैं, उनमें कोई उपाय करता सकता है और कोई नहीं कर सकता है, कारण क्या? यह प्रश्न किया। टोडरमलमजीने यह मोक्षमार्गप्रकाशक बनाया (उसमें) शास्त्र का रहस्य खोल दिया है। तो उसमें यह प्रश्न किया। प्रश्न करनेवाले तो स्वयं ही हैं। पोते समझते हो? क्या कहते हैं? अपने आप। भाई! हमारी भाषा हिन्दी नहीं है। गुजराती आ जाती है थोडी। स्वयं ने ही प्रश्न रखा है शिष्य के मुख में। महाराज! अपना संसार अहितरूप भाव, उसको नाश करने में अपना उपाय मोक्ष का करना वह पुरुषार्थ, क्या कर्म मन्द हो तो होता है? काललब्धि होती है तो होता है? भवितव्य अनुसार होता है या पुरुषार्थ से होता है? पुरुषार्थ से हो तो सुनते सब है। क्यों पुरुषार्थ नहीं करते? ऐसा प्रश्न किया।

'**समाधान :- एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं।**' सुनो! '**एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं।**' एक कारण नहीं, अनेक कारण साथ में हैं ऐसा कहते हैं। '**सो मोक्षका उपाय बनता है...**' भगवान आत्मा, अपना शुद्ध स्वभाव का प्रेम करता है। वह संवर अधिकार में भी आ गया, कर्ता-कर्म में भी आ गया कि अपना आत्मा आनन्द और शुद्ध स्वभाव है उसकी जिसको रुचि नहीं, उसको विकार की पुण्य-पाप के परिणाम की रुचि है। उसको आत्मा प्रत्ये द्वेष है। ऐसा कर्ताकर्म अधिकार ६९-७० में लिया है। ऐसा अधिकार... समझ में आया? संवर अधिकार में भी लिया है। भेदज्ञान की जहाँ शुरुआत की वहाँ। सूक्ष्म बात है।

और आनन्दघनजीने भी यही लिया है। आनन्दघनजी हुए न श्वेताम्बर में? उसने भी यह लिया है। तीसरे तीर्थंकर की स्तुति करते हैं। यहाँ है कि नहीं?

संभवदेव ते धुर सेवो सवे रे, लही प्रभु सेवन भेद;
सेवन कारण पहेली भूमिका रे, अभय अद्वेष अखेद।।१।।
संभवदेव ते धुर सेवो...

अब,

भय चंचलता जे परिणामनी रे, द्वेष अरोचक भाव;

शुद्ध आनन्द स्वरूप की रुचि नहीं, अरोचकता है उसका नाम आत्मा प्रत्ये द्वेष

करने में आया है। आहाहा..! वह भवबीज कहा न १४वीं गाथा में? वह बात ली है उसमें। अपने संवर अधिकार में तो वह लिया है और पहले भी वह लिया है। समझ में आया? कर्ताकर्म अधिकार में। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द परमात्मा उसका जिसको अंतर में सन्मुख होकर निर्विकल्प प्रेम नहीं, उसको पुण्य और पाप के भाव प्रति प्रेम है उसको भगवान कहते हैं कि तेरे आत्मस्वभाव प्रति तुझे द्वेष है। आहाहा..! पंडितजी! बहुत सूक्ष्म बात है। वह लिया है, अपने संवर अधिकार में सब लिया है। दो वस्तु भिन्न ली है। क्रोधादि वस्तु भिन्न, आत्मवस्तु भिन्न। दो वस्तु भिन्न ली है। तो क्रोध शब्द से शुरू किया है। वही शब्द यहाँ लिया उसने। द्वेष अरोचक भाव।

भगवान! यहाँ तो भगवान कहकर ही बुलाते हैं आत्मा को हाँ। ७२ गाथा में। ७२ गाथा चलेगी। यहाँ तो अभी टोडरमल स्मारक है न? ७२ गाथा चालू है। आत्मा... पहले ७२ में लिया है कि पुण्य और पाप जल में सेवाल है, काई है ऐसा मैल है। भगवान आत्मा... पाठ में एसा लिया है, 'अशुचितं विपर्यं दुःखकारण' बाद में अमृतचन्द्राचार्य ने उसमें से निकाला। 'सूचितं चेतन भाव शुभकारणं' भगवान आत्मा..! शुभ–अशुभ राग है वह अशुचि है, मैल है, अपवित्र है। उससे रहित भगवान आत्मा ज्ञाननानन्द निर्मलानन्द प्रभु है। उसको कहा, भगवान आत्मा! ऐसा शब्द लिया है। अमृतचन्द्राचार्य महाराज ने टीका में। भगवान आत्मा। क्यों? कि सर्वज्ञ ने ऐसा देखा है।

प्रभु तुम जाणग रीति सो जग देखता हो लाल
प्रभु तुम जाणग रीति सो जग देखता हो लाल
निज सत्ताए शुद्ध सौने पेखता हो लाल।

हे नाथ! हे परमेश्वर! हे वीतराग! आप सर्वज्ञपद में हमारा स्वरूप आप कैसे देखते हो? 'निज सत्ताए शुद्ध' शुद्ध आनन्द ऐसा आप देखते हो। तीनकाल, तीनलोक आप देखते हो ज्ञान में ऐसा हमारा आत्मा नहीं परन्तु अनन्त आत्मा। निगोद में एक शरीर में अनन्त आत्मा है, उस आत्मा को कैसा देखते हैं भगवान? के निज सत्ताए शुद्ध। अपनी विद्यमानता शुद्ध है ऐसे आत्मा को देखते हैं। पुण्य–पाप का भाव भगवान आस्रवतत्त्व देखते हैं। कर्म, शरीर को भगवान अजीवतत्त्व देखते हैं।

ऐसे न देखकर, भगवान देखते हैं ऐसा न देखकर विपरीत देखता है, आस्रवतत्त्व को अपने से लाभ हो, आस्रव से पुण्य शुभ से आत्मा को लाभ हो, तो आस्रव से रहित भगवान है, उससे सहित माने तो लाभ मानेगा, वह मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व भूल है। सारा संसार का बीज, मिथ्यात्व वह बीज है। समझ में आया? आज समझे,

कल समझे, बाद में समझे, यह समझे बिना उसका निस्तार नहीं। तीन काल तीन लोक में उपाय दूसरा नहीं। समझ में आया?

वह यहाँ कहा, 'द्वेष अरोचकभाव'। परमानन्दजी! सर्वज्ञ पर आ गया सब। पढा है। उसने सर्वज्ञ पर सब डाला है। उसमें एक दो बात.. उसके सर पर आई और थोड़ी कैलासचन्दजी उपर आयी है। समझ में आया? अरे..! भगवान! सुनो तो सही प्रभु! सर्वज्ञ। आहाहा..! एक समय में तीन काल तीन लोक देखे। ऐसे क्रमसर जगत की अवस्था है ऐसी प्रतीत करनेवाला, वह सम्यग्दर्शन की प्रतीत कर सकते हैं। क्योंकि जितना व्यवस्थित, पर में व्यवस्थित अवस्था होती है, अपने व्यवस्थित होती है उसकी दृष्टि, पर का कर्ता छूटकर, अपने राग का कर्ता छूटकर, अपने ज्ञायकभाव का कर्ता होता है, ज्ञाता-दृष्टा होता है तो परका अकर्ता होता है, तब क्रमबद्ध का तात्पर्य ज्ञातादृष्टा आता है। समझ में आया? चिल्लाने लगते हैं। अरे..! नियत होगा। सुन तो सही। तुझे नियत क्या कहते हैं और नियत किसको कहते हैं, खबर नहीं तेरे को। समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ की एक समय की पर्याय तीन काल तीन लोक देखते हैं ऐसा होगा, ऐसा होगा। परन्तु होगा ऐसा निर्णय किसने किया? पण्डितजी! यह बात है। समझ में आया? वह तो आनन्दघन जी की बात में किया था। कल नहीं की थी, नहीं? शीतलनाथ की स्तुति है न? कितने वें शीतलनाथ है? दसवेँ।

श्रोता :- स्वयंभूस्तोत्र में है?

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसमें नहीं। स्वयंभूस्तोत्र में है, लेकिन देवचंदजी है न? देवचंदजी, देवचंदजी हुए हैं खतरगच्छ में। उसने शीतलनाथ की स्तुति की है। उसमें ऐसा लिया है। देखो! शीतलनाथ है। कितने वें हैं शीतलनाथ? देखो! क्या कहते हैं? पाँचवी गाथा है।

द्रव्य क्षेत्र ने काळ भाव गुण राजनीति ये चारजी
त्रास विना जड चैतन प्रभुनी कोई न लोपे काळजी

काल अर्थात् आज्ञा। भगवान! आप ज्ञान में जैसा देखते हो, ऐसी द्रव्य की पर्याय तीनों काल में ऐसी होती है। 'द्रव्य क्षेत्र ने काल भाव गुण राजनीति ये चार जी' प्रत्येक पदार्थ द्रव्य है, उसकी गुण--शक्ति है, अवस्था काल है, भाव गुण है और अवगाहन क्षेत्र है। ऐसा प्रत्येक पदार्थ का राजनीति चार--जगत के पदार्थ की नीति की रीति ऐसी है। 'त्रास विना जड चैतन प्रभुनी कोई न लोपे काळजी' उसने अर्थ

किया हों! इस तरह सर्व द्रव्यकी परिणति (होती है), इसलिये आपको कुछ कहते नहीं, किसीको त्रास करते नहीं, .. परन्तु आप के ज्ञाननी परिणति लोक की टालते नहीं, आज्ञा का उल्लंघन करते नहीं। आपके ज्ञान में जैसा ज्ञात हुआ वैसी परिणति होती है। पण्डितजी! वह शीतलनाथ की स्तुति में ऐसा लिया है। परन्तु वह केवलज्ञान ने देखा ऐसा हुआ ऐसा निर्णय किया किसने? आहाहा..! केवलज्ञान का निर्णय का अर्थ मोक्षतत्त्व का निर्णय। मोक्षतत्त्व तो यह पर्याय है उसका निर्णय, द्रव्य का निर्णय हो तो पर्याय का निर्णय होता है। समझ में आया?

अपना शुद्ध स्वरूप, एक समय की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य छोड़कर ज्ञायक चिदानन्द भगवान चैतन्यसूर्य है, ऐसी निर्विकल्प श्रद्धा करके, आनन्द का अनुभव करके, स्वसंवेदन करके यह आत्मा, ऐसी प्रतीत होना उसका नाम सम्यग्दर्शन भगवान ने कहा है। समझ में आया?

वह यहाँ कहते हैं कि महाराज! हमारा मोक्ष का पुरुषार्थ कैसे हो? भगवान! सुन तो.. भगवान कहने की मेरी .. है, हाँ! आत्मा को भगवान ही कहते हैं। '**एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं।**' अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसा बोला है ७२ गाथा में। '**सो मोक्ष का उपाय बनता है वहाँ तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलते हैं,...**' उत्तर दिया टोडरमलजी ने। अपना आत्मा उसका जिसको प्रेम लगा, राग का प्रेम जिसको छूट गया, अजीव का प्रेम जिसको छूट गया..। आहाहा..! सम्यग्दृष्टि को ९६ हजार स्त्री हों, चक्रवर्ती का राज हो और इन्द्र के इन्द्रासन में करोडों अप्सरा हो (उसमें) सुखबुद्धि नहीं (है), सुखबुद्धि नहीं (है)। समझ में आया?

वह कहा था एक बार, नहीं? '**चक्रवर्तीकी सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग, कागविट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग...**' वहाँ है न? इन्दोर में काँच का मन्दिर है उसमें है, लिखा है। वह तो पुराना है। 'चक्रवर्तीकी सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग, कागविट सम मानत है...' अपना अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव किया तब आत्मा की प्रतीत हुई। तो अपने में आनन्द जब सम्यग्दृष्टि ने देखा, तो सम्यग्दृष्टि को चक्रवर्ती का पद और इन्द्र के पद में सुखबुद्धि रहती नहीं और पर में सुखबुद्धि रहे तबतक मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

ऐसा सम्यग्दर्शन लो, श्रद्धा करो, ऐसा नहीं। अपने आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है उसका अनुभव करके, यह आनन्द है ऐसी प्रतीत होना, तब उसकी दृष्टि में पुण्य-पाप के भाव में आनन्द नहीं, उसके बन्ध में आनन्द नहीं, उसके फल में आनन्द

नहीं (ऐसी प्रतीति हो जाती है)। आहाहा..! समझ में आया? लोगों ने सम्यग्दर्शन की चीज़ इतनी हलकी कर दी है। है महान चीज़। एक सम्यग्दर्शन होने से अनन्त संसार का नाश हो जाता है और एक-दो भव में मुक्ति होती है, ऐसी उसमें भनक उठती है। यह क्या चीज़ है चौथा गुणस्थान? कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि लोग कागविट सम मानत है। आहाहा..! ९६ हजार (स्त्री), वह माँस और हड्डी ... प्रगट हुआ है, वह कल कहा था रहस्यपूर्ण चिठ्ठी में। रहस्यपूर्ण चिठ्ठी टोडरमलजी की। समझ में आया?

जब सम्यग्दर्शन होता है तो अनन्त जितने गुण हैं उसका अंश व्यक्त पर्याय में सब गुण आ जाता है। सब गुण पर्याय में व्यक्त न आवे तो उसको सम्यग्दर्शन कहते नहीं। आहाहा..! वह टोडरमल की चिठ्ठी में लिया था न? कल आया था। कल आ गया था। यह रहा देखो! चौथे गुणस्थान में... आज टोडरमलजी का स्मारक का दिन है तो उसमें से सब आधार देते हैं। चौथे गुणस्थान में आत्मा के ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट हुए हैं। क्या कहते हैं? गंभीर बात है। रहस्यपूर्ण चिठ्ठी है।

भगवान! तेरी चीज राग, पुण्य और पाप के फल से हटकर पुण्य का वर्तमान शुभ उपयोग से दृष्टि हटकर अंतर आनन्दकन्द निर्विकल्प भगवान पर दृष्टि पडने से द्रव्य में--वस्तु में जितनी संख्या में गुण है, जितनी संख्या में। कल कहा था, बड़ी बात है थोड़ी। अनन्त गुण है। आकाश का प्रदेश है उससे अनन्तगुना गुण है एक आत्मा में। समझ में आया? आहाहा..! एक आत्मा में कितने गुण है संख्या से? संख्या हाँ! रहनेवाला त्रिकाल। संख्या से इतने गुण है। आकाश का प्रदेश अमाप। उसकी संख्या से अनन्तगुना गुण है एक-एक द्रव्य में। ऐसे अनन्त गुण अंतर की दृष्टि करने से अनन्त गुण की व्यक्तता, प्रगटता, अनुभव में अंश में आती है। ये अनन्त गुण की व्यक्तता अंश में प्रगट हो ऐसा प्रतीत करना भान वेदन से, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहने में आता है। आहाहा..! समझ में आया?

यहाँ तो कहे कि, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, फलाना करो। अरे..! चल। ऐसी तो अनन्त बार श्रद्धा की, वह तो राग है, वह श्रद्धा है नहीं। श्रद्धा आत्मा की अनन्तगुण का पिण्ड चिदानन्द भगवान, उसका जहाँ अन्तर अनुभव करके प्रतीत आई तो आनन्द आया, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। उस स्वाद के आगे सम्यग्दृष्टि लोक चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखा भोग कागविट सम मानत है। काग की विष्टा ऐसे जानत है। आहाहा..! समझ में आया?

मुर्दे को,... मुर्दा होता है न मुर्दा? मुर्दा कहते हैं न? क्या कहते हैं? मुर्दा। उसको पोलिश करके जलाये, जला दे। सब भाषा तुम्हारी नहीं आती है। जला दे। तो वह खुश होता है? मुर्दा खुश होता है? बराबर पोलिश करके साफ करके जला दे। और कोई एक-एक मन लकड़ी ऐसे रखते हैं, एक यहाँ रखे, एक यहाँ रखे तो वह मुर्दा नाराज होता है?

ऐसे सम्यग्दृष्टि मोह से मर गया है। उसको अनुकूल सामग्री, मुर्दे को जैसे अनुकूल में राग नहीं है, ऐसे अनुकूल में उसकी रुचि नहीं है और प्रतिकूलता में जैसे मुर्दे में द्वेष नहीं है, ऐसे प्रतिकूलता में प्रतिकूलता के कारण से द्वेष नहीं है। ज्ञाता-दृष्टा तरीके ज्ञानी परवस्तु को अनुकूल, प्रतिकूल जानते हैं। समझ में आया?

वह यहाँ कहते है देखो यहाँ, महाराज! मोक्ष का पुरुषार्थ, पुरुषार्थ से होता है या काललब्धि आदि से होता है? तो कहा कि एक कारण बनता है तब काल कारण मिलते ही है। भगवान ने कहा सम्यग्दर्शन ऐसे होता है। ऐसे 'भूयत्थंम्मसिदो खलु' भगवान आत्मा सत् चिदानन्द प्रभु, सत् शाश्वत आनन्दकन्द अनाकुल आनन्द का पिण्ड आत्मा, ऐसा अनुभव में प्रतीत हुआ, एक कारण आये तो सब कारण साथ में है ही। समझ में आया? एक कारण हो और दूसरा न हो तो उसको कारण कहते नहीं।

'वहाँ तीनों ही कारण नहीं मिलते। पूर्वोक्त तीन कारण कहे उनमें काललब्धि वह होनहार तो कोई वस्तु नहीं है;...' वस्तु का अर्थ कोई दूसरी चीज नहीं। अपने पुरुषार्थ से आत्मा का अनुभव करते हैं, उस काल को काललब्धि कहा। समझ में आया? यह बहुत प्रश्न चला है ८३ साल में। ८० और ३, ४० साल पहले। हमारे एक सेठ थे नगरसेठ। बहुत पैसेवाले थे। उस समय ६० साल पहले। दस लाख रूपये थे, ४०-५० हजार की आमदनी थी। वह पुरुषार्थ को मानते नहीं थे। कर्म हो तो होता है। कहा, नहीं, तीन काल में नहीं। आत्मा अपना पुरुषार्थ करे तो 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोहकी संगती पाई।' पण्डितजी! हमारे पण्डितजी भी कहते हैं, वह आता है न? 'परसंग एव' नहीं आता? बन्ध अधिकार में। पर ने नहीं किया, परसंग में आत्मा गया तो विकार होता है। आत्मा को कर्म विकार नहीं कराता। अग्नि अकेली है तो घन नहीं पडते, अग्नि लोह का संग करती है तो घन पडता है। वैसे, अकेला आत्मा असंग दृष्टि करे तो घन नहीं है, दुःख नहीं है। परन्तु कर्म का संग करता है ऊल्टा पुरुषार्थ से (तो) चार गति का दुःख का घन सहन करना पडता है। वह विकार कर्म ने कराया नहीं है। 'कर्म बिचारै

कौन भूल मेरी अधिकाई।' यहाँ तो अज्ञानी ऐसा कहे, कर्म है। वही यहाँ आगे कहेंगे हाँ! अरे..! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं.. वह कहता है अज्ञानी कि महाराज! आप तत्त्व निर्णय का कहते है तो पुरुषार्थ से तत्त्व निर्णय में उपयोग लगाये तब दर्शनमोह का अभाव होने पर आदि का मोक्ष का पुरुषार्थ मुख्यता से तत्त्वनिर्णय, पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय, पुरुषार्थ से मोक्ष सिद्ध होता है। **'और तत्त्व निर्णय नहीं करने में किसी कर्म का दोष नहीं। तेरा दोष है। सो जिनाआज्ञा माने...'** **'परन्तु तु स्वयं महन्त रहना चाहता है...'** क्या करे भैया कर्म का ऐसा उदय है। तुम तो महन्त रहना चाहते हो। ऐसा लिया है। देखो! **'परन्तु तुम तो स्वयं महन्त रहना चाहता हो...'** यह टोडरमलजी कहते हैं। क्या करे, हमें राग इतना जोरदार कर्म से आता है कि हम छोड़ सकते नहीं। मूढ है? किसने कहा ऐसा तुझे? तुझे कहा किसने? भगवान ने तो ऐसा कहा नहीं, तु कहाँ से लाया ऐसी बात?

कहते है कि **'तुं स्वयं महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादि को लगाता है।'** भाई! हम पुरुषार्थ नहीं कर सकते हैं, क्या करे? कर्म का जोर है। प्रकाशचन्दजी! **'सो जिनाआज्ञा माने ऐसी अनीति सम्भव नहीं।'** वीतराग की आज्ञा माने तो कर्म से दोष होता है, ऐसा तुम मान सकते नहीं। तुम्हारे कारण से तुम दोष करते हो तब कर्म को निमित्त कहने में आता है। यह तो ऐसा माने कि कर्म का उदय आता है तो होता है। क्या करे भैया? मूढ है? किसने कहा ऐसा? कर्म अजीवतत्त्व है, आस्रव भिन्न तत्त्व है। अजीव से आस्रवतत्त्व हो तो दो तत्त्व एक हो जाते हैं। तो सात तत्त्व भिन्न रहते नहीं। सात तत्त्व भिन्न है। कर्म का उदय अजीवतत्त्व है, पुण्य-पाप का भाव आस्रवतत्त्व है, स्वभाव भगवान ज्ञायकतत्त्व है। तो यदि अजीव से आस्र हो जाये तो अजीव और आस्रव दो तत्त्व एक हो जाता है। ऐसा है नहीं। समझ में आया?

अपने पुरुषार्थ से विकार करते हैं, दोष डालते है कर्म पर। क्या करे भैया, कर्म का दोष है। शास्त्र में लिखा है, घातिकर्म से ज्ञान का घात होता है। मोक्षमार्ग में लिखा है, दर्शनमोह से मिथ्यात्व उत्पन्न होता है। चारित्रमोह.. अरे..! सुन तो सही प्रभु! वह तो सब तेरा अपराध तेरे से होता है, तब निमित्त कौन था उसका ज्ञान कराया है। तेरा पुरुषार्थ से तुम अपराध करते हो, तो तेरा पुरुषार्थ से स्वभाव का पुरुषार्थ कर तो उसका नाश होता है। उसमें दूसरी कोई चीज तेरे पुरुषार्थ को रोके

और पुरुषार्थ करा दे ऐसी कोई चीज जगत में है नहीं। समझ में आया? वह यहाँ प्रश्न किया उसका उत्तर कहते हैं।

'**जिस काल में कार्य बनता है वही काललब्धि,...**' कार्य बनता है स्वभाव का पुरुषार्थ करके, वही काललब्धि। दूसरी काललब्धि क्या? '**और जो कार्य हुआ वही होनहार। तथा जो कर्म के उपशमादिक हैं वह पुद्‌गल की शक्ति है...**' कर्म का उपशम तुम कर सकते नहीं, वह तो जड़ की शक्ति है। परद्रव्य का आत्मा कर्ताहर्ता नहीं। उसका आत्मा कर्ताहर्ता नहीं। यह टोडरमलजी ने जवाब दिया। कर्म के उदय का कर्ता नहीं और कर्म के नाश का कर्ता तुम नहीं। वह तो जड़पर्याय है। क्या जड़ की पर्याय तेरे से उत्पन्न होती है? जड़ की पर्याय तुम नाश करते हो? स्वतंत्र पदार्थ है। तो परपर्याय का कर्ताहर्ता आत्मा है नहीं।

'**तथा पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं सो यह आत्मा का कार्य है;...**' आत्मा अंतर्मुख स्वभाव का पुरुषार्थ भगवान ने कहा, ऐसा करे तो अंतर का कार्य है। '**इसलिये आत्मा को पुरुषार्थ से उद्यम करने का उपदेश देते हैं।**' समझ में आया? कितना स्पष्ट कर दिया है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी पण्डित थे, स्त्री–कुटुम्ब थे। स्त्री–कुटुम्ब स्त्री–कुटुम्ब में रहे, राग राग में रहा, भगवान आत्मा भगवान में रहा। ऐसी बात टोरमलजी ने मोक्षमार्ग में रहस्य खोल दिया है, स्पष्ट कर दिया है।

भाई आये नहीं जगमोहनलाल? वह याद आ गये। क्यों याद आ गये? उसकी प्रस्तावना में लिखा था न कि पण्डिजी का वह काम है कि अपने आगम का रहस्य खोल देना, समाज की तुलना नहीं करना। समाज को ठीक पडे या न ठीक पडे। वह याद आ गये। समझ में आया? आगम का न्याय सत्य है, पण्डितों का काम है रहस्य खोल देना। समाज की तुलना रहे या न रहे, समाज माने कि नहीं माने वह लक्ष्य पण्डितो का होता नहीं। उसमें लिखा है जगमहोनलालने। वह याद आया। यहाँ टोडरमलजी ने ऐसा कहा है। समाज माने या न माने उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। तत्त्व का स्वरूप जैसा है वैसा कहते हैं। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :– प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.-२४९३, गुरुवार, दि.१६-०३-१९६७
अधिकार - ९, प्रवचन नं.-८०७

यह एक मोक्षमार्ग प्रकाशक टोडरमल कृत, नौंवे अध्यायमें से 'पुरुषार्थ से मोक्षप्राप्ति', यह थोड़ा अधिकार पहले लिया था। अभी थोड़ा साथ में बाकी है। यहाँ स्मारक का आखरी दिन है न? इसलिये उसकी बात चलती है।

शिष्यने प्रश्न किया है कि महाराज! आत्मा का मोक्ष जो होता है वह काललब्धि आती है तो होता है? कि कर्म के उपशम, क्षय से होता है या अपने पुरुषार्थ से होता है? कैसे होता है? कि भवितव्य अनुसार होता है। ऐसा प्रश्न किया। यह टोडरमलजी ने शिष्य के मुख में प्रश्न करके उत्तर देते हैं। वह कहा पहले। समझ में आया? कल यहाँ तक आया है, देखो।

आत्मा अपना मोक्ष का कार्य करे उसमें अनेक कारण मिलते हैं। '**एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं।**' पीछे थोड़ा आयेगा। '**सो मोक्ष का उपाय बनता है वहाँ तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलते हैं,...**' भगवान आत्मा मोक्ष का नाम बन्धन से रहित छूटने का उपाय करते हैं तो वहाँ तीनों कारण काललब्धि, भवितव्यता और कर्म का उपशम, क्षय होता ही है। वह कारण मिलाना पडता नहीं। देखो! वर्तमान में बहुत गड़बड़ चलती है न? कि भाई! यह क्रमबद्ध होता है तो पीछे पुरुषार्थ कहाँ रहा हमारे? पण्डितजी? ययदि पदार्थ की अवस्था क्रमबद्ध होती है, व्यवस्थित अवस्था होती है तो हमें पुरुषार्थ करने का अवसर कहाँ रहा? तो उसमें ही उत्तर है कि जब क्रमबद्ध है ऐसा भगवान ने जाना, ऐसा कहा तो भगवान के ज्ञान का जब निर्णय करने जाते हैं--केवलज्ञान का, एक समय में तीन काल तीन लोक जानते हैं ऐसी ज्ञान की एक समय की अवस्था की सत्ता होने का स्वीकार करने जब जाते हैं, तब उसका स्वीकार द्रव्य पर दृष्टि जाकर स्वीकार होता है। समझ में आया? ज्ञायक पर दृष्टि जाकर क्रमबद्ध का पुरुषार्थ का क्रमबद्ध का निर्णय होता है। ऐसे मैं करुं.. मैं करुं... मैं करुं... तो क्रमबद्ध का पुरुषार्थ रहा नहीं। करुं-करुं में तो कर्ताबुद्धि आ गई। मैं करुं, ऐसा जहाँ छूट गया और मैं ज्ञातादृष्टा हूँ, ऐसा अपने स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ करते हैं, उसमें क्रमबद्ध का तात्पर्य अकर्तापना और ज्ञातादृष्टापना प्रगट होता है। सूक्ष्म बात। बहुत गड़बड़ी चलती है तो ययह बात... समझे? यह बात तो हमारे ७२ की साल से चलती है। ७२, ५१ साल हुए इस बात की

चर्चा (शुरू हुए)। समझ में आया?

यहाँ वह कहते हैं देखो! कि कर्म का उपशम आदि है वह अपना कार्य नहीं। वह तो कर्म की शक्ति कार्य है, वह तो परद्रव्य की है। भवितव्य और काललब्धि कोई वस्तु नहीं, कोई भिन्न वस्तु नहीं है। अपना स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ जब आत्मा करते हैं, काललब्धि, भवितव्यता होती है साथ में। वह आया देखो। '**पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं सो आत्मा का कार्य है;...**' कर्म का उपशम करना वह आत्मा का कार्य नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है। '**काललब्धि और होनहार कोई वस्तु नहीं है।**' देखो! टोडरमल कैसा उत्तर देते हैं!

यह प्रश्न हमारे ७२ की साल से प्रश्न ऊठा और ८३ की साल में बहुत प्रश्न ऊठे, संप्रदाय में बहुत प्रश्न हुए। तो मैंने यह उत्तर दिया था। देखो! टोडरमलजी क्या कहते हैं? कि काललब्धि जो आत्मा भगवान ने कहा ऐसा उपदेश अनुसार, अपने स्वभाव सन्मुख होकर पुरुषार्थ करते हैं, उस समय में काललब्धि पक गई। समझ में आया? अपनी दरकार नहीं है कि मैं क्या हूँ। यह कहते हैं देखो! '**पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं सो आत्मा का कार्य है;...**' काललब्धि और भवितव्यता तो कोई एक समय में होनेवाली है, पुरुषार्थ किया तो होनेवाली का काललब्धि का ज्ञान हुआ।

काललब्धि का ज्ञान कब होता है? कि अपना स्वभाव सन्मुख का चिदानन्द स्वरूप भगवान, उसमें दृष्टि करके, पुरुषार्थ करके शान्ति की प्रगट दशा हुई, तब उस समय में काल का लब्धि का तब ज्ञान, द्रव्य का ज्ञान हुआ तो पर्याय का काललब्धि का ज्ञान होता है। केवल पर्याय का ज्ञान, द्रव्य के ज्ञान बिना होता नहीं। सूक्ष्म बात है। धन्नालालजी! '**पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं सो आत्मा का कार्य है; – इसलिये आत्मा को पुरुषार्थ से उद्यम करने का उपदेश देते हैं।**'

'**वहाँ यह आत्मा जिस कारण से कार्यसिद्धि अवश्य हो उस कारणरूप उद्यम करे, वहाँ तो अन्य कारण मिलते ही मिलते हैं,...**' वह क्या कहा देखो! '**तथा जिस कारण से कार्य की सिद्धि हो अथवा नहीं भी हो, उस कारणरूप उद्यम करे, वहाँ अन्य कारण मिलें तो कार्यसिद्धि होती है, न मिले तो सिद्धि नहीं होती। सो जिनमतमें जो मोक्ष का उपाय कहा है,...**' अब यहाँ बड़ा सिद्धान्त आया। '**जिनमत में...**' वीतराग के अभिप्राय में, सर्वज्ञ ने देखा, उन्होंने कहा उपदेश जिसमें '**जो मोक्ष का उपाय कहा है, इससे मोक्ष होता ही है..**' '**उसके काललब्धि व होनहार भी हुए और कर्म के उपशमादि हुए तो वह ऐसा**

उपाय करता है। इसलिये जो पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय करता है उसको सर्व कारण मिलते हैं...' '-ऐसा निश्चय करना।' देखो! यह टोडरमलजी। गोदीकाजी! यह स्मारक है न तो उसमें लिया।

मोक्ष का उपाय नियमसार में कहते हैं, वह नियमसार में कहा ५०वीं गाथा में। नियमसार का अर्थ मोक्ष का मार्ग है। नियम--मोक्षउपाय। तो मोक्षउपाय कहाँ से उत्पन्न होता है? अपने एक समय में पूर्ण आत्मद्रव्य है उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है। इसके अलावा... इसके सिवाय क्या कहते हैं? उसके अलावा, आत्मा के सिवा जैसे कर्म, शरीर आदि परद्रव्य है, उसमें से मोक्ष का उपाय नहीं होता। यह राग है उसमें से मोक्ष का उपाय नहीं होता। राग को वहाँ परद्रव्य कहा है। नियमसार की ५०वीं गाथा में राग को परद्रव्य कहा है। क्योंकि रागमें से अपनी निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। दूसरी बात---अपने में क्षयोपशम भाव ज्ञान का हो उसको भी वहाँ परद्रव्य कहा है। आहाहा..! समझ में आया? यहाँ वह कहते हैं, देखो ५०वीं गाथा है।

'पुव्वुत्तसयलभावा' ऐसा शब्द है देखो! 'पुव्वुत्तसयलभावा' 'परदव्वं परसहावमिदि हेयं' महासिद्धान्त। नियमसार। भगावन के उपदेश में यह आया कि 'पुव्वुत्तसयलभावा' क्या कहते हैं? थोड़ा सूक्ष्म है भगवान! कितनी ही बात टोडरमलजी शास्त्र के आधार से कैसी कहते हैं! कि भगवान ने जो कहा कि 'पुव्वुत्तसयलभावा' राग वह भी 'परद्रव्यं परभावं हेयं', पर्याय जो ज्ञान की वर्तमान विकास है उसको भी 'परद्रव्यं परभावं हेयं' ऐसा कहा है। सुनो। और अपना द्रव्य एक समय में पूर्णानन्द शुद्ध ध्रुव है उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन की पर्याय प्राप्त होती है। तो सम्यग्दर्शन की पर्याय प्राप्त हुई हो उसको भी परद्रव्य कहा है। सुनो।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हेतु कहा, हेतु समझना चाहिये न? कि पर्याय जो है, जैसे अपनी धर्म पर्याय शान्ति की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, वह पर्याय द्रव्यमें से आती है। द्रव्य ज्ञायकमूर्ति की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, नियमसार है, उत्पन्न होती है। तो वह पर्याय जैसे परद्रव्यमें से नहीं उत्पन्न होती है, ऐसे रागमें से नहीं उत्पन्न होती है, ऐसे अपनी पर्याय क्षयोपशम परलक्षी उसमें से भी नहीं होती है और क्षायिक समकित हुआ उसमें से नई पर्याय उत्पन्न नहीं होती है। पण्डितजी! सूक्ष्म बात है। यह नक्की करना पडेगा, पण्डित लोगों की जिम्मेदारी बहुत है। फूलचन्दजी

ने सबेरे थोडा कहा था। सुनो कहते हैं, कहते हैं देखो, न्याय युक्ति से सिद्ध करके कहेंगे, ऐसे ही नहीं कहेंगे। यहाँ कहते हैं...

श्रोता :- आत्मा से अभिन्न है...

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं नहीं, अभिन्न नहीं, है तो पर्याय। परन्तु पर्यायमें से पर्याय नई नहीं होती। सुनो, यह अलौकिक बात है। पर्यायमें से नई पर्याय होती नहीं। पर्याय में ताकात नही नई पर्याय प्रगट होने की। सुनो! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, यह नियमसार है, शुद्धभाव अधिकार है, उसमें सारा भगवान ने उपदेश दे दिया है।

जिनेश्वर के उपदेश अनुसार जो पुरुषार्थ करते हैं उसको सब मिलता है। उसका उपदेश क्या है? भगवान आत्मा एक समय में 'सगदव्वमुवादेयं' एख समय में सामान्य ध्रुव अभेद उसको द्रव्य कहकर वही उपादेय कहा है। राग को परद्रव्य कहा, यह क्षायिक समकित प्रगट हुआ उसको भी परद्रव्य कहा है यहाँ। क्योंकि पर्यायमें से पर्याय नहीं आती। जैसे परद्रव्यमें से अपनी पर्याय नहीं आती, ऐसे अपनी पर्यायमें से नई पर्याय नहीं आती। इस कारण से उसको भी परद्रव्य कह दिया है। सुनो बात। यह भगवान का उपदेश क्या है। पण्डितजी! यह नियमसार (है)।

वह यहाँ कहा कि **'जिनेश्वर के उपदेश अनुसार मोक्ष का उपाय करता है उसको काललब्धि व होनहार हुए और कर्मके उपशमादि हुए हैं तो वह ऐसा उपाय करता है। इसलिये जो पुरुषार्थ से मोक्षका उपाय करता है उसको सर्व कारण मिलते हैं और उसको अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है - ऐसा निश्चय करना।'** क्या कहा? भगवान ने मोक्षमार्ग का उपदेश ऐसा दिया है, ऐसा कहा है, ऐसा है कि भगवान आत्मा... एक दो पंक्ति इतनी है--'पुव्वुत्तसयलभावा' पूर्वे क्षयोपशमभावस, उदयभाव, क्षायिकभाव सब को परद्रव्यं कहा यहाँ। सुनो, क्यों? कि जैसे शरीर परद्रव्य है उसमें से जैसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की पर्याय उत्पन्न नहीं होती, ऐसे अपनी वर्तमान प्रगट पर्याय वस्तु के आश्रय से जो हुई, उस पर्यायमें से भी नई चारित्र की पर्याय, शुद्धि की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, पर्याय के आधार से पर्यायमें से नहीं आती है। इसलिये भगवान ऐसा कहते हैं कि 'पुव्वुत्तसयलभावा', एक परपरिणामिक चैतन्यमूर्ति भगवान। आहाहा..! परमस्वभावभाव एक उसको ही स्वद्रव्य कहा है। उसको यहाँ उपादेय कहा है। समझ में आया? यही जिनेश्वर का उपदेश है। तीन काल, तीन लोक जिसके एक समय में पत्ता आया--लिया, दिव्यध्वनि में ऐसा आया। अरे..! भगवान! अरे..! आत्मा! तुझे नया मोक्षमार्ग उत्पन्न करने की अपेक्षा

से जैसे परद्रव्यमें से मोक्षमार्ग की पर्याय उत्पन्न नहीं होती, ऐसे पुण्य के परिणाममें से उत्पन्न नहीं होती। इसलिये राग को भी हम परद्रव्य कहते हैं। ऐसे क्षयोपशम और क्षायिक पर्याय है उसमें से भी नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। पर्याय में नयी पर्याय होने की ताकात नहीं है। नयी पर्याय उत्पन्न होने की ताकात द्रव्य में है। समझ में आया? देखो! यह टोडरमलजीने मोक्षमार्गप्रकाशक में मोक्ष का उपाय करे और मोक्ष का उपाय भगवान ने ऐसा कहा, नियमसार मोक्ष का उपाय है। शुद्धभाव का अधिकार है।

तो शुद्धभाव इसको यहाँ कहते हैं। वह पर्याय का शुद्धभाव नहीं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना वह अशुभभाव है। दया, दान, व्रत, भक्ति वह शुभभाव है और उससे रहित आत्मा की शुद्धपर्याय प्रगट हो वह शुद्धभाव है। वह यहाँ नहीं। यहाँ तो शुद्ध पर्याय को भी परद्रव्य कहाँ यहाँ तो। सुनो! समझ में आया? 'पुव्वत्तसयलभावा' भगवान आत्मा एक सेकण्ड के असंख्य भाग में पूर्णानन्द परमस्वभावभाव, परमस्वभावभाव, अभेदभाव, शुद्धभाव, जिसको यहाँ शुद्धभाव कहा। ध्रुवभाव, एकरूपभाव, ज्ञायकभाव, उसको यहाँ स्वद्रव्य कहा। उसकी दृष्टि करने से, उसका ज्ञान करने से, उसमें लीन होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। पर्याय में लीन होने से पर्यायमें से नयी पर्याय आती नहीं।

भगवान ऐसा कहते हैं कि स्वद्रव्य तो उसको हम कहते हैं कि जो तीन काल का पिण्ड, अनन्त गुण का पिण्ड (है)। तीन काल की पर्याय का पिण्ड गुण, अनन्त गुण का पिण्ड ऐसा पदार्थ। भाई! पदार्थ की दृष्टि होना वह अलौकिक बात है। उसने अनन्त बार सब किया, परन्तु यह किया नहीं। गाथा तीसरी में आता है नहीं? तीसरी में आता है। देखो! 'णियमेण य जं कज्जं' ऐसे शब्द से शुरू किया है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने मोक्ष उपाय में जीव अधिकार में '**णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदसंणचरित्तं**' जो आत्मा को निश्चय से करनेलायक कर्तव्य है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। यहाँ ऐसा नहीं लिया है। यहाँ 'णाणदंसणचरित्तं' लिया है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं लिया है। क्योंकि पहले अनुभव ज्ञान का होता है, ज्ञान हो तब श्रद्धा होती है ऐसा लिया है यहाँ। समझ में आया?

पाठ ऐसा है देखो! एक-एक शब्द में बड़ा रहस्य भरा है। यह तो सन्तों की वाणी, केवलज्ञान का पेट खोल दिया है। '**य जं कज्जं णयमेण**' भगवान आत्मा को। यहाँ कार्य आया है न? क्या कार्य आया है? देखो! '**पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं सो**

आत्मा का कार्य है;...' तीसरी पंक्ति, ग्यारहवे पृष्ठ पर तीसरी पंक्ति है। है? क्या?

श्रोता :- विशेष खोलने की जरूरत है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- खोलते है न, और खोलते हैं। क्या कहते हैं?

श्रोता :- ..

पूज्य गुरुदेवश्री :- और करते हैं, अभी छोड़ नहीं देते है। भेदविविक्षा है वह भी परद्रव्य है। और खोलते हैं, और खोलते हैं। छोड़ नहीं देंगे। अभी तो एक, दो, तीन, चार, पाँच बार (कहेंगे)। समझ में आया?

यहाँ तो इतना कहना है कि '**पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं सो आत्मा का कार्य है;...**' इतना आया? वहाँ भी यह शब्द लिया, देखो! '**यं णियमेण जं कज्जं**' जो आत्मा को निश्चय से कार्य करनेलायक है वह क्या? सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र। कैसे होता है? वह कैसे होता है? वह ५०में कहा कि '**सगदव्वंमुवादेयं**'--भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण स्वरूप अभेद उसको यहाँ स्वद्रव्य कहते हैं। क्योंकि उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र--शान्ति और अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय प्राप्त होती है। एक समय की पर्याय भेदरूप है। भेदरूप भी मुझे नहीं कहना है, मुझे तो यहाँ परद्रव्य कहना है वह सिद्धान्त लेतना है। पाठ है वह सिद्ध करना है।

क्षायिक पर्याय वह भी '**परद्रव्यं परभावं इति हेयं**' ऐसा कहा है। समझ में आया? टीका में ऐसा लिया है। देखो, कारण कि वह परस्वभाव है। पाठ ऐसा है। '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' टीका में ऐसा लिया है कि यह परस्वभाव है। क्या? राग, पुण्य, पाप परस्वभाव है, अपनी पर्याय प्रगट है वह भी परस्वभाव है। टीका ली है। वह परस्वभाव है इसलिये परद्रव्य है। परस्वभाव है, परद्रव्य है तो परस्वभाव ऐसा नहीं लिया है टीका में। परस्वभाव है तो परद्रव्य है और परद्रव्य है तो हेय है। सुनो! भेदपर्याय है वह तो साधारण बात है।

श्रोता :- क्षायिक पर्या भी परद्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- किस अपेक्षा से? कि उसमें से नयी पर्याय नहीं होती उस अपेक्षा से। भेद तो पर्याय अंश भेद है। वह तो भेदमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया?

यहाँ तो यह सिद्ध करना है, प्रभु! एक वस्तु अखण्डानन्द भगवान, जिसमें अनन्ती पर्याय उसमें पडी है सामान्य शक्तिपने। कहा था न एक बार? सिद्धपर्याय, सिद्ध भी एक समय की पर्याय है। क्या? सिद्ध, द्रव्य नहीं, गुण नहीं। द्रव्य-गुण तो त्रिकाली

है। सिद्ध अवस्था एक समय की दशा है, दूसरे समय में दूसरी दशा, तीसरे समय में तीसरी दशा। सिद्ध अवस्था जो उत्पन्न होती है उस अवस्था की मुद्त एक समय ही है। ऐसी की ऐसी दूसरे समय हो, परन्तु वह नहीं होती। सुनो।

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता, अनन्त शक्ति जो उसकी व्यक्तता एक समय में सिद्ध को प्रगट हुई है, उसकी मुद्त एक समय की है। क्योंकि वह पर्याय है, गुण नहीं, द्रव्य नहीं। तो एक समय की पर्याय दूसरे समय व्यय हो जाती है। दूसरे समय नयी उत्पन्न होती है, तीसरे समय नयी उत्पन्न (होती है), दूसरी का व्यय होता है। ऐसे सिद्ध जब से हुए वहाँ से सादिअनन्त जितनी पर्याय है सिद्ध की, वह संसारपर्याय का काल से अनन्तगुनी पर्याय है। यह अनन्तगुनी पर्याय आत्मा के द्रव्य में अनन्त पडी है। सिद्ध की पर्यायमें से पर्याय नहीं आती। आहाहा..!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह दूसरा। वह तो व्यवहारनय के ग्रन्थ में है, वह तो व्यवहारनय का ग्रन्थ है। यहाँ तो निश्चय के अध्यात्म ग्रन्थ में दूसरी चीज है। वह खबर है, ख्याल है। वह स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा कहा है न। वह मालूम है। यहाँ तो एकदम अन्दर स्वद्रव्य को यहाँ अभेद कहकर उसको स्वद्रव्य कहा है।

श्रोता :- लक्ष्य से...

पूज्य गुरुदेवश्री :- लक्ष्य से और ध्येय में यह लेना है और यही चीज से कहना है। वह तो द्रव्य की पर्याय सहित का द्रव्य वह कारण है, ऐसा कहा उपादान। वह सब खबर है, ख्याल में है। उसका यहाँ अभी काम नहीं है। यहाँ तो जिनेश्वर के उपदेश अनुसार पुरुषार्थ करते हैं उसका कार्य होता है और वह कार्य आत्मा (का है)।

...कुन्दकुन्दाचार्य। ओहो..! भरतक्षेत्र का मानवी, तीर्थंकर के विरह में यात्रा भरतमें से महाविदेह में की, यह कोई अलौकिक बात है। समझ में आया? ऐसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने वहाँ से आकर यह समयसार, नियमसरा आदि बनाया। वे फरमाते हैं प्रभु! भगवान! एकाबर सुन तो सही नाथ! तेरी चीज क्या है? समझ में आया? 'परदव्वंमुवादेयं' एक परमात्मस्वरूप, परम स्वरूप... परम स्वरूप... कायम स्वरूप... असल स्वरूप... परमपारिणामिक स्वरूप कारण परमात्मा। कारण बताना है वह। क्षायिक समकित पर्याय हुई वह उसमें से हुई। क्षायिक समकित की पर्याय के आश्रय से चारित्र नहीं

होता। चारित्र की पर्याय का कारण द्रव्यस्वभाव है। समझ में आया? सुनो। मोक्षमार्ग वह पर्याय है। संसार पर्याय है, मोक्षमार्ग पर्याय है, मोक्ष पर्याय है। तो मोक्षमार्ग पर्याय है उसमें से मोक्ष की पर्याय नहीं आती। समझ में आया? क्योंकि पूर्व की पर्याय का व्यय होकर उत्तर की पर्याय पूर्ण होती है वह द्रव्यमें से आती है। व्ययमें से नहीं आती है, भावमें से आती है। आहाहा..!

श्रोता :– ..

पूज्य गुरुदेवश्री :– पर्याय एक समय की है, उसकी ताकात एक समय रहने की है, उसकी स्थिति ही इतनी है, तब उसके ऊपर दृष्टि देने से क्या होता है। उसमें से तो निकलती नहीं। उसमें क्या पडा है? द्रव्य पडा है? एक समय की पर्याय क्षायिक हो, क्षयोपशम हो, उदय हो, सब को यहाँ तो भगवान परद्रव्य कहते हैं। आहाहा..! अभी तो परद्रव्य का करना है यहाँ तो। एय..! पण्डितजी! अभी परद्रव्य का सुधार करना है। क्या धूल करे सुधार? स्वतंत्र परपदार्थ है। परद्रव्य की तो बात यहाँ कहा ही नहीं।

भगवान! तेरी पर्याय प्रगट है क्षयोपशम और उदय। अरे..! आत्मा का आश्रय करके उपशम और क्षायिक हुआ, फिर भी परमेश्वर तो ऐसा कहते हैं कि हमारा हुकम उपदेश ऐसा है कि स्वद्रव्य उपादेय है। पर्याय को परद्रव्य कहने का कारण यह है कि जैसे परद्रव्यमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती, तो क्षायिकपर्याय उत्पन्न हुई, उसमें से भी नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती है। उस अपेक्षा से परद्रव्य कहा है। भेद है तो कहा है ऐसा नहीं है यहाँ। समझ में आया? पर्याय भेद है, परन्तु यहाँ परद्रव्य क्यों कहा? आहाहा..!

श्रोता :– ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– भेद तो है, लेकिन परद्रव्य क्यों कहा? भेद भी नहीं, वह तो भेद है। यहाँ तो परद्रव्य क्यों कहा? पर्याय का आश्रय करने से विकल्प होता है वह भी नहीं। समझ में आया? पर्याय का आश्रय करने से विकल्प होता है यह भी यहाँ नहीं। यहाँ तो पर्याय को परद्रव्य कहा। आहाहा..! वह कहते हैं देखो!

'पुव्वत्तसयलभावा' उदयभाव का जितना प्रकार, क्षयोपशम का जितना प्रकार, क्षायिक का जितना प्रकार, 'परदव्वं परसहावमिदि परदव्वं इति हेयं' क्योंकि पर्याय भी हेय करनेलायक, लक्ष्य करनेलायक नहीं, लक्ष्य करने लायक नहीं, आश्रय करने लायक नहीं, उपादेय करनेलायक नहीं। उसको उपादेय करने जायेगा तो विकल्प उठता है। नयी पर्याय उत्पन्न

होती नहीं।

श्रोता :- पारिणामिकभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। समझ में आया? जिनेश्वर का उपदेश है--'स्वदव्वंपरंपारिणामिक' का पिण्ड भगवान उसको तुम उपादेय करो, उसके ऊपर दृष्टि लगाओ। आहाहा..! उसको ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाओ और उसमें स्थिर होओ, वही मोक्ष का उपाय है। जगत को कठिन बहुत लगता है। कभी सुना नहीं, यह रीत क्या है? वास्तविक पंथ क्या है? और पंथ की उत्पत्ति कहाँ-से होती है, उसकी खबर नहीं। ऐसे के ऐसे बफम चले जाये। बफम क्या कहते हैं? ओघेओघे।

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- ... बफम कहते हैं। हमारी भाषा है। बफम नाम भान बिना, बफम अर्थात् भान बिना। हमारी काठियावाडी भाषा ऐसी है।

श्रोता :- फालतु चला जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री :- फालतु, लो न भाई आप का शब्द। हमारे साथ बराबर मेल नहीं खाता है। समझ में आया?

यहाँ टोडरमलजी कहते हैं कि **'जिनेश्वर के उपदेशानुसार...'** जे नित्यमेव उपास्य कहा है, वह मोक्ष होता ही है, होता ही है। तो भगवान ने ऐसा फरमाया। इन्द्रों की उपस्थिति में, गणधरकी उपस्थिति में, एकभवतारी आत्माओं भी समवसरण में बिराजते थे, उसकी उपस्थिति में भगवान की दिव्यध्वनि ऐसी निकली। उस दिव्यध्वनि के अनुसार यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं। भगवान! तेरी दृष्टि राग और पर्याय पर से हटानी पडेगी और हटाने के बाद दृष्टि जो हुई क्षायिक आदि, उससे भी तुझे हटानी होगी। आहाहा..! बहुत कठीन बात।

श्रोता :- यह तो आगे की.. आगे की.. बहुत आगे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह चौथे गुणस्थान की बात है, आगे की नहीं। वह तो स्पष्ट कराने को पूछते हैं। पण्डितजी! वह पण्डितजी स्पष्ट कराने को पूछते हैं, स्पष्ट कराने को पूछते है। वह तो हमारे वहाँ परिचयवाले बहुत हैं, धन्नालालजी। समझ में आया? 'एक होय त्रण काळमां परमार्थनो पंथ' दूसरा मार्ग--दो प्रकार हो सकता नहीं। नीचे या ऊपर एक ही मार्ग है। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं, **'जिनमत में जो मोक्ष का उपाय कहा है, इससे मोक्ष होता ही होता है।'** देखो! कैसा कहते हैं! जिनमत में तो वह कहा, वीतराग सर्वज्ञ

परमेश्वर ने कहा। कई लोग कहते हैं कि अन्यमत में ऐसा है, कोई पीला दिखाता है, ऐसा दिखाता है, भविष्य दिखाता है। धूल में नहीं है, सुन तो सही। गपेगप है सब।

सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग के सिवा कभी अंश भी सत्य नहीं है। कोई कहे, योग में ध्यान करते हैं बाद में दिखता है पीला, हरा। वह तो धूल है। वहाँ देखा तो उसमें क्या आया? चमत्कार होता है। धूल में भी चमत्कार नहीं है, सुन तो सही। परमेश्वर वीतरागदेव का हुकम है कि एक समय का प्रभु ध्रुव बिंब पड़ा है ध्रुव, उसके ऊपर दृष्टि दे। आहाहा..! ऐसा भगवान का हुकम है। भगवान ने ऐसा करके केवलज्ञान पाया है। समझ में आया? तो उसके विकल्प में भी ऐसा आया था तो विकल्प में पुण्य बँध गया, उससे ध्वनि निकल गई ऐसी, ऐसी ध्वनि छूट गई। अरे..! आत्मा! हमने भी अभेद में दृष्टि देकर स्थिरता प्रगट की है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र, तो विकल्प भी ऐसा था कि मैं अभेद करता हूँ, पूर्ण होता हूँ, पूर्ण हो जाउँ तो विकल्प से ऐसा पुण्य बँध गया। उनको कहाँ वाणी निकालनी है? पुण्य बँध गया तो उसके कारण ध्वनि छूटती है। समझ में आया? तो वह छूटी उसमें ऐसा कहा, ऐसा किया था, ऐसा कहा। आहाहा..!

भगवान आत्मा, भाई! उसका माहात्म्य क्या है? उसको अभी राग का माहात्म्य, निमित्त का माहात्म्य और प्रगट पर्याय का जबतक माहात्म्य रहता है तबतक स्वभाव त्रिकाली का माहात्म्य आता नहीं। समझ में आया? और त्रिकाली स्वभाव का जिसको माहात्म्य आया उसको पर्याय का माहात्म्य रहता नहीं। आहाहा..!

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में एक श्लोक लिया है कि सम्यग्दर्शन हुआ स्वद्रव्य के आश्रय से तो सम्यग्दृष्टि आत्मा को तो प्रभु मानता है पूर्ण। पर्याय में पामर मानता है, ऐसा पाठ लिया है। 'तृणमेव' वह पाठ है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में है। तृण तृण जैसा मैं हूँ। ओहोहो..! कहाँ केवलज्ञान, कहाँ मोक्ष की पूर्ण दशा, कहाँ यह दशा! पर्याय में पामर तृण जैसा, वस्तु में प्रभुता मानता है। दो बात है। परन्तु वह भान होने के बाद। समझ में आया?

एक समय में भगवान शुद्ध द्रव्य उसको यहाँ द्रव्य कहने में आया है। पर्याय को भी परद्रव्य, क्षायिकभाव को परद्रव्य अरे..! छठवें गुणस्थान के चारित्र को भी परद्रव्य कहाँ। क्योंकि उसका लक्ष्य करने से आत्मा में लाभ कोई होता नहीं।

श्रोता :- सभी गुणस्थान...

पूज्य गुरुदेवश्री :- सभी गुणस्थान पर (लेना), वह तो हो गया। चौदह गुणस्थान को परद्रव्य पुद्गल का परिणाम कहा उसका कारण क्या? समझ में आया? पर्याय पर लक्ष्य करने से आत्मा को लाभ नहीं होता। आहाहा..! अरे..! कभी उसकी क़िमत नहीं की। एक समय में बड़ी परमात्मशक्ति का पिण्ड पड़ा है। अरे..! परमात्मा क्या? सिद्ध अनन्ता परमात्मा एक आत्मा में पड़ा है। पहले कहा न? बराबर है?

अनन्त परमात्मा एक आत्मा में पडा है। कैसे? समझ में नहीं आया? यह सिद्ध है वह परमात्मा है कि नहीं? तो सिद्ध एक समय की पर्याय है। सादिअनन्त पर्याय जितनी है, ऐसे अनन्त परमात्मा हुए एक समय का। वह अनन्त परमात्मा आत्मा में पडा है। अरे..! भगवान! द्रव्य में अनन्त परमात्मा पडा है। भगवान! तुझे क़िमत नहीं। यह दृष्टि की क़िमत अंतर में जाये तो कैसी चीज है यह? तब दृष्टि उसमें जाती है। महिमा करे बिना दृष्टि अंतर में जाती नहीं। कुछ ज्ञान का क्षयोपशम हुआ, कुछ राग की मन्दता हुई तो आहाहा..! हम कुछ करते हैं, हम कुछ करते हैं। धूल में भी कुछ करता नहीं। सुन तो सही। बात तो सत्य हो वह आये न। पण्डितजी! क्या करे?

कहते हैं... देखो यहाँ। '**इसलिये जो जीव पुरुषार्थ से जिनेश्वर के उपदेशानुसार मोक्षका उपाय...**' भाषा देखो! द्रव्य का आदर करना, उपादेय करना, अंतर में लक्ष्य करना, ध्येय बनाना, दूसरे का ध्येय लक्ष्यमें से छोड़ देना ऐसा भगवान का उपदेश है। उसके '**उपदेशानुसार मोक्षका उपाय करता है उसके काललब्धि व होनहार भी हुए और कर्म का उपशमादि हुए हैं।**' '**पुरुषार्थ से मोक्षका उपाय करता है उसको सर्व कारण मिलते हैं और उसको अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है...**' होगी कि नहीं? होगी कि नहीं? अरे..! बीज ऊगे उसको पूनम होगी, होगी और होगी। समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा अपना एक समय में पूर्णानन्द के नाथ की अंतर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होगा, ज्ञान होगा। वह ज्ञान भी अंतर की दृष्टि लक्ष्यमें से ज्ञान होता है। शास्त्रज्ञान वह ज्ञान नहीं, शास्त्रज्ञान वह ज्ञान नहीं है। आहाहा..!

अंतरमें से ज्ञान प्रगट हुआ वह ज्ञान के आश्रय से नया ज्ञान नहीं (हुआ)। भगवान! ज्ञान की खान तो प्रभु आत्मा है। उसमें अंतर दृष्टिमें से द्रव्य को उपादेय (करने से नया ज्ञान उत्पन्न होता है)। उपादेय का अर्थ उसका लक्ष्य करना, उसका ध्येय करना, उसका आदर करना और पर्याय का आदर और राग का आदर छोड़ना। वह

छोड़ना नहीं पड़ता है। इसका आदर करे तो वह छूट जाता है। '**ऐसा निश्चय करना।**' अवश्य मोक्ष मिलता है।

'**तथा जो जीव पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय नहीं करता उसके काललब्धि व होनहार भी नहीं और कर्म के उपशमादि नहीं हुए हैं तो यह उपाय नहीं करता। इसलिये जो पुरुषार्थ से मोक्ष नहीं करता उसको कोई कारण नहीं मिलते...**' प्रेम अपना लगाये नहीं और पर में प्रेम रखे और मोक्ष का उपाय हो, कैसे बने? समझ में आया? आहाहा..! उन लोगों में एक बात आती है। नहीं? क्या कहते हैं?? मीराबाई? मीराबाई की बात आती है उसमें अन्यमति में। पागल हुई न? 'परणी मारा पीयुजीनी साथ बीजाना मींढोळ नहीं रे बांधु।' शादी में कंकण करते हैं न? कंकण नहीं करते? शादी के समय नहीं बाँधते है? कंकण को मींढोळ कहते हैं। 'परणी मारा पीयुजीनी साथ बीजाना मींढोळ नहीं रे बांधु। नहीं रे बांधु रे राणा नहीं रे बांधु। परणी मारा पीयुजीनी साथ, बीजाना कंकण नहीं बांधु।' ऐसे सम्यग्दृष्टि, 'लगनी लागी मेरे द्रव्य के साथ बीजाने प्रेम नहीं रे करुं।' यहाँ तो यह बात है। वह तो दृष्टान्त था, दृष्टान्त में समझने जैसी बात है।

यहाँ तो परमात्म कहते हैं, हे नाथ! तेरी दृष्टि में भगवान आत्मा जब दिखे। तरवरे क्या कहते हैं समझे? ध्येय में ले। अंतर में एकाग्र हो। बस! प्रेम लगा सो लगा। वह प्रेम अब कोई छोड़े नहीं। वह कंकण का... जैसे रंग का प्रेम लगता है न। कुसुम के रंग। कपड़ा जलाये तो भी लाल रहे। ऐसे भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण परमात्मस्वरूप, उसका जिसको प्रेम नाम लीनता हुई, दृष्टि (हुई), उसको कोई दूसरा प्रेम ले सके नहीं। पर्याय भी प्रेम न ले सके तो राग प्रेम ले जाये और निमित्त प्रेम ले जाये ऐसा कभी बनता नहीं। समझ में आया? आहाहा..!

यह परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ वीतरागदेव की, एक समय में तीन काल, तीन लोक देखने से दिव्यध्वनि नीकली उसका सार है। समझ में आया? यह समझे बिना.. उसमें भी कहा न? छह ढाला में नहीं कहा? 'लाख बात की बात..' पण्डितजी आते है कि नहीं? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' उसमें बहुत कहते हैं।

श्रोता :– ...

पूज्य गुरुदेवश्री :– हाँ, द्वंद्व फंद छोड़। आता है न? भाषा बराबर सब याद तो नहीं होती। जगत दंदफंद छोड़, ऐसी कोई भाषा आती है। समझ में आया?

पहले के पण्डित तो मूल दृष्टि रखकर ही बात करते थे। समझ में आया? टोडमरलजी,

बनारसीदास, द्यानतराय, दौलतराय आदि देखो तो उसमें अध्यात्म ही भरा पडा है। परन्तु लोंगो को कहे तो कहते हैं, वह तो गृहस्थ है। भगवान का वाक्य है? परन्तु भगवान का वाक्य और समकिती के वाक्य में फेर है ही नहीं। वह तो स्थिरता में फेर है। भगवान को पूर्ण स्थिरता हो गई, वीतरागता हो गई, मुनि को चारित्र हो गया है। परन्तु सम्यग्दर्शन और ज्ञान का जो वाक्य है उसमें केवली और उस में कुछ फ़र्क़ है नहीं। तिर्यंच का समकित और सिद्ध का समकित दो में कुछ फ़र्क़ है नहीं। आया है न? इसमें आया है। वह तो आया है उसका आधार दे तो ठीक पडे लोगों को। पृष्ठ संख्या माँगते हैं न पृष्ठ। हमारे रामजीभाई कोर्ट में कायदा बताये तब वह जज माने। ऊपर से न्याय से न कहे। दो और दो चार। कहाँ लिखा है? यहाँ अंक में लिखा है। परन्तु दो और दो चार ऊपर से तो समझ ले। समझ में आया?

ऐसे भगवान आत्मा अंतर के स्वरूप में पुरुषार्थ करने से उसका प्रेम जहाँ लगा वह प्रेम को कोई छोड़ सकता नहीं। 'लगनी लागी भगवान साथे अनुभव रस में रोग न शोक।' समझ में आया? 'केवल अचल अनादि अबाधित शिव शंकरका भेटा।' केवल द्रव्य पर ऐसे ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव तारा, ध्रुव तारा, उस ध्रुव में सर्व सम्पदा पडी है। एक समय की पर्याय में सर्व सम्पदा है नहीं।

उस कारण से कहते हैं कि **'जो जीव पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय नहीं करता उसको कारण नहीं मिलते...'** **'ऐसा निश्चय करना।'** तुम कहते हो कि मोक्ष का उपदेश तो सभी सुनते हैं। **'कोई मोक्ष का उपाय कर सकता है, कोई नहीं कर सकता; सो कारण क्या?'** **'उसका कारण यही है कि जो उपदेश सुनकर पुरुषार्थ करते हैं वे मोक्ष का उपाय कर सकते हैं,...'** उपदेश सुनकर मोक्ष का उपाय करते हैं वह कर सकते हैं। **'और जो पुरुषार्थ नहीं करते हैं वे मोक्ष का उपाय नहीं कर सकते। उपदेश तो शिक्षा मात्र है, फल जैसा पुरुषार्थ करे वैसा लगता है।'** उपदेश तो हम सुनते हैं परन्तु हमारा पुरुषार्थ नहीं होता। परन्तु पुरुषार्थ करना तुझे है या उपदेश करनेवाले को करना है? समझ में आया?

तो पुनः प्रश्न उठा। महाराज! तुम बहुत पुरुषार्थ की बात करते हो तो हम प्रश्न करते हैं कि **'द्रव्यलिंगीमुनि मोक्षके अर्थ गृहस्थपना छोड़कर तपश्चरणादि करता है...'** पुरुषार्थ तो करता है। द्रव्यलिंगी अनादिकाल का मुनि होकर, अनन्त आनन्द का भाव का भान नहीं। तो ऐसा गृहस्थपना छोड़कर, राजपाट छोड़कर, कुटुम्ब-परिवार छोड़कर तपश्चरणादि। **'वहाँ पुरुषार्थ तो किया, कार्यसिद्धि नहीं हुई, इसलिये पुरुषार्थ**

करने से तो कुछ सिद्धि नहीं हैं?' ऐसा प्रश्नकार का प्रश्न है।

यह उसका उत्तर देते हैं, सुनो भाई! '**अन्यथा पुरुषार्थ से फल चाहे तो कैसे सिद्धि हो? तपश्चरणादि व्यवहार साधन में अनुरागी होकर प्रवर्ते उसका फल तो शास्त्र में तो शुभबन्ध कहा है,...**' देखो! मिथ्यादृष्टि राग की मन्दता शुभभाव का पुरुषार्थ करते हैं, उसको निर्जरा मानते हैं, उसको संवर मानते हैं। '**तपश्चरणादि व्यवहार साधन...**' वह तो शुभराग का साधन '**अनुरागी होकर...**' उसका प्रेम होकर '**प्रवर्ते उसका फल तो शास्त्र में तो शुभबन्ध कहा है, और वह उससे मोक्ष चाहता है,...**' द्रव्यलिंगी (को) अनादि काल का क्यों मोक्ष पुरुषार्थ नहीं हुआ? कि राग का पुरुषार्थ करके उससे मोक्ष चाहता है। समझ में आया?

शुभराग। देखो! शुभ बन्ध है शुभभाव से तो। अंतर आत्मा का आश्रय किये बिना, सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र बिना जितना क्रियाकाण्ड करते हैं, उस शुभभाव का तो शुभबन्ध है, उसको मोक्ष का अंश मानते है। क्या कहते हैं देखो! '**यह उससे मोक्ष चाहता है, कैसे होगा?**' ऐसे मोक्ष होगा नहीं। शुभभाव में मोक्ष चाहते हैं। द्रव्यलिंगी अनादि काल का मिथ्यादृष्टि शुभभाव में मोक्ष चाहता है, उसका पुरुषार्थ ऊल्टा है, पुरुषार्थ सूल्टा नहीं है। बराबर है? आहाहा..! कितना उत्तर दिया है देखो! यह तो थोड़ा आखिर का दीन है। यह टोडरमल का स्मारक होल है तो उसमें ऐसा कहा है। गोदीकाजी!

तो कहते हैं, '**भ्रम का भी तो कारण कर्म ही है, पुरुषार्थ क्या करे?**' पुनः शिष्य को प्रश्न ऊठा, कि महाराज! यह भ्रम का कारण कर्म है न? हम क्या करे, कर्म के कारण से हमको भ्रम उत्पन्न होता है? सुन, सुन। '**सच्चे उपदेश से निर्णय करने पर भ्रम दूर होता है;...**' सच्चा उपदेश, पहली जवाबदारी। सच्चा उपदेश शब्द पडा है न? उपदेश ऐसा नहीं लिया है। उपदेश ऐसा नहीं, सच्चे उपदेश से, सत्य उपदेश। सत्य उपदेश किसको कहते हैं? अपना ज्ञायकभाव का आश्रय से सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र हो ऐसा उपदेश हो उसको सत्य उपदेश कहते हैं। समझ में आया? आहाहा..!

'**सच्चे उपदेश से निर्णय करने पर...**' ऐसा निर्णय करे, भगवान आत्मा अखण्ड आनन्द प्रभु ध्रुव स्वरूप है, एक समय की पर्यायकी मुदत एक समय है। राग विकार है। ऐसा अंतर में निर्णय करे तो निर्णय हो सकता है, भ्रम दूर हो जाता है। निर्णय करने से भ्रम दूर हो जाता है। '**परन्तु ऐसा पुरुषार्थ नहीं करता, इसी से भ्रम रहता है।**' भ्रम रहने का कारण दर्शनमोह का उदय है तो भ्रम रहता है ऐसा नहीं

है, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं है। क्या करे भैया! हमारे कर्म का उदय है और कर्म बिना विकार होता है भैया? ज्ञानावरणीय ज्ञान को रोकता है, दर्शनावरणीय दर्शन को रोकता है, घातिकर्म आत्मा की पर्याय का घात करता है। अरे..! भगवान! सुन तो सही। वह तो व्यवहारनय का कथन है।

तेरी पर्याय तेरे से जब हीन होती है, तब ज्ञानावरणीय को निमित्त कहने में आता है। उसने घात किया वह व्यवहार का कथन है। परद्रव्य परद्रव्य की पर्याय को कभी घात और विकास कर सकता नहीं। आहाहा..! यहाँ तो कर्म की ही बात सब करते हैं, कर्म से होता है, कर्म से होता है। हमारे जैन में कर्म। समझ में आया? और अन्य में ईश्वर। तुम्हारे वह ईश्वर तो चैतन्य थे। पण्डितजीने कहा था न? वह आता है न, उसमें भी आया है कि वह तो चेतन था, इच्छावाला था, शक्तिवान था। तुम्हारे परमाणु तो इच्छा बिना, शक्ति बिना, ज्ञान बिना। वह कर्म आत्मा को रुलाये, कर्म आत्मा का टले तब आत्मा का मोक्ष हो। ऐसा आत्मा लँगड़ा है नहीं। समझ में आया? ऐसा आत्मा लँगड़ा है नहीं। आत्मा स्वतंत्र ऊल्टा पुरुषार्थ करने में भी स्वतंत्र है और सूलटा पुरुषार्थ करने में भी स्वतंत्र है। कर्ता इसको कहते हैं। स्वतंत्रपने सो करे सो कर्ता और कर्ता का प्रिय उसको कार्य (कहते हैं)। अज्ञानी स्वतंत्रपने अज्ञानभाव से विकार को अपना ऊल्टा पुरुषार्थ से करता है और विकार उसका इष्ट और प्रिय है। उसमें कोई कर्म का दोष है नहीं।

यहाँ पहले लिया है, देखो यहाँ कहते हैं। **'सच्चे उपदेश से निर्णय करने पर भ्रम दूर होता है; परन्तु ऐसा पुरुषार्थ नहीं करता, इसी से भ्रम रहता है। निर्णय करने का पुरुषार्थ करे -- तो भ्रम का कारण जो मोहकर्म, उसके भी उपशमादि हों तब हो जाये;...'** तुम भ्रम दूर करो, कर्म दूर होते ही है उसके कारण से। उसके कारण से हाँ! **'क्योंकि निर्णय करते हुए परिणामोंकी विशुद्धता होती है, उससे मोह के स्थिति-अनुभाग घटते हैं।'** लो! समझ में आया?

उसमें भी लिया है। वह एक है न अपना बन्ध अधिकार है न इसमें? बनारसीदास का है न बन्ध अधिकार? पुरुषार्थ की बात हमारे चलती थी बहुत पहले। **'मोह निंद में सोवे ते आलसी निरुद्यमी होवे...'** पुरुषार्थ अपने में। **'दृष्टि खोली जे जगे प्रविना तिनि आलस तजी उद्यम किना...'** **'दृष्टि खोली जे जगे प्रविना...'** भगवान आत्मा की सम्यग्दृष्टि खुल जाती है पुरुषार्थ से, वह आलस तजी, प्रमाद तजी स्वभाव में पुरुषार्थ करने लगता है। समझ में आया? परन्तु **'जो जीय मोहनिंद में**

सोवे ते आलसी निरुद्यमी होवे...' स्वभाव में हाँ! पर में पुरुषार्थ करे वह पुरुषार्थ है ही नहीं।

वीर्य नाम का एक गुण है आत्मा में। अमृतचन्द्राचार्यने ऐसा लिया है कि वीर्यगुण का कार्य क्या? कि स्वरूप की रचना करना वह वीर्यगुण का कार्य है। राग की रचना वह वीर्य गुण का कार्य यथार्थ में है ही नहीं। आहाहा..! ४७ शक्ति का जहाँ वर्णन किया है, उसका सब स्पष्टीकरण आ गया है, अभी विशेष आयेगा। दूसरा पुस्तक छपता है, ४७ शक्ति का। उसमें ऐसा लिया है कि आत्मा में जो वीर्य नाम का गुण है बल, उसका कार्य क्या? अपना शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की पर्याय की रचना करना वह वीर्य का कार्य है। राग की रचना करना वह वीर्य का कार्य नहीं। तो पर का कार्य करना वह तो वीर्य में है ही नहीं। भाई! बहुत बलवंत हो तो दूसरे का काम कर दे, दूसरे का बहुत कर दे। यह मोटर रोक देते है कि नहीं? मोटर चलती हो तो उसको रोक दे। ऐसा-ऐसा बलवंत होते है कि नहीं? बहोत बलवंत। भगवान! तेरे वीर्य की पर्याय तो तेरी मौजूदगी में है। पर की पर्याय की मौजूदगी में तेरी पर्याय क्या कर सकती है?

यहाँ तो भगवान वहाँ तक कहते हैं कि अपना शुद्ध चैतन्य भगवान, उसमें वीर्य गुण है न? तो द्रव्य पर दृष्टि देने से वीर्यगुण अपनी शुद्ध स्वभाव की रचना का कार्य करे उसका नाम वीर्य का कार्य कहने में आता है। समझ में आया? वह पुरुषार्थ का कार्य। उस अपेक्षा से कहते हैं। वरना तो ऐसा कहा 'जो जीव मोहनिन्द में सोवे ते आलसी निरुद्यमी होवे' वह पुरुषार्थ में, अन्दर में निरुद्यमी होवे। बाहर में तो राग का उद्यम करते ही है। 'दृष्टि खोली जे जगे प्रविना तिनि आलस तजी उद्यम किना।' पीछे भी विशेष लेते हैं।

सुनो यह कहा न? प्रश्न बन्ध अधिकार में है न? कौन-सा है? यहाँ देखो। यहाँ क्या कहना है थोडा? कि जो व्यवहार है न, वह वास्तव में स्वभाव का वीर्य का कार्य नहीं। सुनो। सम्यग्दृष्टि को भी... सूक्ष्म पडेगा, सुनो।

असंख्यात लोकप्रमाण जे मिथ्यात्व भाव, तेई विवहारभाव केवली उक्त है।
जिन्हको मिथ्यात गयो ने सम्यक्दरस भयौ, ते नियत-लीन विवहार सो मुक्त है।

वह तो बड़ी चर्चा हुई है श्वेताम्बर के बीच में, श्वेताम्बर बीच में। ३०० साल पहले बनारसीदास के समय में एक मेघविजय हुआ है, मेघविजय। उसमें इसकी बडी टिका की है।

निर्विकल्प निरूपाधि आतम समाधि साधि जे सुगुन मोकख पंथकौ ढूक्त है।
तेई जीव परम दसा में थिररूप व्हैंके, धरम में धुके न करम सौ रुक्त है।।

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा में वीर्यगुण ऐसा पड़ा है, तो वीर्यगुण के आधार में आत्मा है। आधेय आधार व्यवहार से कहते हैं। वीर्य आधेय है, आधार भगवान आत्मा। परन्तु भगवान आत्मा की दृष्टि करने से सब अनन्तगुण का कार्य में वीर्यगुण का कार्य क्या आया? तो स्वरूप की रचना, शुद्ध की रचना करे उसका कार्य आया। तो सम्यग्दृष्टि जिनको मिथ्यात्व गयो, सम्यक् दरस भयो ते नियत लीन विवहारसौं मुक्त है। आहाहा..! चिल्लाते हैं। अभी तो व्यवहार इतना गले लगता है, मीठास... मीठास। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव की जहाँ अनुभव दृष्टि हुई तो पर्याय की निर्मलता अभेद हुई वह निश्चय। राग रहा वह निश्चय में व्यवहार है नहीं, व्यवहार में निश्चय है नहीं। जैसे परद्रव्य ज्ञेय तरीके रहा, वैसे धर्मी को राग का व्यवहार परद्रव्य ज्ञेय तरीके रहा है। अपना ज्ञेय का द्रव्य-गुण-पर्याय में है नहीं। बड़ी बात भाई।

यह तो मूल चीज है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। है ऐसा भगवान फरमाते हैं। तो कहते हैं कि मिथ्यात गयो नियत लीन। कोई कहे भाई निश्चय लीन तो आठवें में होता है, तेरहवे में होता है। आहाहा..! अरे..! भगवान! निश्चय का अर्थ पूर्ण स्वरूप तेरा है ऐसा निश्चय हुआ वह सम्यग्दर्शन। उस नियत में लीन है, निश्चय में लीन है। राग से मुक्त है व्यवहार से। बीच में राग आता है। परन्तु राग, निश्चय और व्यवहार दो एक नहीं है। दो एक हो तो दो का फल एक आना चाहिये। दो एक रह सकते नहीं। व्यवहार राग है उसका फल बन्धन है। निश्चय अराग है उसका फल शुद्धता और निर्जरा है। तो सम्यग्दृष्टि जीव अपना स्वभाव तरफ का पुरुषार्थ करके जो निर्मलता प्रगट की है उसमें ही लीन है। बीच में विकल्प आता है उससे मुक्त है। आहाहा..! जैसे परद्रव्य से रहित है, ऐसे समकिती व्यवहार से भी रहित है। तब उसका नाम अंतर निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ ऐसे कहने में आता है। समझ में आया?

इस श्लोक के लिये बड़ी चर्चा चली थी। व्यवहारालम्बी के लिये बडे पक्षकार इसमें से निकले हैं। ३०० वर्ष पहले इसके सामने मेघविजय ने एक बड़ा पुस्तक बनाया है। हमारे पास सब आया था न, पुस्तक सब वहाँ है। व्यवहार से मुक्त है? व्यवहार से मुक्त है? है उससे मुक्त है। सुन। परद्रव्य है कि नहीं? तो परद्रव्य है उससे मुक्त है आत्मा। ऐसे व्यवहार है उससे निश्चय मुक्त है। अपना द्रव्य स्वभाव की दृष्टि करने

से जो सम्यग्दर्शन ज्ञान हुआ, शान्ति हुई, उसमें विकार की उपाधि से वह रहित है। यह दशा विकार की उपाधि से रहित है। सहित है नहीं, सहित हो तो दो एक हो जाये। आहाहा..!

श्रोता :- उपाधिभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उपाधिभाव है।

भाई! सम्यग्दर्शन माने क्या? वह यहाँ कहते हैं कि जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, निर्णय हुआ तो कर्म का नाश हो जाता है। तेरा दोष तु कर्म के पर डालता है, तु तो महन्त रहना चाहता है, महन्त रहना चाहता है और तेरा दोष कर्म पर डालता है, भूल है तेरी। छोड़ दे। तेरा ऊल्टा पुरुषार्थ से तुम सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं कर सकता। अंतर का स्वभाव का पुरुषार्थ करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट कर सकता है। ऐसा उसका सार है।

परन्तु वह तो कहते हैं कि निर्णय करने में भी उपयोग लगाने में भी कर्म होना चाहिये न? तेरा उपयोग तो है, तुझे जैसे लगाना हो वैसे लगा दे। अंतर में लगा दे, कौन रोकता है तुझे? परन्तु अंतर में नहीं लगाते है और दूसरे में लगाता है तो तेरा ऊल्टा पुरुषार्थ है। जहाँ लगाना चाहिये वहाँ लगाता नहीं और दूसरे में लगाता है और तु दोष निकालता है कर्म का, बड़ी भूल है। तेरे आत्मा का बड़ा अपराध है। वह अपराधी निगोद में जायेगा क्रम से। समझ में आया? क्रमशः। सम्यग्दर्शन जिसको प्राप्त हुआ वह क्रम से केवलज्ञान पाकर मोक्ष जायेगा। ऐसा पुरुषार्थ का फल है।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रकाशक
श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ – ३६४२५०, सौराष्ट्र

सह–प्रकाशक
श्री कुंदकुंद–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ले, मुंबई – ४०००५६

info@vitragvani.com vitragvani.com /vitragvani /c/vitragvani